व्यक्ति और वाङ्मय

व्यक्ति और वाङ्मय

आदि से आधुनिक काल तक के भारतीय कवियों
की रचनाओं और उनके व्यक्तित्व का पर्यवेक्षण

लेखक
श्रीप्रभाकर माचवे

प्रकाशक
साहनी प्रकाशन
५७, एस्प्लानेड रोड, दिल्ली

मूल्य
सात रुपये

*

कृष्णगोपाल साहनी द्वारा साहनी प्रकाशन, दिल्ली के लिए
नया हिन्दुस्तान प्रेस, चांदगी चौक, दिल्ली से मुद्रित।

व्यक्ति और वाङ्मय ********

लेखक व्यक्ति की वर्तमान आचार-स्थिति को साहित्य के लिए कसौटी मानने को तय्यार नही। हाँ, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से वह अन्तर-मानस का ऐतिहासिक अध्ययन करने की चेष्टा आवश्यक समझता है। यह प्रश्न वास्तव मे विवाद ग्रस्त है कि लेखक की साहित्यिक-कृति और अन्य कार्यों मे विच्छेद कहाँ तक होना चाहिए।

आलोचना करते समय आलोचक रचना को तो आँखो के सामने रखता ही है, परन्तु वह रचनाकार की उस रचना के पीछे रहने वाली स्पष्ट अथवा अस्पष्ट तस्वीर को भी नही भुला सकता। नवीन आलोचना दृष्टि मे वैज्ञानिक तटस्थता, पृथगात्मता, पूर्वग्रहविरहित होना अधिक चाहा जाता है। मगर साहित्य, चाहे समाजोपयोगी हो, चाहे गर्भित सामाजिक प्रयोजनवती वस्तु हो, निर्मित होता है व्यक्ति द्वारा ही और पढ़ा-गुना भी जाता है व्यक्ति ही के द्वारा—सिवा नाटक या चित्रपट जैसे साहित्य-प्रकारो के, जहाँ सामूहिक आनन्द-ग्रहण ही सम्भव होता है। ऐसी अवस्था मे वाङ्मय की रचना से जब व्यक्ति काटकर अलग नही किया जा सकता तब आलोचना मे वह कैसे सम्भव है।

उदाहरणार्थ, एक लेखक 'त्र' है। मै व्यक्तिगत जीवन मे जानता हूँ कि वे दुश्चरित्र है, अनीतिमय जीवन व्यतीत करते है, उनका आदर्श कोई भी सभ्य-मनुष्य समाज के लिए सामने नही रख सकता। जीवन मे वे अत्यन्त अ-सामाजिक हैं; यह सब मैं उनके व्यक्तिगत समीपतर परिचय से जानता हूँ। परन्तु उनकी कृतियाँ लीजिये; अत्यन्त बलिष्ठ-चरित्र व्यक्त करती है, नीतिमय और आदर्श-

समाज की अवतारणा मे वे सहायक है। ऐसी अवस्था मे क्या मेरा यह कर्त्तव्य नही हो जायगा कि मैं उनकी कृति की, प्रशसा कृति की निष्पक्ष आलोचना के समय करूँ, और उतने समय के लिए बिल्कुल भूल जाऊँ कि इस कृति के पीछे किस प्रकार का व्यक्ति है। जैसे सिनेमा मे अथवा चूडी के बाजे पर जब आप गान सुनते है तब यह बिल्कुल भुला देते हैं कि गानेवाला (या 'ली') कौन है। सम्भव है उस गायिका के घर जाकर, किसी मजमे मे या अकेले गाना सुनना आपको नागवार गुजरे, मगर उसकी रेकार्ड आप मगल-प्रसगो पर बजा रहे हैं और उस गायिका-विरहित गान के सौन्दर्य को उसी तरह ग्रहण कर रहे है जैसे फूल-विरहित सुगन्ध। तो क्या इस प्रकार केवल गान की प्रशसा करनेवाला, मगर गायिका से कतराने वाला व्यक्ति आलोचक की कोटि मे आ सकया है? आप कमल की प्रशंसा मे रम जाना चाहते है, मगर कीचड से बचते है।

एक कोटि के आलोचक वे भी है जो कमल को कमल और कीचड़ को कीचड़ कहना पसन्द करेगे। वे कहेगे—हाँ मीरा की कविता मे भक्ति की आर्तता उच्च-कोटि की अवश्य है। परन्तु मीरा का व्यक्तिगत जीवन? राणा को छोड़कर जोगी के साथ चले जाना कुछ नीति-सम्मत नही जान पडता। प्रत्यालोचक पूछेगा—कृपया अपने 'नीति' शब्द की जरा परिभाषा दे? क्या रूढियाँ नीति है, क्या जो कुछ समाज मे चल रहा है और चलने दिया जा रहा है, और जिसे यदाकदा शास्त्राधार और धर्मगुरुओ का समर्थन प्राप्त हो जाता है, वह सब नीति है? मैथ्यू अरनाल्ड भी अँग्रेजी के क्रान्तदर्शी शेले की जीवनी के उच्छृङ्खल स्थल देख पूर्वग्रह-दूषित (Prejudiced) हो गया और कहने लगा—ऐसी व्यक्ति कैसे श्रेष्ठ कवि हो सकता है। वह तो शून्य मे पख फड़फडाने वाला एक स्वर्ण-पक्षी मात्र है, जिसके पंख अपने ही आलोक की आभा मे चमक रहे हैं। मगर वही अरनाल्ड टाल्स्टाय की 'अन्ना' पर लिखते समय कुछ और हो गया; क्योकि वहाँ उसे ईसाइयत में बहुत महत्वपूर्ण मानी जानेवाली स्वीकारोक्ति जो मिली।

सवाल यो पैदा होता है कि मान लीजिए शेले की कविता केवल आपके सामने है—उसके जीवन के बारे में आप कुछ नही जानते (जैसे कालिदास या शेक्सपीयर के सम्बन्ध मे हम बहुत कम जानते हैं।) ऐसे समय आपकी आलोचना की कसौटी क्या होगी? केवल उसकी रचनाएँ ही न? परन्तु केवल 'ऋतु संहार' और 'कुमार-सम्भव' पढकर क्या आप उसके व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे कोई निर्णय दे सकेंगे? क्या वह अतिरिक्त साहस-पूर्ण कार्य न होगा? अज्ञेय ने

द्वितीया नामक कविता लिखी, जबकि उनका पहला विवाह भी नहीं हुआ था। अथवा वह व्यक्ति, जो केवल इतना ही जानता हो कि प० बालकृष्ण शर्मा काँग्रेसी एम एल, ए. है और गाँधीजी के भक्त है, क्या कभी कल्पना कर सकता है कि वह रसभीनी-रोमैंटिक कविताएँ लिखने वाले ही 'नवीन' होगे? वियोगीहरिजी को जिसने सत्याग्रहाश्रम मे झाड़ू लेकर सफाई करते ही देखा हो वह कैसे जान सकता है कि इस व्यक्ति ने वीरसतसई भी लिखी होगी? तात्पर्य, व्यक्तित्व को जान लेने भर से, नही, पूरी तरह जान लेने पर भी उसकी कृति, कलात्मक-रचना के सम्बन्ध मे कोई भी स्थापना, 'कैटगोरिकल' विधान के रूप मे स्वीकृत करना खतरे से खाली नही। जैसे बाप को जान लेने से आप बेटे के बारे मे निश्चय रूप से नही कह सकते, जैसे गाँधी के हीरालाल और अज्ञातनामा, कुलगोत्रहीन पिता के सुविख्यात पुत्र भी अनुवंशशास्त्र में मिल जाते है। अतः रचना से रचनाकार के सम्बन्ध मे कई धारणाएँ बनाकर चलने से बहुत कुछ स्वप्नभग होने का डर रहता है। मै क्रातिकारियो को कुछ अतिमानव समझकर श्रद्धा-पात्र मानता था। उस किशोर-वय मे जब मैने प्रत्यक्ष जीवन मे कुछ उन्ही भूतपूर्व आतकवादियो को देखा तब मेरी श्रद्धा को जैसे ठेस लगी। कोई इश्योरेन्स एजेण्ट जैसा नजर आता था, तो कोई छुई-मुई-वादी कविनुमा, कोई मरियल हड्डी का ककालावशेष था, तो कोई तुन्दियल बनिये के समान। मेरी गलती यह थी कि मै कुछ अतिरजित, अवास्तव धारणाएँ लेकर चला। अक्सर आलोचक यही करते है। उनके दिमाग मे एक काट का नाप तैयार रहता हैं, उसी डण्डे से वे लेखक की कृति को हाँकते है। जब उस नाम में कृति फिट नही होती, तब उस लेखक को कोसने लगते है। कलालोचन मे सबसे बडी विचित्रता यह है कि इसके मान मानसिक हैं; अतः वे स्थिर, शाश्वत, सदा एक से रहने वाले नही होते। अब तो नीति-शास्त्रविद् भी कहने लगे है कि अच्छे-बुरे के नैतिक-मान भी ऐसे स्थाणु, अचल, और दुनिया जिस दिन बनाई उसी दिन परमात्मा बना दिये हो, ऐसे नही होते।

आप कहेगे, हम व्यक्तित्व के मोह से आतंकित न हो, लेखक के बडे नाम के रौब मे न आजाँय। वह अमुक-अमुक कोटि का प्रसिद्ध राष्ट्र-भक्त या गो-भक्त या धर्म-मार्तण्ड है, इसलिए उसकी रद्दी से रद्दी किताब को ऊँचा साहित्य न कह डाले, दूसरी ओर उत्तम साहित्य है, इसलिए यह भी न मान बैठे कि उसका लेखक भी कोई अप्सराजात या देवदूत होगा; तो आखिर हम जाँय कहाँ? क्या आलोचना के कोई निश्चित मान ही नही, सिवा इसके कि 'भिन्नरुचिर्हिलोकः'

'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी!' अब आपके सवाल का सही-सही हल तो आप खुद ही पाने की कोशिश करें—मुमकिन है, आपका मेरा स्वभाव न मिलता हो। मेरी आपकी अभिरुचि भिन्न हो। मुझे रूसी साहित्य पसन्द है; आपको रूस के नाम से चिढ हो। इसलिए जवाब मे बजाय इस तरह का उपदेश देने के कि आप कैसे सोचें मैं इस समस्या को किस तरह सोचता हूँ, यह बतलाता हूँ।

मैं ऐतिहासिक द्वन्द्ववाद मे विश्वास करना चाहता हूँ। आप इस लम्बे-चौडे शब्द से घबड़ाये नही—मैं ऊपर का ही उदाहरण देकर कहूँ कि केवल 'कला के लिए कला' वाले सौन्दर्यवादियो की भाँति मै केवल कमल की सुन्दरता पर मुग्ध रह कर नही रह जाना चाहता (पं० पद्मसिंह शर्मा बिहारी की बन्दिश की खूबी देखकर वाह-वाह कर उठे; बिहारी एक सामन्ती कवि था, वे यह भूल ही गये; या जैसे 'त्रिशंकु' मे 'केशव की कविताई' मे अज्ञेय उस 'रसिकप्रिया' वाले केशव के पक्ष मे भी कुछ कह पाने की खोज मे थे।)—वैसे ही मैं केवल 'नीति के लिए ही कला' वाले 'जीवन-साहित्यवादियों' की भाति कमल के अस्तित्व मे भी अश्लीलता सूँघता हुआ (क्योकि न होते कमल, न होते उपमेय नारी के रूपमय अंग, न होती वासना इत्यादि इत्यादि) कमल की निर्मलता में भी कीचड की ही गन्ध नहीं देखना चाहता। मेरा विश्वास है कि कीचड के बिना कमल उतना ही असम्भव है जितना कमल के बिना केवल कीचड का अस्तित्व अशोभन है (मै अस्तित्व की समस्या को भी देखता हूँ, सौष्ठव की सम्भावना को भी।) बिहारी या केशव का उक्तिवैचित्र्य ठीक है, परन्तु उसकी देशकाल-परक अनुकूलता और औचित्य भी देखना होगा। आज कोई नायिका-भेद लिखने बैठे, तो कल अखिल भारतीय महिला-सम्मेलन उस कवि की रचनाओं पर बहिष्कार का प्रस्ताव पास करेगा। मगर तुलसीदास भी केदारनाथ अग्रवाल की तरह कविता तब लिख ही नहीं सकते थे। अतः तुलसीदास में साम्यवाद खोजने जाना अण्डे मे शोरवा खोजने जाने के समान है या अगर यह उपमा आपको अप्रिय जान पडे तो रूढ भाषा मे कहूँ, बीज मे शाखा-प्रशाखा खोजने के समान यह बात है। आशय, द्वन्द्ववाद का अर्थ है कि कला रूपी कमल का अस्तित्व कमल के बीज (सौन्दर्य) और कीचड़ (असौन्दर्य) के परस्पर संघात से ही सम्भव है। आप कहो कि दुनिया से असुन्दर सब मिट जाय और केवल 'सुन्दर से सुन्दरतम' यह मानव-जीवन हो जाय—तो यह सृष्टि के नियम से विपरीत है।

आप कहेंगे कि कला तो नियतिकृत-नियम-रहिता है। इसे सृष्टि के नियम आप कहाँ से लगाते हैं? कला तो दैवायत्त, प्रातिभ, चमत्कार है। हर कोई कालिदास नहीं हो सकता, हर कोई 'हैम्लेट' नहीं लिख सकता। माना; इसी शका मे मेरा उत्तर छिपा है। मेरा विश्वास है कि प्रतिभा दैवायत्त कोई अलौकिक वस्तु है ही नहीं जो कला तो कला, किसी भी रचना को निर्मित करे। क्रोचे ने जिसे प्रभा या अन्तर्ज्ञान (इंटियूशन) कहा है, वह भी एक रहस्यमय सज्ञा है। मनोवैज्ञानिक उसे अचेतन का क्रीडास्थल कहने की अनुमति माँगता है। कलाकार का अचेतन भी उसकी कला मे व्यक्त हो सकता है।

यदि आप यहाँ तक मेरी बात मान गये कि कलाकार के व्यक्तित्व से बिलकुल विपरीत दिखाई देने वाली वस्तु उसकी कलाकृति हो सकती है, तो अब आगे चलकर यह भी देखिये कि ऐसा किन परिस्थितियों में विशेष रूप से सम्भव होता है? जब कि चेतना का उपचेतन पर अधिक दबाव हो, जब कि प्रत्यक्ष का भार अप्रत्यक्षोन्मुख कर दे, जब जागृति से घबडाकर-ऊबकर अथवा हताश होकर वह स्वप्न की ओर जाय। इस दृष्टि से, कलाकार की कल्पना पर प्रत्यक्ष, वास्तव, यथार्थ का बहुत सूक्ष्म परन्तु साधारण अपेक्षा से भिन्न प्रकार का असर पडता रहता है। उसकी कल्पना इसी प्रकार के प्रभावों से बनती है। कालिदास जब मेघदूत मे कृष्णाभिसारिकाओं को मार्ग दिखाने के लिए विद्युत् का चमकाना कहता है तब उसे कसौटी के पत्थर पर सोने के रेख की ही उपमा क्यों सूझती है—निश्चय, इसके मूल मे उसका राजाश्रित रहना, उस समय के देशकाल परिस्थिति की वैभव-परिपूर्णता, स्वर्णकारों का अस्तित्व; सक्षेप मे सामन्ती मनोवृत्ति की यह उपमा का परिचायक है। जब शेक्सपीयर बार-बार कुरेदे गये, अन्दर से कीडो द्वारा खाये गये गुलाब या अन्य फूलों के उपमान प्रयुक्त करता है, निश्चय ही एलिजाबेथ के समय के इंग्लैड के स्वेच्छाचारी नैतिक जीवन का उस उपमा मे प्रतिबिम्ब है। लेखक अथवा कलाकार की कल्पना भी जब इस पर देशकालपरिस्थिति से परोक्ष-अपरोक्ष मे आबद्ध रहती ही है, यह बात आप मानें तो मेरे आरम्भ मे कहे हुए, 'ऐतिहासिक' शब्द की भी व्याख्या हो जाती है।

व्यक्ति और वाङ्मय के सम्बन्ध ऐसी ऐतिहासिक द्वन्द्वादिता के न्याय से जुड़े हुए है। आलोचना के मान भी इसी ऐतिहासिक अनिवार्यता से निर्णीत होते रहते है। स्पष्ट है कि मम्मट और जगन्नाथ पडित, अभिनवगुप्त और रुद्रट के काल मे हम जीवित नहीं थे, न ही प्लेटो और अरस्तू, लांगिनस और दाते के।

बौल्यू और सॉबूव, टेन और पैटर का भी जमाना बदल गया। आज की आलोचना आज और अब की आलोचना होगी, वह दो हजार वर्ष पुरानी या अठारहवी सदी की उसी प्रकार नहीं हो सकती जैसे मै आज अपना परदादा चाहकर भी नही हो सकता। ऐसी दशा मे साहित्य मे शाश्वत-भावो के, अमरत्व के, युगो-युगो से अबाधित नियम-बन्धनो के उल्लेख का क्या मतलब बचा रहता है? रस-चर्चा मे सिवा जुगाली करने के आनन्द (यदि चर्वित-चर्वण मे कोई आनन्द हो?) के कौनसा अर्थ शेष है, यह मै इस नीरस अणुबम के युग मे जानना चाहता हूँ। यदि हमारी आलोचना मे हमारे आसपास के संघर्षों का प्रतिबिम्ब नहीं पडता, यदि वह उन सब की ओर उदासीन है, तो वह आलोचना मानवीय नही। वह शव-शृंगार मात्र है, जिसे ग्रथगुरु विद्वान केवल दिमागी शतरज से ऊब कर शुष्क तर्कों की तूलिका से ठडे दिल और दिमाग से, केवल आलोचना के लिए आलोचना की भॉति किया करते है। अतः आज की आलोचना के मानो को, (आलोचना-दृष्टि को आमूलाग्र प्रगतिशील, मेरे बतलाये हुए ऊपर के अर्थ मे, होना होगा) ऐसी मेरी व्यक्तिगत धारणा है। मेरा मत है कि आज की बहुजन-सम्मत भावना भी कुछ ऐसी ही है, यद्यपि उसके आकार की रेखाओं को कुछ स्पष्ट करने का मैने प्रयत्न किया है।

उपर्युक्त विवेचन के प्रकाश मे 'साहित्य-सदेश' मे छपे मेरे प्रगतिशील सगीत-सम्बन्धी पत्र की प्रत्यालोचना को पढे तो पता चलेगा कि जब मै उस शब्द प्रगतिशील को प्रयुक्त करता हूँ तो केवल बाह्य फैशन रूप मे नहीं, परन्तु एक विशेष दृष्टिकोण के रूप मे ही। उदयपुर कालेज मे एक भाषण देने के पश्चात् एक विद्यार्थी ने यह शका उपस्थित की कि आजकल के प्रगतिवादी केवल मौखिक सहानुभूति व्यक्त करते हैं, उनका व्यक्तिगत जीवन विलासपूर्ण होता है—ऐसी अवस्था मे प्रगतिवाद केवल एक ढोंग, एक 'पोज' नहीं है क्या? विद्यार्थी भावावेश मे और भी कुछ-कुछ कह गया, जो कि यहॉ दुहराना अनावश्यक है। मैंने उत्तर दिया, जिसका आशय था कि मानो मैं एक चोर की कहानी लिखू—प्रथम पुरुष एकवचन मे, या अपनी रचना मे वेश्या या शराब का जिक्र करूँ तो क्या आप समझ लेंगे कि मै भी एक चोर, व्यभिचारी या शराबी हूँ। क्या मै प्रत्यक्ष इन कर्मो के अनुभव के बिना उनके बारे मे लिखने का अधिकारी नही? तब, आप उन बातो के लिए, जिन्हे आप बुरा समझते है, जो बात लेखक पर थोपना न्याय्य नही समझेंगे, वही अच्छी समझी जाने वाली बातो के बारे मे आप क्यो समझते है? उदाहरणार्थ,

आप मानते होगे कि देशभक्ति की रचना करने वाले को 'सी' क्लास मे चक्की पीसना जरूरी है। कृपया मुझे निवेदन करने दीजिए कि बन्देमातरम् का लेखक न कभी जेल गया था न 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा' का लेखक, न प्रेमचन्द कभी कारागृह के अतिथि हुए, यद्यपि उनकी रचनाओ ने देश के जागरण मे बहुत योगदान किया (मैंने स्वय बम्बई कांग्रेस मे प्रेमचन्द को एक मामूली दर्शक के नाते आते-जाते देखा है) और 'भारत-भारती' के रचनाकार ने भी तब तक जेल-यात्रा नहीं की थी। इससे उलटे जेल मे रहकर अपने विकृत प्रेम-वासना-द्वंद्व मे रस ले लेकर गीत-कथा उपन्यास लिखने वाले भी महान् देशभक्त (?) मैंने देखे हैं । मेरे ऊपरके उदाहरण से यह न समझे कि मैं कारागृह के अनुभवो की कीमत कम कर रहा हूँ, उनसे भी लेखको की अनुभव-सम्पदा और बढी है, परन्तु वह राष्ट्रीय साहित्य की आवश्यक शर्त नही है— ठीक उसी तरह जैसे देश से प्रेम करने के लिए झडा लेकर उस प्रेम का प्रदर्शन करते फिरना आवश्यक नही। मै अपनी माता से प्रेम करता हूँ—यह बात मै विज्ञापन देकर घोषित नही करता। अतः लेखक या कलाकार के प्रत्यक्ष-जीवन मे समझ कर झाँको, शायद वहाँ तुम्हे कुछ भी हाथ न आये।

—प्रभाकर माचवे

पुनश्चः

इस पुस्तक मे सन् '३६ से सन् '५२ तक समय-समय पर लिखे हुए मेरे निबंधो मे से कुछ चुनकर छापे जा रहे है। उन्हे मैने अद्यावत बनाया है । पुस्तक रूप मे इसे लाने मे श्री इंद्रानारायण गुर्टू का आग्रह कम महत्त्व का नही है । फलतः मै श्री गुर्टू जी और प्रकाशक दोनो के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करता हूँ।

नई दिल्ली —प्र० मा०

२६, दिसम्बर १९५२

क्रम

संस्कृत कवि

वाल्मीकि
व्यास
भवभूति
कालिदास

: १ :

वाल्मीकि

पूर्व मे कविता प्रधान रही, कवि गौण। पश्चिम मे व्यक्ति कवि की, या कलाकार की कभी-कभी अधिक चर्चा होती है, उसकी रचना की उतनी नही। विशेषतः अभिजात साहित्य की, और महाकाव्य के प्रणेताओ की जब चर्चा होती है, तब जो थोडे से नाम हमारे सामने आते है, यथा, वाल्मीकि, व्यास, होमर, वर्जिल, दाते आदि, उन सभी मे न केवल रचना के बाह्य शरीर का बृहदत्त्व, परन्तु उनकी आत्मा की परमोदात्तता भी सामने आती है। कल्पना की विराटता इन महाकवियो की विशेषता है। अंधे यूनानी महाकवि होमर ('होमर' शब्द का अर्थ ही एकत्र लानेवाला, जोड़नेवाला होता है) के बारे में कॉलरिज ने कल्पना की है कि आयोनियन समुद्र के किनारे जब वह खड़ा होगा, तब उसके अंतश्चक्षुओ के सामने ईलियड और ओडिसी निनादमय समुद्र की तरंगो के साथ सघोष उठती हुई चली आई होगी। (राइज टु दी स्वेलिंग आफ दि वाइसफुल सी!) अरस्तू ने अपने 'पोएटिक्स' मे और काव्यादर्शकार दडी ने महाकाव्य के लक्षणो मे वाह्य रचना पर ही विशेष जोर दिया है। अरस्तू कहते है: 'महाकाव्य मे एक ही विषय, एक ही क्रिया, अपने आप मे संपूर्ण, आदि-मध्य-अंतपूर्ण हो। इसका छन्द एक सा हो और रचना नाटक के शोकान्त प्रकार की भाँति हो।' दंडी ने भी कहा कि सर्गबंद्ध, मंगलाचरण से आरम्भ होनेवाला, इतिहास-कथा पर आधारित, 'सद्' पर आश्रित, चारो फल देने वाला, चतुर उदात्त नायक युक्त महाकाव्य होता है।

सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।
आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्॥

इतिहासकथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम्।
चतुर्वर्गफलायत्तं चतुरोदात्तनायकम्॥

यो पूर्व और पश्चिम मे महाकाव्य के सामान्य लक्षण एक से होने पर भी प्रधान भेद इसी निर्वैयक्तिक तथा वैयक्तिक दृष्टिकोण का है। हमारे यहाँ व्यक्ति कालिदास के सम्बन्ध मे जितना कम ज्ञान हमे है, व्यक्ति वाल्मीकि के विषय मे भी हमारे अधिकाँश मत अनुमान पर ही आधारित हैं। आदि कवि के मन मे गहरी पीडा थी। तभी तो उनका पहला शोक 'अनुष्टुप' श्लोक बन गया। क्रौंच-मिथुन मे से एक को वध करनेवाला अहेरी आज भी अनेको युद्ध-पिपासुओ का प्रतीक बना हुआ है। परन्तु वाल्मीकि की यह आदि-रचना कुछ ऐसी हुई होगी जैसे खलील जिब्रान ने अपने 'मसीहा के बग़ीचे' मे कहा : 'पके फलो के बोझ से मेरी अतरात्मा झुक आई है। कौन आकर उन्हे ग्रहण करेगा? मेरा अंतस्तल इन द्राक्षाओ की भाँति रस से लबालब भरा है, कौन उन्हे आकर ढालेगा और मरुभूमि की इस जलन को शाँत करेगा?'

'अबिकातनय दत्त'—श्री दत्तात्रेय रामचन्द्र बेंद्रे कन्नड़ साहित्य के अग्रणी कवि हैं। उन्होने अपनी 'नन्नहाडु' कविता मे लिखा है : 'मेरे गाने का और जीवन का यदि कुछ सार है, तो यही है : रस ही जनन, विरस मरण है, और समरस जीवन है।' महाकवियो की रचनाओ पर यह उक्ति सर्वांशतः लागू होती है। उनका जीवन इतना सामरस्य से भरा होता है कि कोई उनके बारे में खोज-खोज कर भी व्यक्तिगत विवरणो का पता नही जान पाता। वाल्मीकि की भी प्रायः यही दशा है।

महाभारत पुराणो में माना जाता है, तो रामायण काव्य में। महाभारत मे १,००,००० श्लोक हैं तो रामायण में २४,०००। इसी रामायण के आधार पर कालिदास ने रघुवश रचा और प्रातीय भाषाओ मे सर्वप्रथम तमिल में १२वीं सदी में रामायण-रचना की गई। तुलसी रामायण पर भी इस तमिल रामायण की छाया है, ऐसा दक्षिण-भारत मे गये हिंदी साहित्य-सम्मेलन के सद्भावना-मंडल ने कहा है। क्योकि काशी के एक धर्मपीठ मे इस तमिल रामायण का भाषानुवाद तथा पाठ तुलसी के काल में होता था, ऐसा उल्लेख है।

वाल्मीकि रामायण की बंगाल, बम्बई और पश्चिमी भारत की तीन प्रतियाँ मिलती हैं, जिनमे से बम्बईवाली आवृत्ति सबसे प्रामाणिक मानी जाती है। इस तीसरी प्रति में तृतीयाँश ऐसा है, जो अन्य दो प्रतियो मे नही पाया जाता। बम्बईवाली प्रति ८वीं—९वी शती की है। इसी रामायण का सार क्षेमेन्द्र ने

२१वीं शती में छपाया। रामायण के सात कांडों में से प्रथम और अन्तिम, यानी सातवाँ प्रक्षिप्त और बाद में जोड़ा हुआ माना जाता है। क्योंकि ये दोनों कांड अन्य कांडों से काव्य-गुणों में हीन हैं। प्रथम कांड में अयोध्या में लक्ष्मण के विवाह की चर्चा है तो दूसरे कांड में उनके ब्रह्मचारी होने का स्पष्ट उल्लेख है। प्रथम और सप्तम कांड में राम को संपूर्ण राष्ट्र का नेता चित्रित किया गया है, अन्य कांडों में राम का व्यक्तित्व जनपद तक सीमित है। प्रथम कांड में राम इन्द्र के और बाद में विष्णु के अवतार बताये गये हैं। प्रथम कांड में वाल्मीकि को राम का समकालीन और द्रष्टा ऋषि चित्रित किया गया है।

अन्य कई आधारों से विद्वानों ने रामायण-काल निश्चित करने का यत्न किया है। महाभारत में रामायण की केवल दो पंक्तियाँ मिलती हैं और 'रामोपाख्यानम्' भी मिलता है। महाभारत में उवाच आदि शैली है, जिसका रामायण में अभाव है। पालि ग्रन्थों में कहीं भी रामायण का उल्लेख नहीं है। 'दशरथ जातक' एक छोटा-सा ग्रन्थ है। पर रावण जैसे अन्यायी का (जिसकी विरा चट्टान में खुदी, ज़मीन पर गिरी मूर्ति जावा में है) बाद के साहित्य में कहीं भी कैसे उल्लेख नहीं, यह आश्चर्य है। इसी कारण से लाइपजिग से १८९६ में प्रकाशित 'गुरुपूजाकौमुदी' ग्रन्थ में हर्मन ओल्डेनबर्ग ने माना है कि रामायण बौद्ध-धर्म के उत्थान के पश्चात् अर्थात् ५०० ईसा पूर्व रची गई। और भी एक आश्चर्य की बात है कि रामायण में यूनानियों का कोई उल्लेख नहीं है। अलक्षेन्द्र (सिकन्दर) ने ३२७ ईसा पूर्व भारत पर आक्रमण किया था। रामायण उससे पूर्व की रचना होनी चाहिये। ए० वेबर बहुत दूर की खींच-तान करके रामायण पर होमर के हेलेन और ट्रॉय के युद्ध के कथानक के अनुकरण का मिथ्या आरोप लगाते हैं। यूलिसिस और राम के चरित्र-निर्माण में बड़ा अन्तर है। जेकोबी रामायण को बौद्ध-काल से पूर्व इसलिए मानते हैं कि रामायण में पाटलिपुत्र का कोई उल्लेख नहीं। रामायण में सर्वत्र कौशल की राजधानी अयोध्या कहा गया है, जब कि बौद्ध, जैन, यूनानी ग्रन्थकार और पातंजलि (१५० ईसा पूर्व) भी 'साकेत' नाम लिखते हैं। रामायण में मिथिला की राजधानी विशाला माना गया है, जो कि एक स्वतन्त्र राज्य कहा गया है। बौद्ध-काल में तो वैशाली गणतन्त्र हो गया था। सबसे बड़ा पुष्ट प्रमाण रामायण की प्राचीनता का भाषा-विज्ञान का है। रामायण की भाषा टकसाली लोक-प्रचलित संस्कृत है। अशोक ने अपने शिलालेख (२६० ईसा पूर्व) और बुद्ध ने अपने सारे उपदेश (५०० ईसा पूर्व) क्रमशः प्राकृत और पालि में दिये,

अर्थात् रामायण-काल काफ़ी प्राचीन रहा होगा। विद्वानो के अनुसार रामायण ईसा पूर्व चौथी शती मे सम्पूर्ण हुई हैं।

डा० राधाकुमुद मुखर्जी के 'हिन्दू सिविलाइजेशन' ग्रन्थ के अनुसार रामायणकार का भौगोलिक ज्ञान दंडकारण्य के परे नहीं था। राम-कथा पर वेद के संवादसूक्तो का प्रभाव है, ऐतरेय उपनिषद् मे हरिश्चन्द्र की कथा भी मिलती है। जनमेजय का उल्लेख शतपथ में और व्यास-वैशपायन का तैत्तिरीय आरण्यक मे उल्लिखित है। फिर भी राम और रावण आर्य-अनार्य सभ्यताओ के प्रतीक है। उस समय की समाज-व्यवस्था ग्राम-केंद्रित थी। घोष, व्रज, पल्ली, दुर्ग, ग्राम, खवेट, पट्टन, नगर बस्तियो के भेद थे। रामायण मे नगर के चार चौक बताये गये हैं, महाभारत मे छः। शासन यो होता था कि एक गॉव मे ग्रामणी होता था, और बाद में जनपद, कुल, जाति, श्रेणी, यूथ के प्रतिनिधियो मे से चुन कर मंत्रि-परिषद् बनती थी। दशग्रामी, शतग्रामी, ग्रामशताध्यक्ष, अधिपति आदि दस, बीस, सौ, हजार गॉवो के यूथ के प्रमुख का नाम था। वाल्मीकि के आश्रम मे लडकियॉ भी पढ़ती थी। राम की विवाह के समय उम्र १३ वर्ष की और सीता की ८ वर्ष की थी। तेलुगू नाटक्कार पुद्दू कृष्ण ने अपने अशोक-वन मे जाति-भेद का चित्र दिया है।

वाल्मीकि रामायण के विषय में बहुत कुछ जान लेने के बाद भी वाल्मीकि व्यक्ति रहस्य के कुहरे में छिपे हैं। एक अनुश्रुति यह भी है कि तपस्या करते करते चूॅकि वहॉ एक 'वाल्मीक' (दीमकों का घर) बन गया, इस कारण से इस शिकारी, बहेली बटमार का दिल पलट गया। मरा-मरा कहते हुए वह उलटा मंत्र पढ़ने लगा और उसका उद्धार हो गया। वह जो भी हो। वाल्मीकि जैसी अलोकिक, जाज्वल्यमान, महान्, मौलिक, कवित्वपूर्ण, विराटदर्शी प्रतिभा विश्व-साहित्य मे भी मिलना सहज सम्भव नहीं। वाल्मीकि के उदाहरण, उनके विशाल ग्रन्थ मे से कहॉ-कहॉ से कितने चुने जॉय ?

वाल्मीकि रामायण के सुन्दर काव्यमय अश उसके प्रकृति-चित्रण के स्थल हैं। पावस-ऋतु का यह गंभीर मेघ-घोषमय वर्णन कितना स्वाभाविक है :

> क्वचित्प्रकाशं क्वचिदप्रकाशं
> नभः प्रकीर्णाम्बुधरं विभाति।
> क्वचित्क्वचित्पर्वत सन्निरुद्धं
> रूपं यथा शांत-महार्णवस्य ॥

विद्युत्पताकाः सबलाकमालाः
शैलेन्द्रकूटाकृति सन्निकाशाः।
गर्जन्ति मेघाः समुदीर्णनादा
मत्ता गजेन्द्रा इव संयुगस्थाः॥

'कही थोड़ा उजाला है, कही अँधेरा है। आकाश में चारो ओर मेघ यो छा गये हैं मानो पर्वतो से घिरा हुआ कोई शांत महासागर हो।

'बिजली का झडा, बगुलो का हार धारण किये, पर्वतो जैसे महदाकार मेघ ऐसे जान पड़ते हैं मानो जुझारू हाथी मस्त होकर चिंघाड़ रहे हो!'

और ऐसी उग्र-गंभीर उपमाओ के साथ-ही-साथ उसी किष्किन्धा कांड में वाल्मीकि कैसी कोमल और आधुनिक कवियो जैसी उपमा भी देते हैं कि धरती पर छोटी-छोटी घास उग आई है और उसमें से लाल-लाल वीरबहूटी इस तरह शोभा देती हुई घूमती हैं मानो किसी स्त्री ने लाल किनारी की हरी चूनरी ओढ़ी हो!

बालेन्दु गोपान्तर चित्रितेन विभाति भूमिर्नवशाद्वलेन।
गात्रानुवृ ेन शुकप्रभेण नारीव लक्षोक्षित कम्बलेन॥

पावस की भाँति वाल्मीकि ने किष्किन्धा-कांड मे शरद् ऋतु का भी बड़ा ही सुन्दर वर्णन दिया है:

तर्पयित्वा सहस्राक्षः सलिलेन वसुन्धराम्।
निर्वर्तयित्वा शस्यानि कृतकर्मा व्यवस्थितः॥
शाखासु सप्तच्छदपादपानाम् प्रभासु तारार्कनिशाकराणाम्।
लीलासु चैवोत्तमवारणानाम् श्रियं विभाज्याद्य शरत्प्रवृत्ता॥
व्यभ्रं नभः शस्त्र-विधौतवर्णम् कृशप्रवाहानि नदीजलानि।
कल्हारशीताः पवनाः प्रवांति नभो विमुक्ताश्च दिशः प्रकाशाः॥

अर्थात्, 'सहस्राक्ष दैवाधिदेव इन्द्र ने पावस-ऋतु मे पानी से पृथ्वी को सीच कर तृप्त किया। अब वे धान को पका कर अपने आपको कृतकर्म अनुभव करते हैं। इस ऋतु मे तीन बातो मे शोभा जैसे बॅट गई है: एक तो छितवन की शाखो मे; दूसरे चॉद, तारे और सूर्य की रोशनी में, तीसरे उत्तम हाथियो की लीलाओ मे। आसमान मे से बादल छॅट गये हैं और वह ऐसा साफ चमकीला जान पडता है जैसे कोई मॅजा हुआ शस्त्र हो। नदियो की धार काफी हलकी और दुबली हो गई है। हवा मे कमलो की सुगन्ध है। और आकाश खुला-खिला, दिशाएँ धुली-धुली-सी उजली लगती है।'

: २ :

व्यास

व्यक्ति व्यास के विषय मे बहुत कम सामग्री उपलब्ध है। विभिन्न विक्रमादित्यो की तरह अट्ठाइस व्यासो के नाम मिलते है। कहा जाता है कि इन व्यासो ने विभिन्न कालो मे वेदो का सग्रह किया था। वेदव्यास, पुराणो के प्रणेता व्यास और महाभारतकार व्यास एक ही थे या नहीं, इसके बारे मे मतभेद है। जनश्रुति तीनो को एक ही मानती है। उनका पूरा नाम कृष्णद्वैपायन व्यास था और उन्ही व्यास के बारे मे यह दो लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं कि अठारह पुराणो का निचोड़ निकाल कर व्यास ने दो बातें कही : 'परोपकाराय पुण्याना पापाय परपीडनम्' (परोपकार ही पुण्य है और परपीड़न ही पाप है)। दूसरी लोकोक्ति मौलिकता के विषय मे है। अब जो लिखा जाता है वह सब व्यास का उच्छिष्ट या जूठन है—'व्यासोच्छिष्ट जगत्सर्वम्।'

'व्यास' शब्द के अनेक अर्थ हैं, उनमें मुख्य अर्थ है सम्पादक अथवा सग्राहक। व्यास के चार शिष्यो ने चारो वेदो का सम्पादन किया : पैल ने ऋग्वेद का, वैशंपायन ने यजुर्वेद का, जैमिनी ने सामवेद का और सुमन्त ने अथर्ववेद का। व्यास नाम का उल्लेख तैत्तिरीय आरण्यक में वैशपायन के साथ-साथ मिलता है। पाणिनि ने महाभारत का उल्लेख किया है; वासुदेव, अर्जुन और युधिष्ठिर का भी उल्लेख किया है। परन्तु 'व्यास' वहाँ विशेषण के रूप में आया है, विशेष्य के रूप में नहीं। ब्राह्मणों में पाण्डु और कुरु का उल्लेख नहीं है। हाँ, सांख्यायन गृह्यसूत्र में सुमन्त, जैमिनी, वैशंपायन और पैल का उल्लेख है। पुराणो मे ब्रह्मांड, वायु, विष्णु और भागवत व्यास का स्पष्ट निर्देश करते हैं। पुराण-संहितार्थ में व्यास के पंचम शिष्य सूत (या भाट) बताये

गये हैं। इन्ही को रोमहर्षण या लोमहर्षण भी कहा गया है। इन्ही के शिष्य उग्रश्रवा हुए और उनके प्रशिष्य सौति उग्रश्रवा। यो सूत तीन शाखाओ मे विभाजित माने गये : काश्यपिक, सावर्णिक और शाशपायनिक। डा० राधा-कुमुद मुखर्जी के मतानुसार सरस्वती नदी के तट पर काम्यक वन मे व्यास का आश्रम था।[1] वही व्यास ने २४,००० मूल श्लोको का 'भारत' रचा, जो कि उनके शिष्य वैशपायन ने परीक्षित-पुत्र जनमेजय के यज्ञ मे सुनाया। बाद मे नैमिषारण्य में शौनक के यज्ञ में वही भारत उग्रश्रवा सौति ने सुनाया। मौखिक रूप से यह परम्परा चलती रही। इन्ही व्यास ऋषि का नाम जहाँ एक ओर साधारण भाषा में क्षत्रिय पिता और ब्राह्मणी माता से उत्पन्न जाति के लिए सामान्य सज्ञा बन गया, वही सात चिरंजीवो मे अश्वत्थामा, बलि, हनुमान, विभीषण, कृप और परशुराम के साथ उनका नाम लिया जाने लगा। शब्द कल्पद्रुमकार ने बाद मे उसमे मार्कण्डेय भी जोड दिया है।

व्यास की उत्पत्ति-कथा महाभारत मे इस प्रकार से दी हुई है। वैसे तो महाभारत-पुराणो की सभी उत्पत्ति-कथाएँ बहुत-सी समाज-वैज्ञानिक और नृ-वैज्ञानिक सामग्री प्रस्तुत करती हैं। व्यास की उत्पत्ति-कथा महाभारत के शब्दो मे ही पढ़िये :

सत्यवती भीष्म से कह रही है : "हे भीष्म। मेरे धार्मिक पिता की एक धर्मार्थ नौका मेरे अधीन थी। मै वह चलाती थी। एक बार प्रथमतः यौवन-प्राप्ति-काल के समय, धर्मवेत्ताओ मे श्रेष्ठ बुद्धिमान् परमर्षि पराशर यमुना नदी पार करने की इच्छा से मेरी नौका के पास आया। मुझे नौका मे अकेली देख वह कामव्याकुल मुनि मेरे पास आकर मधुर भाषण करने लगा। मैंने अपना जन्मकुल बताकर, 'मै दास-कन्या हूँ' ऐसा कहा।

"पुत्र, मुझे उस समय उसके शाप का डर लगा और पिता का भय तो था ही। उसने मुझे दुर्लभ वर दिये। उसी कारण से मैं उसका परिहार न कर सकी। अपने तेज से मुझ बाला को पराभूत करके उसने अपने वश कर लिया। उसने अपने प्रभाव से चारो ओर कोहरा फैला दिया और तीर पर के लोगो को नाव नही दिखाई दे, ऐसी व्यवस्था की। पहले मेरे शरीर से मछली की अत्यन्त निन्द्य दुर्गन्धि आती थी। वह हटा कर उस मुनि ने मुझे यह शुभ गध दिया।"

"बाद मे उस मुनि ने मुझसे कहा : 'मेरे इस गर्भ को इस नदी के द्वीप

---

१. एन्शिन्ट इण्डियन एजूकेशन, पृ० ३३५।

मे रख कर तू कन्या ही बनी रहेगी।' वह पराशर-पुत्र महायोगी, महर्षि बना। वह कानीन, द्वैपायन, कृष्णवर्ण पुत्र वेदों का विभाग करने वाला बना अर्थात् उसे व्यासत्व प्राप्त हुआ।"

व्यक्ति व्यास के विषय मे केवल इतना ही पता है। परन्तु उसकी महारचनाएँ महाभारत और पुराणो के बारे मे बहुत खोज हो चुकी है और अभी भी हो रही है। महाभारत एक 'क्लासिक' शैली का महाकाव्य है। उसमे विराटता और भव्यता अधिक है, सौन्दर्य उतना नही। अंग्रेजी समालोचक हैजलिट ने 'रुचि के विषय मे' लिखते हुए कहा है : 'सब्लिमिटी एराइजेज फ्राम दि सोर्स आफ पावर' (शक्ति के स्रोत मे से भव्यता निर्मित होती है।) महा-भारत में इसी प्रकार का अखण्ड शक्ति-स्रोत है! टी० एस० इलियट ने 'वॉट इज ए क्लासिक' मे 'युग का क्षण और कला का क्षण जहाँ तदाकार होते हैं' उसे ही 'क्लासिक' माना है। महाभारत में युग का सत्य जैसे नीति के सत्य से एकाकार हो उठा है।

पुराणो की भी प्रायः वही दशा है : अनिश्चित काल, अनिश्चित सगति। पुराणो मे भौगोलिक वर्णन का विषय ही ले लें तो भारतवर्ष बर्फानी पहाड़ों के दक्षिण में माना गया है। उसमे सात पर्वत प्रधान है। नदियो के विचित्र वर्णन हैं। यवन, शक, पह्लक, हूण (दूसरी शती ईसा पूर्व) और गुप्त (ईसा की छठी शती) वशों का भी उल्लेख है। प्रत्येक पुराण का स्थानविशेष से सम्बन्ध है : ब्रह्मपुराण का उडीसा से, पद्म का पुष्कर से, अग्नि का गया से, वराह का मथुरा से, वामन का थानेश्वर से, कर्म का बनारस से, मत्स्य का नर्मदा तट के ब्राह्मणो से। भविष्य पुराण का उल्लेख आपस्तम्ब के धर्मसूत्रो में (ईसा पूर्व दूसरी शती) मिलता है। इस प्रकार व्यास का रचना-काल निर्णय बहुत कठिन वस्तु है।

महाभारत सुन्दर उक्तियों का कोष है। अनेक स्थल ऐसे है, जिनका उदा-हरण नही। ययाति पुरु से कहता है :

यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
एकस्यापि न पर्याप्तं तस्मात् तृष्णां परित्यजेत्॥

'इस पृथ्वी पर जितने चावल, जौ, सोना, पशु और स्त्रियाँ आदि योग्य पदार्थ है, वे एक कामी पुरुष के लिए काफी नहीं हैं। इसलिए तृष्णा छोड दे।'

अष्टक ययाति से कहता है :

प्रभुरग्निः तपतने भूमिरव्यसने प्रभुः ।
प्रभुः सूर्यः प्रकाशिते सतां त अभ्यागतः प्रभुः ॥

'ताप देने वालो मे अग्नि, संग्रह करने वालो मे धरती और प्रकाश देने वालो मे सूर्य जैसे श्रेष्ठ है, उसी प्रकार से सज्जनो मे अतिथि श्रेष्ठ है।'

भीष्म ने दुर्योधन से कहा :

कीर्तिरक्षणमातिष्ठ कीर्तिर्हि परमं बलम् ।
नष्टकीर्तेर्मनुष्यस्य जीवितं ह्यफलं स्मृतम् ॥

'अपनी कीर्ति की रक्षा करो। दुर्योधन! कीर्ति ही परम-बल है। जिस मनुष्य की कीर्ति नष्ट होती है, उसका जीवन निष्फल है।'

आदिव्यास की दूसरी शैलीगत विशेषता है, नामावलियाँ देने का मोह। अनेक स्थलो पर लम्बी-लम्बी नामावलियाँ दी हुई है।

व्यास हमारे सास्कृतिक उषःकाल के अग्रदूत है। ऐतिहासिक प्रमाणो के अभाव मे कल्पना, जनश्रुति और अनुमान के कुहासे से लिपटे महा-रचयिता हैं, परन्तु उनकी प्रतिभा एक साथ ही गरुड को भाँति ऊँचे उड़ने वाली और पिपीलिका की भाँति सूक्ष्म-से-सूक्ष्म विवरणो को न छोडने वाली है।

: ३ :

भवभूति

मालती-माधव मे बुद्धरक्षिता कहती है : 'स्त्रियो और फूलो की सुकुमारता में क्या समानता है ? उन्हे पहिले बहुत सँभलकर छूना पड़ता है। उनका विश्वास प्राप्त करने से पहले उनसे अधिक प्रगल्भता से पेश आने पर, बाद मे उनके सहवास से जुगुप्सा उत्पन्न होती है।' भवभूति, नारी-चित्रण मे इसी कारण कुटुम्ब और परिवार की मर्यादा की रक्षा विशेष रूप से करने मे तत्पर दिखाई देते है।

कालिदास और भवभूति के समय रगमच पर स्त्रियो के चरित्र स्त्रियो द्वारा ही अभिनीत होते थे और वे भी गणिकाओ द्वारा अधिक। मालती, सरस्वती के 'लक्ष्मीस्वयम्वर' नाटक का प्रयोग इन्द्र-सभा मे करने के लिए जब कुलीन ऋषि-पत्नियो ने अस्वीकृति व्यक्त की, तब भरत ने स्त्री-पात्रो के लिए उर्वशी, मेनका आदि अप्सराओ की अर्थात् स्वर्गलोक की वारयोषिताओ को नियोजना की। यह उल्लेख कालिदास के 'विक्रमोर्वशीय' में है। ग० वि० केतकर के अनुसार संस्कृत नाटको की स्त्री-पात्रो के लिए महाराष्ट्र की वारवनिताएँ अधिक थी, कारण, उन स्त्री-पात्रो के मुख मे महाराष्ट्री प्राकृत की योजना अधिक की जाती थी। 'विक्रमोर्वशीय' की नायिका उर्वशी तो अप्सरा है ही, 'शकुन्तला' की नायिका स्वयम् वेश्या नही तो वेश्यापुत्री (मेनका की लड़की) है और 'मालविकाग्निमित्र' की नायिका यद्यपि है कुलीन घराने की, तथापि उसके द्वारा रंगमच पर गायन-वादन-नर्तन रसभाव-दिग्दर्शक अभिनय करवाया गया है, जो वेश्या अभिनेत्रियो के अनुकूल था। परन्तु भवभूति की नायिकाएं अर्थात् सीता, मालती इत्यादि कुलीन उच्च-वर्ग की हैं। उस समय सीता का अभिनय करने योग्य नटी नही

मिल सकती थी, और न मालती के ही। उचित अभिनेत्रियो के अभाव मे उन नाटको मे उनका यथोचित प्रदर्शन नही होता था, इसी से भवभूति के नाटक इतने यशस्वी नही हुए। कथानक की दृष्टि से भी कालिदास मे जिस प्रकार की शृङ्गार भावना गुदगुदी करती-सी दिखाई देती है, उससे उलटे भवभूति के कथानक साधारण श्रोताओ की समझ मे सहज न आ सकने वाले उदात्त भावो से भरे रहते है। महामहोपाध्याय मिराशी के अनुसार कालिदास के नायक मध्यमवयीन बहुपत्नी-प्रिय है। उसका कारण शायद उनका राजाश्रय है। राज-दरबार के वातावरण के चित्रण में, राज-चरित मे बहुपत्नीकत्व तो आ ही जाता है। भवभूति ने जब अपने नाटक लिखे तब ऐसे राजाश्रय के बन्धन नही थे। उसके नायक एकपत्नीव्रती है, वे नारी के प्रति निष्ठावान् है। महावीरचरित तथा उत्तररामचरित का नायक राम है, जो अपनी एकपत्नीव्रत की टेक के लिए विख्यात है। 'मालती-माधव' नामक काल्पनिक प्रकरण का नायक कुमार है।

मालती और माधव, मदयन्तिका और मकरन्द की प्रेमकथा मे नायक-नायिकाओ के पिता-माता देवरात, भूरिवसु तथा कामन्दकी जब विश्वविद्यालय मे पढते थे, तभी से उन्होने यह निश्चय कर रखा था कि यदि एक के कन्या और एक के पुत्र होगा तो दोनो का परस्पर विवाह कर दिया जायगा। बड़े होने पर ये दोनों सहाध्यायी दो राजाओं के सचिव बनते है। विद्यार्थी-काल मे की हुई प्रतिज्ञा मालती के पिता भूरिवसु पालन नहीं कर सकते, क्योंकि उनके स्वामी पद्मरागपुर के राजा अपने कृपापात्र नन्दन नामक राजा से मालती का विवाह करने का प्रस्ताव करते है। स्वामी की इच्छापूर्ति के विचार से वह मालती के पिता की मॉग खुले-खुले अस्वीकार नही कर सकते थे। मालती-माधव की इच्छा है कि दोनो का विवाह हो। इसीलिए कामदकी को वे इस काम पर नियुक्त करते हैं। राजा और नन्दन को फॅसाने के लिए उन्हे अपना हेतु गुप्त रखना पड़ता है। माधव के पिता देवरात इस विवाह को घटित करने के लिए शिक्षा के विचार से माधव को पद्मपुर भेज देते हैं। कामन्दकी वहाँ माधव को किसी काम के लिए राजमार्ग से भूरिवसु के प्रासाद पर से बार-बार भेजती है। माधव मन्द गति से चलता है। मालती बार-बार उसे देखती है। दोनो ही सुन्दर और तरुण होने के कारण परस्पर आकर्षण स्वाभाविक है। मालती माधव का चित्र बनाती है, और बकुल-माला गूॅथती है—यह दोनो बाते कामन्दकी माधव तक पहुॅचती हैं। कामन्दकी उसे साहस के लिए प्रवृत्त करती है, परन्तु मालती उसके लिए राजी नहीं है। देवो को मनुष्य-बलि देने

वाला अघोरघट, मालती को बलि बनाने भगा ले जाता है। परन्तु ठीक समय पर माधव अघोरघट को मारकर उसे छुडाता है। इस तरह से नायक नायिका को संकट मे से अचानक बचा लेता है, अतः उनका प्रेम और दृढ होता है।

इधर भूरिवसु नन्दन से मालती का ब्याह कर देने की तैयारी कर चुका है। वधू कुल-रीति के अनुसार कुलदैवत के वन्दनार्थ मन्दिर मे आती है। कामन्दकी की प्रेरणा से माधव मन्दिर के अन्दर छिपा रहता है। निराश मालती के वहाँ पहुँचते ही कामन्दकी आगे बढकर मालती को माधव को सौप देती है और दोनो विवाह के लिए दूर चले जाते है। माधव का मित्र मकरन्द वधू के लिए मन्दिर मे भेजी गई पोशाक पहन कर वधू के रूप मे गाजे-बाजे के साथ नन्दन के घर पहुँच जाता है। उसके द्वारा ताडित होकर नन्दन वधू का मुँह फिर न देखने की प्रतिज्ञा करके चल देता है। अनन्तर मालती-वेषधारी मकरन्द के सोते समय कामन्दकी की शिष्या बुद्धरक्षिता, नन्दन की बहन मदयन्तिका को लेकर वहाँ आती है। मदयन्तिका को मकरन्द ने बाघ के पंजे से छुड़ाया था। अतः परस्पर अनुरक्ति थी ही, मदयन्तिका मकरन्द के प्रति प्रेम व्यक्त करती है, तब मालती वेषधारी मकरन्द उठता है। बुद्धरक्षिता उन्हे भाग जाने की सलाह देती है। राजा का क्रोध कुछ कारणो से दूर हो जाता है और अन्त सुखमय होता है।

इस कथानक मे दूसरे अक मे मालती की चतुर सखी लवगिका मालती की बकुल-माला माधव को देते हुए कहती है: "प्रिय सखे, मैं तो इतना ही जानती हूँ कि जिस पर अपना गाढ प्रेम है, उस सुन्दर प्रेमी से समागम इस ससार मे गाढ प्रीति को शोभा देने वाला, दुर्लभ मनोरथ का स्तुत्य हल है।" कामन्दकी अवलोकिता को कहती है: "विवाह मे परस्पर प्रीति सर्वोत्तम समाधान की बात है। अगिरस ऋषि के अनुसार वाणी, मन और नेत्र की प्रवृत्ति जिसकी ओर है, उसी से विवाह करने से सदा कल्याण-वृद्धि होती है:

इतरेतरानुरागौ हि दारकर्मणि प्रऽराध्यमगलम्।
गीतश्चायमर्थोऽङ्गिरसा यस्या मनश्चक्षुषोरम्नुबन्धस्तस्यामृद्धिरिति ॥

कामन्दकी का विवाहोत्तर उपदेश बहुत ही सुन्दर है:

प्रेयोमित्रं बन्धुना वामसग्रा
सर्वे कामाः शेवधिर्जीवितं वा।
स्त्रीणाम्भर्त्ता धर्मदाराश्च पुंसा-
मित्यन्योन्यं वत्सयोर्ज्ञातमस्तु ॥

लवंगिका की स्त्री के जन्म के विषय में वह उक्ति बहुत मार्मिक है, जहाँ पुरुष के स्वामी बनकर स्त्री पर सदैव शासन करने का विरोध किया गया है।

उत्तररामचरित मे विवाह का दृश्य चित्रपटी मे आने पर राम सीता का हाथ अपने हाथ मे लेकर कहते है : "हे सीते, गौतम द्वारा मेरे हाथो मे दिया हुआ हाथ यही है, जिसका स्पर्श मुझे सुखद जान पड़ा। उसका पुनः प्रत्यय मुझे हो रहा है।" आगे चलकर प्रिया के विषय मे राम की यह उक्ति देखिए : "सचमुच यह घर की लक्ष्मी, नेत्रो मे अमृत-शलाका, स्पर्श को चन्दन का अवलेप है। इसका स्निग्ध शीतल हाथ मोतियो के हार के समान है। इसके वियोग को छोड़कर मुझे इसकी कौन-सी बात प्रिय नही।"

उत्तररामचरित के दूसरे अक मे शम्बूक-प्रकरण मे राम की यह उक्ति कितनी करुण-मार्मिक है :

त्वया सह निवत्स्यामि वनेषु मधुगन्धिषु।
इति हारमतैवासौ स्नेहस्तस्याः स तादृशः॥
न किंचिदपि कुर्वाणः सौख्यैर्दुःखान्यपोहति।
तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः॥

छठे अंक मे वाल्मीकि के आश्रम के पास अरण्य मे जहाँ लक्ष्मण ने सीता को छोड़ा था, वहाँ लव-कुश को देखकर राम रो उठते है। तब लव, कुश से कहता है : "यह क्या ? मागल्य का आगार इनका मुख-कमल ओस-कणो से भीगे हुए कमल-सा क्यो दीखने लगा।" राम लव-कुश से दो श्लोक कहने के लिए कहते हैं, तो कुश कहता है :

प्रकृत्यैव प्रिया सीता रामस्यासीन्महात्मनः।
प्रियभावः स तु तया स्वगुणैरेव वर्धितः॥
तथैव रामः सीतायाः प्राणेभ्योऽपि प्रियोऽभवत्।
हृदयस्त्वेव जानाति प्रीतियोगं परस्परम्॥

इसी प्रकार सीता एक स्थल पर कहती है :

अहमेतस्य हृदयं जानामि ममाप्येषः।

भवभूति, नारी-हृदय की कोमल भावनाओं का, प्रेम और विरह का, करुण शृङ्गार का, रम्योदात्त चित्रण करने मे अद्वितीय थे।

: ४ :

कालिदास

महाकवि कालिदास पर पूरी पुस्तक लिखनी चाहिए। परन्तु इस लेख मे, सक्षेप मे हम उनके काल और आश्रयदाता सम्बन्धी चर्चा, कालिदास के मत में राजा और शासन के गुण, उनके काव्य में महाकाव्य-गुण और शब्द-शिल्प तथा सूक्तियाँ आदि पर कुछ अध्ययन प्रस्तुत करेंगे।

कालिदास का सम्बन्ध किसी विक्रम से अथवा उसके पुत्र से रहा होगा। यह विक्रम अपने मूल-पुरुष से पाँचवी पीढी मे रहा होगा और उसके प्रपितामह का नाम 'चन्द्र' या चन्द्र के समान कुछ रहा होगा, यह 'विक्रमोर्वशीय' के अंक ५, श्लोक २१ से जाना जाता है। इसका नाम 'कुमार' दिया है और उसे महासेन कार्तिकेय की उपमा दी है। 'कुमारसंभव' काव्य के नाम से इस 'कुमार' नामक आश्रयदाता के सम्बन्ध मे अनुमान को पुष्टि मिलती है। महाभारत में दुष्यंत बड़े साम्राज्य का अधिष्ठाता नहीं है; परन्तु कालिदास का दुष्यंत आसमुद्र पृथ्वी का प्रतिपालक है। कालिदास की रचनाओं से यह जान पड़ता है कि उसका जीवन-समय शाँत, समृद्ध, सुस्थिर शासन का काल था। बुद्धधर्मियो के पास राजनीतिक सत्ता नही थी। शिव, विष्णु, काली की उपासना होती थी। यज्ञ-याग भी होते रहते थे। दाशरथी राम को विष्णु का अवतार मानते थे। ज्योतिष और शिल्पशास्त्र बहुत उन्नत अवस्था मे थे और कामशास्त्र लोगो की रुचि का शास्त्र था। नाटक वसंतोत्सव के साथ खेले जाते थे। कालिदास का स्पष्ट उल्लेख सबसे पुराने लेखको मे बाणभट्ट और सम्राट् सत्याश्रय पुलकेशी द्वितीय ने किया है। यह दोनो एक ही काल के यानी सातवी शती ईस्वी के पूर्वार्द्ध के हैं। अतः कालिदास और 'कुमार' उसी काल में हुए होंगे।

कालिदास ने जिन ऐतिहासिक व्यक्तियो का उल्लेख किया है, उनमें पुष्यमित्र, वसुमित्र और अग्निमित्र निश्चित् रूप से मिलते हैं। ये शुङ्ग वंश के प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ सम्राट् थे। इनका काल ईसा पूर्व दूसरी शती है। परन्तु कालिदास का आश्रयदाता कुमार शुङ्ग वंश का नहीं था। शुङ्गोत्तर काल का था।

अश्वघोष प्रथम शती ईस्वी के उत्तरार्द्ध और दूसरी शती के पूर्वार्द्ध में हुआ। अश्वघोष ने अपने बुद्धचरित में, राजपुत्र गौतम जब पर्यटन के लिए बाहर जाते हैं, तब नागरियो की हडबड़ाहट का जो वर्णन किया है, उसका अनुकरण कालिदास ने कुमारसंभव (सर्ग ७, श्लोक ५७ से ६२) और रघुवंश (सर्ग ७, श्लोक ५ से १२) में किया है। अश्वघोष और कालिदास की भाषा-शैली भी एक-सी है। कालिदास अश्वघोष के बाद हुए होंगे, ऐसा जान पडता है। कुछ विद्वान् इससे उलटे अश्वघोष को कालिदास का अनुकरण करनेवाला मानते हैं।

कालिदास का विष्णुपुराण से परिचय रहा होगा। क्योंकि उसमें राम की पहली चार पीढियाँ दीर्घबाहु, रघु, अज और दशरथ दी हैं। वाल्मीकि रामायण मे ययाति, नाभाग, अज और दशरथ कही गई हैं। कालिदास ने दाक्षिणावर्तनाथ और अरुणाचलनाथ के थ में जो विष्णुपुराण का उद्धरण दिया है— "मूलकाद् दशरथः तस्माद् दिलीपः ततश्च विश्वसहः तस्माच्च खट्वांगो दिलीपः खट्वांगाद् रघुरभवत् रघोरजः अजाद् दशरथः।" वही क्रम कालिदास ने अपनाया है। मालवे मे उज्जयिनी के शक क्षत्रियो का राज्य ३८८ ईस्वी के करीब नष्ट हुआ। वे शैव थे। परन्तु कालिदास का आश्रयदाता कोई वैष्णव रहा होगा। इससे उलटे कुछ विद्वान् कालिदास को शैव मानते हैं।

कालिदास के मालविकाग्निमित्र में भास को पूर्वकवि माना है। भास के आज उपलब्ध तेरह नाटकों में से प्रतिमा, अविमारक, अभिषेक, बालचरित और स्वप्नवासवदत्ता कालिदास के पूर्ण परिचय के नाटक थे। भास कवि का समय ईसा की चौथी शती है। मन्दसौर के ४७३ ईस्वी के शिलालेख में कालिदासी कल्पना है। इसलिए कालिदास का काल पाँचवी शती होगा, ऐसा कुछ विद्वानो को जान पड़ता है। इस सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन भगवतशरण उपाध्याय के अंग्रेजी ग्रन्थ 'इण्डिया इन कालिदास' के अन्तिम परिशिष्ट 'दि डेट आफ कालिदास' में मिलता है। माधव केशव काटदरे की खोजो के अनुसार कालिदास कुमारगुप्त का आश्रित था और कालिदास का काल ३८२ ईस्वी से ४६७ ईस्वी तक रहा होगा।

कालिदास उपाधि वाले अन्य कई कवि हुए। एक कालिदास के विषय मे काशिनाथ कृष्ण लेले 'भोज राजा उसका आश्रयदाता था' ऐसा मानते है। नवसाहसांक काव्य की भाषा-शैली से उसका कर्ता पद्मगुप्त इस उपाधि से विभूषित रहा होगा—ऐसा माना जाता है। उस समय भोजदेव के दरबार मे छत्तप नामक एक प्रसिद्ध कवि था। तब कुछ विद्वान् इस छत्तप को ही कालिदास मानते है। इस कालिदास का निचुल कवि से बड़ा स्नेह था। मल्लिनाथ की मेघदूत टीका मे 'स्थानादस्मात्' नामक १४वें श्लोक मे दिङ्नाग और निचुल शब्द देखकर इस बात की पुष्टि की गई है। परन्तु मेघदूतकर्ता कालिदास विक्रम के दरबार मे ईसा की छठी शती मे होगा, तो निचुल भोजराज के दरबार में ईसा की ११वीं शती मे था। इस सम्बन्ध मे 'नानार्थशब्दरत्न' नाम के एक कोशग्रन्थ पर निचुल कवि की तरला नामक व्याख्या उपलब्ध हुई है। इसके आरम्भ मे निचुल कवि ने कहा है :

स्वमित्र कालिदासोक्त शब्दरत्नार्थजृम्भिताम् ।
तरलाख्या लसद्व्याख्यामाख्याता तन्मतानुगाम् ।।

और अन्त मे है : "इति श्रीमन् महाराज शिरोमणि श्री भोजराज प्रबोधित निचुल कवि योगिचन्द्र निर्माताया महाकवि कालिदासस्य नानार्थशब्दरत्नकोशदीपिकाया तरलाख्याया तृतीयनिबन्धनम् ।" (मद्रास गवर्नमेंट हस्तलिखित पुस्तकों की सूची, सन् १६०६, पृष्ठ ११७५)।

कालिदास को जब हम महाकवि कहते है तो उसके काव्यगुणों की दृष्टि से, न कि उसकी रचनाओं की बृहदाकारिता से। 'महान्मतर्थराशिं कवयति स महाकविः"—यह प्रदीर्घ रचनावली सीधी कसौटी उनके बारे में सच नहीं है। गुणानुरूप और अवस्थानुरूप यह कवि कौन होता है, यह विस्तार से राजशेखर ने कहा है। गुण की दृष्टि से रचनाकवि, शब्दकवि, अर्थकवि जैसे ग्यारह प्रकार हैं और प्रत्येक का विशेष गुण बताया है। उनमे कभी कनिष्ठ, मध्यम और सर्वगुणयोगी महाकवि की श्रेणियाँ उसने की हैं। उसके अनुसार सर्वश्रेष्ठ कवि 'कविराज' होते है। अभिनवगुप्त के अनुसार उत्कट रस का चैतन्य, जिनमे व्यक्त है, ऐसी पंक्तियाँ लेखनी से सहज प्रसृत करने की प्रखर प्रतिभा जिसके पास है, वही महाकवि कहलाता है। श्री समर्थ रामदास ने महाकवि के लिए 'कवेश्वर' शब्द प्रयुक्त किया है। उसमे भाषाप्रभुत्व और भगवद्भक्ति और अनुताप आवश्यक माना है।

कालिदास का भाषाप्रभुत्व असामान्य था, यह निस्सन्देह सच है। तभी जर्मन कवि गोएटे उनके शाकुन्तल को ससार के श्रेष्ठ आनन्ददायक ग्रन्थो में

से एक मानता था। शाकुन्तल का पहला अंग्रेजी अनुवाद सर विलियम जॉन्स ने किया और उसे शेक्सपीयर के तुल्यगुण सिद्ध किया। जर्मन विद्वान् हम्बोल्ड्ट ने लिखा है कि .

"प्रकृति-द्वारा प्रभावित प्रेमी लोगो के चित्त पर जो भाव अङ्कित होते रहते हैं, उन भावो को व्यक्त करने मे शकुन्तला के प्रसिद्ध रचयिता कालिदास बड़े ही सिद्धहस्त है। भाव-व्यक्त करने मे जो मृदुलता उन्होने दिखलाई है और रचनात्मक कल्पना की जो बहुलता का परिचय उनमे मिला है, उससे ससार के कवियो मे उनका स्थान बहुत ऊँचा हो गया है।"

उनके शब्द-शिल्प के सर्वोत्तम प्रमाण है उनकी उपमाएँ और सूक्तियाँ। उपमाओ के कुछ प्रसिद्ध उदाहरण है—"कुश से कुमुद्वती के अतिथि नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ, जैसे रात्रि के पिछले भाग मे बुद्धि विशेष निर्मल होकर जाग्रत रहती है।" या "अगस्त तारे के पास सूर्य आ जाने के कारण हिमालय पर हिम ऐसे गलने लगी मानो आनन्द-शीत के अश्रु हो।" शकुन्तला को अनसूया और प्रियम्वदा के बीच मे देखकर दुष्यन्त को ऐसे लगा "मानो दो विशाखा नक्षत्रो के बीच मे चन्द्रकला हो।"

और सूक्तियो का तो कालिदास जैसे ख़जाना है :

सज्जन के लक्षण :

निःशब्दोऽपि प्रदिशसि जलं याचितश्चातकेभ्य. ।
प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव ॥

(उत्तरमेघ)

'सज्जन लोग उन्ही को कहते है जो याचक की अभिलाषा का उत्तर केवल वाचालता से नही, पर अभिलाषा-पूर्ति से करते है। जैसे चातक की प्यास को मेघ न गरजते हुए तृप्त करते है।'

कृतज्ञता :

न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय ।
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चै ॥

(पूर्वमेघ)

'साधारण मनुष्य के पास भी यदि कोई मित्र जाय तो वह उसके पूर्व उपकार स्मरण करके यथासम्भव सहायता करता है और विमुख नही होने देता। और मन से बड़े आदमी का फिर क्या कहना!'

मित्र-महिमा :

दयितास्वनवस्थितं नृणां न खलु प्रेम चलं सुहृज्जने ॥

(कुमारसंभव)

'पुरुष का प्रेम पत्नी पर निश्चल नहीं होता, परन्तु सच्चे मित्र पर प्रेम अचल होता है।'

शरणागत-रक्षा :

क्षुद्रेऽपि नूनं शरणं प्रपन्ने ।
ममत्वमुच्चैः शिरसामतीव ॥

(कुमारसंभव)

'क्षुद्र जाति का और गुणहीन मनुष्य भी यदि शरण में आये तो सज्जन लोग उसे उतना ही प्रेम सिखाते हैं जितना उच्चकुलोत्पन्न गुणवान मनुष्य पर।'

आदर्श-सती :

कल्याणबुद्धेरथवा तवायं न कामचारो मयि शंकनीयः ।
ममैव जन्मान्तरपातकानां विपाकविस्फूर्जथुरप्रसह्यः ॥
साहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टिरूर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये ।
भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः ॥

(रघुवंश)

'जब राम गर्भवती सीता को वन में भेज देते हैं तब लक्ष्मण के हाथ वह संदेश भेजती है कि सब देवता, वानर और राक्षसों के सामने अग्नि-परीक्षा में शुद्ध होने पर भी अब मेरा त्याग आप करते हैं, यह क्या आपके कुल को सुहाता है ? 'आप बुद्धिमान हैं, जो कुछ आपने किया वह सोच समझ कर ही किया होगा। मुझे लगता है कि यह वज्राघात मेरे पूर्व-जन्म के पापों का ही फल है। इसलिए मैं प्रसूति तक सूर्य की ओर दृष्टि लगाकर तपस्या करूँगी। इसका फल होगा कि अगले जन्म में मेरा आपका वियोग नहीं होगा।'

प्राध्यापक म० अ० मेहदले ने कालिदास की प्रतीक-योजना पर कुछ लेख लिखे हैं। उनके अनुसार शाकुन्तल में हिरन का प्रतीक महाकवि ने विशेष अर्थ में प्रयुक्त किया है। वैखानस जब नाटक के आरम्भ में राजा से कहता है कि—'यह आश्रममृग है, तुम इसे न मारो' तब उसमें मानो कालिदास यह अन्योक्ति से कहना चाहता है कि "शकुन्तला आश्रमकन्यका है, तू उससे अस्थिर प्रणय का प्राणलेवा खेल मत खेल !"

इसी प्रकार से उस समय के राजा के लिए कालिदास ने भ्रमर का प्रतीक प्रयुक्त किया है। शकुन्तला नाटक के पहले अंक में सखियों सहित शकुन्तला

वृक्षो के सिंचन मे मग्न है। एक भ्रमर उसके मुख के पास मॅडराने लगता है। उसकी आँखो, कपोलो और अंधरो तक को वह भ्रमर स्पर्श करता है। इस भ्रमर-बाधा के बाद ही राजा वहाँ शकुन्तला के सामने प्रकट होता है। तीसरे अंक मे राजा ने खुद अपनी तुलना भ्रमर से की है। अनसूया, प्रियम्वदा हट गई हैं और राजा शकुन्तला से गांधर्व-विवाह का प्रस्ताव करता है, और बाद में किसी ताजे फूल से जैसे भ्रमर रस लेता है, वैसे मै तुम्हे ··· आदि कहता है। पाँचवे अंक के आरम्भिक श्लोक मे राजा की हसपदिका नामक रानी राजा को भ्रमर कहती है। पुरानी रानी वसुमती राजा को अब प्रिय नही है, जैसे भ्रमर आम्रमंजरी को छोड़कर कमल मे रहने लगता है। इसी पाँचवें अक में पुन जब गौतमी शकुन्तला का अवगुण्ठन दूर करती है, तब राजा कहता है: "मेरी स्थिति कुन्दकलिका के आस-पास मॅडराने वाले भ्रमर की तरह से है।" छठे अंक में विदूषक के मुख से कालिदास ने कहलवाया है: "हे मधुक! यह एक तुझ पर अनुरक्त मधुकरी फूल पर बैठी तेरी राह देख रही है। वह प्यासी है, फिर भी तेरे बिना वह फूल का रस नही पीती। उस मधुकर की ओर न जाकर व्यर्थ उस शकुन्तला के पीछे क्यो तू भटकता है?" और यही विदूषक अन्त में एक स्थान पर कहता है: "यह राजा और यह भौंरे! दोनों स्वभाव से टेढ़े जाँयगे। उनका निषेध करने पर भी वे अपना हठ नही छोड़ेगे!" कालिदास जैसे महाकवि के स्पर्श मात्र से प्रकृति के हिरन, भ्रमर जैसे साधारण आलंबन कैसे कुन्दन बन जाते हैं, और अधिक अर्थपूर्ण जान पडते हैं, यह दर्शनीय है।

यह तो हुआ कालिदास का व्यक्तित्व और कला-पक्ष, अब युग-पक्ष देखे। जैसे अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि तथा आलोचक टॉमस स्टर्न इलियट ने 'वॉट इज़ ए क्लासिक?' नामक वर्जिस सोसायटी के भाषण मे कहा है कि महाकाव्य में युग का क्षण व कलाकार का क्षण एकाकार होते हैं। इस दृष्टि से कालिदास के युग का वर्णन जान लेना आवश्यक है।

श्री पं० क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय के अनुसार महाकवियो को समझने के लिए उनके परिवेष से, उनके समय की परिस्थितियो से परिचित होना आवश्यक होता है। परन्तु बड़े खेद की बात यह है कि सस्कृत-साहित्य के अधिकतर उज्ज्वल रत्नो के काल के सम्बन्ध में हम गम्भीर अन्धकार में पड़े हुए हैं। महाकवि कालिदास के सम्बन्ध मे तो यह बात विशेष रूप से लागू है।

कालिदास के समय भारतवर्ष में या उत्तर भारत मे कोई अखण्ड विस्तृत साम्राज्य नही था, देश कई छोटे-छोटे राज्यो मे विभक्त था। प्राचीन साहित्य

के चक्रवर्ती राजा का परिज्ञान कालिदास के समय वर्तमान था। मगध साम्राज्य की स्मृति भी नही मिटी थी। इसलिए रघुवंश के षष्ठ सर्ग मे इन्दुमती के स्वयम्वर के अवसर पर धात्री सुनन्दा मगधराज के सम्बन्ध मे कह रही है :

कामं नृपाः सन्तु सहस्रशोऽन्ये
राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम् ।
नक्षत्रताराग्रह - संकुलापि
ज्योतिष्मती चन्द्रमसेव रात्रिः ॥

'अवश्य ही इसके अतिरिक्त हजारो राजा हैं, परन्तु इनके कारण ही पृथ्वी को राजयुक्त कहते है। रात्रि मे असख्य नक्षत्र, तारा और ग्रह होने पर भी चन्द्रमा ही के कारण वह उज्ज्वल कहलाती है।'

इस समय भारतवर्ष के बाहर उत्तर पश्चिम देश मे यवन अर्थात् ग्रीक उपनिवेश का कुछ अवशेष रह गया था। इसलिए रघुवश के चतुर्थ सर्ग मे पारस देश जाते समय रघु ने यवन स्त्रियो का सौभाग्य हरण किया, (यवनी मुखपद्मानां सेहे मधुमद न सः) ऐसा कहा गया है। जल-पथ से भी यवनो से सम्बन्ध रहा। इस समय अलक्सेंद्रिया से जहाज माल लेकर अरब समुद्र के रास्ते भृगुकच्छ (भरोच) आते थे, जहाँ से उज्जयिनी तक सड़क आती थी। इस व्यापार के सम्बन्ध मे ग्रीक ज्योतिष-शास्त्र का ज्ञान उज्जयिनी मे पहुँच गया था और बाद को उज्जयिनी से पाटिलपुत्र (पटना) तक फैल गया। कालिदास अपने ग्रन्थो मे पाश्चात्य ज्योतिप-शास्त्र का ज्ञान प्रकट करते है। कुमारसभव के सप्तम सर्ग के प्रथम श्लोक मे ग्रीक शब्द "दियामेत्रन" के आधार पर "यामित्र" शब्द का प्रयोग मिलता है। वाणिज्य के क्रम मे यवन दासियाँ भी भारतवर्ष मे मॅगाई जाती थीं। 'शाकुन्तल' के द्वितीय अंक मे हम राजा दुष्यन्त को वन-पुष्पमाला-धारिणी यवन-स्त्रियो से घिरा हुआ पाते हैं (वन-पुष्पमालाधारिणीहिं जवनीहिं परिव्वुदो) इसी मार्ग से पाश्चात्य देशो मे भारतवर्ष से सूक्ष्म वस्त्र प्रभृति विलास की सामग्रियाँ पर्याप्त मात्रा मे जाती थी। इस समय वृहत्तर भारत के द्वीपो से लवग इत्यादि मसाले भारतवर्ष मे आते थे ("द्वीपान्तरानीतलवगपुष्पैरपाकृतस्वेदलवा मरुद्भिः")। भारतवर्ष के बाहर उत्तर मे वक्षु नदी के किनारे हूण जाति का आगमन हो चुका था, जिसका उल्लेख कालिदास रघुवंश के चतुर्थ सर्ग मे करते हैं। चीन इतिहास से पता चलता है कि ईसा पूर्व पहली सदी मे हूण लोग वहाँ पहुँच चुके थे। देश में अखण्ड साम्राज्य न होने पर भी शान्ति थी, कवि को सर्वत्र स्वच्छन्द विचरण करने का सौभाग्य प्राप्त था और देश के बाहर अन्य देशो के और वहाँ के लोगो

के विषय में पर्याप्त ज्ञान भी था। इस कारण एक उदार भावना की मुद्रा कालिदास के सब ग्रन्थो मे पाई जाती है।

विद्याधर शास्त्री के शब्दो मे कालिदास के अनुसार राजा कैसा हो, यह देखिये :

कालिदास नही चाहते कि उनके राजा केवल मृगया-व्यसनी, द्यूत निरत, मद्यप एवं स्त्री-लोलुप होकर राष्ट्र-रक्षण की अपेक्षा राष्ट्र-भक्षण में अधिक प्रवृत्त होने लगे। उन्नतिशील नृप का चित्रण करते हुए वे कहते हैं :

न मृगयाभिरतिर्न दुरोदरं न च शशिप्रतिमाभरणं मधु।
तमुदयाय न वा नवयौवना प्रियतमा यतमानमपाहरत्॥

राजा के लिए इन्द्रिय-दमनशील होना सर्वप्रथम आवश्यक है। जो राजा कामक्रोधादि प्रबल शत्रुओ को वश मे नहीं रख सकता, वह अपने बाह्य शत्रुओ का दमन नही कर सकता :

अनित्याः शत्रवो बाह्या विप्रकृष्टाश्च ते यतः।
अतः सोऽभ्यन्तरान्नित्यान् षट्पूर्वमजयद् रिपून्॥

व्यसनी राजा प्रजा का कल्याण नही कर सकते। राजा प्रजा के लिए आदर्श होता है। जिस राजा मे आदर्श का पतन हो जाता है, वह प्रजा को प्रभावित नही कर सकता। सीता-परित्याग मे राम ने उचित किया हो या अनुचित, परन्तु कालिदास की दृष्टि मे राम के सामने एक ही लक्ष्य था :

लोकापवादो बलवान्मतो मे।

राम सब कुछ सह सकता है पर वह लोकनिन्दा नही सह सकता। सिंहासनासीन राजा के लिए यह आवश्यक कर्तव्य हो जाता है कि वह प्रतिक्षण अपने कर्तव्य मे सावधान रहे। कालिदास ने इस कर्तव्य का निदर्शन एक परम लघु पर परम सारसम्पन्न वाक्य मे कर दिया है :

अविश्रमो लोकतन्त्राधिकारः (शकु०)

जो शासक है वह अपने आराम अथवा विश्राम का ध्यान नहीं रख सकता। उसके लिए एक यही जीवन का लक्ष्य हो जाता है कि वह निरन्तर अपने कर्म एवं विचारो को प्रजा के हित मे प्रयुक्त करता रहे :

प्रवर्तताां प्रकृतिहिताय पार्थिवः।

उसके देश मे कोई भी आपत्तिग्रस्त न हो और वह सदा प्रत्येक प्रजाजन के दुःख को दूर करने मे लगा रहे :

आपन्नस्य विषयवासिन आर्तिहरेण राज्ञा भवितव्यम्।

रघुवंश के द्वितीय सर्ग में इस भावना का जैसा मनोहर विकास किया गया है, वह विश्व-साहित्य मे अद्वितीय है। जब सिंह दिलीप से कहता है कि एक गौ के लिए तुम अपने एकछत्र राज्य और अद्वितीय कान्ति सम्पन्न शरीर की व्यर्थ बलि क्यो दे रहे हो :

एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वं नवं वयः कान्तमिदं वपुश्च।
अल्पस्य हेतोर्बहुहातुमिच्छन् विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम्॥

तो दिलीप उत्तर देते हैं :

क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्यशब्दो भुवनेषु रूढः।
राज्येन किं तद्विपरीतवृत्तेः प्राणैरुपक्रोशमलीमसैर्वा॥

जब कोई सबल किसी निर्बल पर वार कर रहा हो उस समय क्षत्रिय का यह धर्म हो जाता है कि वह अपने प्राणो की आहुति देकर सबसे पहले उस निर्बल की रक्षा करे।

राजा यदि प्रजा से कर लेते हैं तो वह इसलिए नही लेते कि उसके द्वारा वे अपनी कामचारिता की पूर्ति करे। भारतीय राजनीति मे कर लेने का एक-मात्र शोधन यही है कि एक लेकर उसके बदले मे हज़ार दिये जाने का लक्ष्य सामने रहे :

सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः।

मेघ यदि सागर से जल लेते हैं तो वह अपने लिए नही, अपितु तृषित धरा की तृप्ति के लिए ही उसका उपयोग करते है :

आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव।

राजाओ के इन प्रजा-हितकारी कार्यों का ही यह प्रताप था कि प्रतिक्षण प्रजाजन उनका अभिनन्दन करते थे :

पुरन्दरश्रीः पुरमुत्पताकं प्रविश्य पौरैरभिनन्द्यमानः।

और उनके स्वागत मे समस्त नगर को सजाते थे।

प्रजा-कल्याण की यह भावना केवल राजाओ में ही नही, अपितु उनकी महारानियो में भी सर्वप्रधान रहती थी—

ताभिर्गर्भः प्रजाभूत्यै दध्रे देवांशसम्भवः।

जो कालिदास को केवल सामन्ती कवि मानते है, उन्हे यह बात ध्यान से पुनर्विचार करने लायक जान पड़ेगी।

प्राकृत कवि

: ५ :

राजशेखर का सट्टक

हिन्दी में भारतेन्दु ने इस प्राकृत सट्टक का अपूर्ण अनुवाद किया है। उसे पढ कर, और जानने की जिज्ञासा हुई।

मागधी, शौरसेनी, पैशाची और महाराष्ट्री—ये प्राकृत के चार विभेद हैं। वररुचि ने (ईसा पूर्व ३८०) जब अपना व्याकरण रचा, तब महाराष्ट्री प्राकृत में अनेक भेद रहे होंगे, ऐसा अनुमान किया जाता है। दंडी ने 'महाराष्ट्राश्रयां भाषां प्रकृष्टं प्राकृतं विदुः' कहा। वररुचि ने प्राकृत के भेद बताते समय 'शेषं महाराष्ट्रीवत्' कहा है। कुछ लोगो के अनुसार वैदर्भी भी महाराष्ट्री ही थी। शातवाहन-काल मे महाराष्ट्री प्राकृत का जनपदो मे प्रचलन था। जैसे ब्राह्मण-राज्य के ह्रास के साथ-साथ सस्कृत शिथिल हुई, बौद्धो के पतन के साथ प्राकृत भी धीरे-धीरे पतनशील बनी। ईसा की ग्यारहवीं सदी तक राष्ट्रकूट, नल, मौर्य, कदब और चालुक्य राज्य महाराष्ट्र मे फैले थे। शालिवाहन राजा कवि-वत्सल थे और उन्होने प्राकृतो को प्रश्रय दिया था।

महाराष्ट्री प्राकृत के चार ग्रन्थ प्रख्यात है :

१. 'सप्तशती' या 'गाहा'। इसका लेखन बोडि 'चुल्लहा, मकरन्द सेन और हाल शालिवाहन ने किया। सात सौ आर्याबद्ध मुक्तको का यह शृङ्गार-परक ग्रन्थ है। श्री० ना० बनहट्टी ने इसे महाराष्ट्र का प्रथम जनपद-काव्य माना है।

२ प्रवरसेन का 'सेतुबंध काव्य'।

३. 'गौडवहो'।

४. राजशेखर का सट्टक 'कर्पूरमजरी'।

राजशेखर राजा ईसा की सातवी शती मे हुआ। माधव ने 'शकर-विजय' मे

कहा है कि यह केरल-क्षितिपाल, राजशेखर तथा शंकराचार्य का समकालीन था परन्तु यह बात बहुत विवादास्पद है। बालरामायण में महेन्द्रपाल के वर्णन के आधार पर फ्लीट ने राजशेखर का काल ई० ७६१ माना है। बालभारत में महोदय अथवा कान्यकुब्ज देश का उल्लेख है। वही के राजा महेन्द्रपाल का यह मन्त्री होगा, ऐसा माना जाता है। वेबर और भांडारकर के मत से राजशेखर दसवी शती मे हुआ होगा, विलसन दसवी-ग्यारहवी शती के मध्य में राजशेखर का काल मानते है। मैक्सम्यूलर राजशेखर को चौदहवी शती तक खीच लाये है। नार्वे के स्टेन कोनो के अनुसार राजशेखर का काल ८८४ से ९५९ ई० के बीच है। ग्यारहवी शती के क्षीरस्वामी ने राजशेखर का उल्लेख किया है जिससे मैक्सम्यूलर का मत ग़लत जान पडता है। राजशेखर ने 'रत्नाकर' और 'आनद-वर्धन' कवियो का उल्लेख किया है। ये कवि नवी शती मे हुए। इतिहासकार स्मिथ का मत है कि राजशेखर आठवी शती के अन्त मे और नौवी शती के आरम्भ में हुआ होगा। जैनधर्मी सोमदेव का 'यशोतिलक' ग्रंथ ९६० ई० में प्रख्यात हुआ था और इस कवि ने राजशेखर का उल्लेख किया है।

कुछ लोग राजशेखर को चेदि-देश-निवासी कहते हैं। परन्तु अब, भवभूति और राजशेखर महाराष्ट्रीय कवि थे, यह प्रायः निश्चित माना जाता है। राज-शेखर ने स्वय को 'महाराष्ट्र-चूड़ामणि' कहा है। विद्धशाल-मजिका तथा बाल-रामायण ग्रन्थो से, वह चेदि-निवासी था, ऐसा जान पड़ता है। बाद में वह कन्नौज मे गया। 'राजाम् शेखर' यह विग्रह अनुचित है, 'राजानाम् चन्द्रः शेखरः यस्य' यही बहुव्रीहि अधिक उचित जान पडता है। स्वयं 'कर्पूरमजरी' की भूमिका मे 'बालकवि कविराजो निर्भयराजस्य तथोपाध्यायः', ऐसा स्पष्ट उल्लेख है। कर्नाटक की तरुणियो के कुन्तलाभरण का वर्णन, लाटदेशीयो की सुख-लोलुपता का उल्लेख, कावेरी ताम्रपर्णी नदियो के वर्णन आदि उसकी रचना मे मिलते हैं। परन्तु उनसे कवि का देश निर्धारित करना उचित नही। राजशेखर की जाति क्या थी, यह भी विवादास्पद है। 'निर्भय राजा का वह उपाध्याय था,' ऐसे उल्लेख हैं। 'कर्पूरमजरी' मे 'चाहूवान कुल मौलिमालिका राजशेखर कवीन्द्र-गेहिनी' ऐसा परिपार्श्वक कहते है—चौहान कुल की क्षत्रिय स्त्री क्षत्रिय की ही गृहिणी बने ! साराशतः, राजशेखर का देश, काल, जाति, सभी कुछ अनिश्चित-सा है।

अनेक उल्लेखो से पता चलता है कि यह कवि शैवपंथीय यायावर ब्राह्मण था। वह कन्नौज मे जाकर रहा। उसके पिता का नाम महामन्त्री दर्दूक अथवा

दुहीक था और यह अकालजलद नामक कवि का पौत्र था। राजशेखर 'सब्ब-भासा-चऊर'—सब भाषाओ मे चतुर था। उसने प्रशंसा श्लोक मे कालिदास, दंडी, भारवी, माघ, भास प्रभृति की अनुशंसा की है। उसने 'विद्धशालभंजिका', 'बालभारत', 'बाल-रामायण' तथा 'कर्पूरमजरी' नामक प्राकृत ग्रन्थ रचे हैं। 'भुवनकोश' भी उसी ने लिखा है। 'प्रचण्ड-पाण्डव' तथा 'काव्यमीमासा' भी उसी की रचनाएँ कही जाती है। हेमचन्द्र के अनुसार 'हरविलास' भी उसी की कृति है। प्राकृत भाषा का यह प्रथम नाट ्कार है। इस नाटक मे गद्य शौरसेनी में और पद्य महाराष्ट्री प्राकृत मे लिखे गये है। उसने अनेक छन्दो मे रचना की है। परन्तु शार्दूलविक्रीडित उसका अतिप्रिय छन्द है। 'सट्टअं णच्चिदव्व' परिपार्श्वक ने कहा है। अर्थात् तब सट्टक मे बहुत-सा नाच रहता होगा, आधुनिक 'बैले' की तरह। 'कर्पूरमंजरी' मे सट्टक के और लक्षण यो दिये गये हैं कि सट्टक में चार अक होते हैं, प्रत्येक को जवनिकान्तर कहा जाता है। आगे होने वाले या बीते हुए कथानक का भाग अमुख्य पात्रो के द्वारा न कहला कर प्रस्तावना द्वारा स्पष्ट किया जाता है। नायिका दूर देश मे ले जाई जाती है। अद्भुत रस ही सट्टक का प्रधान रस होता है।[1]

'कर्पूरमंजरी' का कथानक विचित्रताओ से भरा हुआ है। चम्पानगरी का राजा चडपाल सार्वभौम राजा कैसे बना, यही मुख्यतः इसमे दरसाया गया है। चडपाल, रानी विभ्रमलेखा, चडपाल का विदूषक मित्र कपिंजल तथा दासी विचक्षणा वसतकाल का वर्णन कर रहे है। ऐसे समय मे विचक्षणा और कपिंजल में विनोदवार्ता आरम्भ होती है और लडाई मे उसका अन्त होता है। क्रोधित होकर वह जा ही रहा था कि भैरवानन्द आते है और कपिंजल उन्हे अन्दर ले जाता है। कुन्तल राजा की कन्या कर्पूरमंजरी से जो विवाह करेगा, वही सार्वभौम राजा बनेगा, ऐसी भविष्यवाणी इस सिद्ध-पुरुष ने की थी। इस भविष्यवाणी को सत्य करने के लिए अपने योग-सामर्थ्य से भैरवानन्द कर्पूरमजरी को उस स्थान पर दूर देश से अकस्मात् ले आये। उसका लावण्य देखकर सब चकित हुए। रानी विभ्रमलेखा ने, वह अपनी बहन है, यह पहचान लिया और कर्पूरमंजरी को अन्तःपुर में ले गई। उससे पन्द्रह दिन तक ठहरने का आग्रह किया गया। राजा और कर्पूरमंजरी की भेट न हो, इसके लिए रानी के प्रयत्न चल रहे थे।

---

१ 'प्रकृष्ट प्राकृतमयी सट्टकं नामतो भवेत्' और 'तत्साटकमिति भण्यते दूरं यो नायिका अनुहरति' तथा 'सैव प्रवेशकेनापि विष्कंभके-विनाकृता। अंकस्थानीय-विन्यस्त-चतुर्जवनिकान्तरा।'

विचक्षणा ने कर्पूरमंजरी का केतकीपत्र राजा को जाकर दिया। आगे हिंडोला-चतुर्थी उत्सव शुरू हुआ, तब रानी ने कर्पूरमंजरी को झूले पर बिठा कर महोत्सव मनाया। यह सब राजा ने मरकत-पुञ्ज-सौध पर बैठ कर देखा। रानी को अभी राजा का इरादा मालूम नही था। कर्पूरमंजरी अशोक-वृक्ष का दोहद कर रही थी, तब उसका दर्शन राजा को फिर हुआ और उसकी अधीरता बढती चली। तीसरे अक मे राजा और कपिंजल अपने अद्भुत स्वप्न एक दूसरे को सुनाते हैं और प्रेम-विषय पर बडी चर्चा होती है। मरकत-पुञ्ज-सौध मे एक सुरग बनाकर राजा कर्पूरमंजरी के महल मे जाता है। रानी की दासी ने इसकी सूचना उसे दे दी थी। अतः रानी जब बाहर से ताला लगा रही थी, तभी राजा अचानक पकड मे आया परन्तु चुपके से वह सुरग की राह प्रमदवन मे चला गया। चतुर्थ जवनि-कान्तर मे, रानी ने कर्पूरमजरी को खूब पक्के बन्दोबस्त मे रखा है, ऐसा दिखाई देता है। आगे ज्येष्ठ मास मे वटसावित्री समारम्भ शुरू हुआ। रानी ने पद्मराग-रस की प्रतिमा स्थापित कर भैरवानन्द से देवी के मन्त्र की दीक्षा ग्रहण की। लाटदेश के चंडसेन की कन्या घनसारमजरी यदि चडपाल राजा से ब्याह करेगी तो उसे सार्वभौम प्राप्त होगा। अतः रानी राजा के विवाह मे सहायता दे, ऐसी गुरुदक्षिणा भैरवानन्द ने माँग ली और रानी ने उसे मान्य किया। वह विवाह प्रमदवन मे होने वाला था। उस स्थान पर वटवृक्ष के नीचे चामुण्डा का एक मन्दिर था। चामुण्डा की मूर्ति को ही वहाँ के सुरग का चौर-द्वार बनाया गया। विवाह के समय रानी नवरत्नो का हार लेने गई है, यह देखकर भैरवानन्द चामुण्डा देवी की मूर्ति को बाहर फेक कर कर्पूरमजरी को उस चोर पथ से ले आये। रानी हैरान हुई! उसे सन्देह हुआ कि यह घनसारमंजरी है या कर्पूर-मजरी है। पहरे मे पडी हुई कर्पूरमंजरी को उस स्थान पर देखकर पुनः वह अन्तःपुर मे गई। फिर तत्काल उसी समय कर्पूरमजरी को सुरंग द्वारा वहाँ जल्दी से भेज दिया गया। राजा को जब पूर्ण विश्वास हो गया कि नव-वधू कर्पूरमंजरी नही है, घनसारमजरी ही है, तब राजा का घनसारमजरी के साथ विवाह हुआ। वस्तुतः घनसारमंजरी ही कर्पूरमजरी थी। भैरवानन्द और राजा ने रानी को ठग लिया, इस कारण रानी बहुत क्रुद्ध हुई। अन्त मे भैरवानन्द ने रानी को समझाया बुझाया और राजा को सम्राट्-पद प्राप्त हुआ। यह है 'कर्पूरमंजरी' का कथानक।

उस समय की समाज-स्थिति का चित्र इस सट्टक में प्रतिबिम्बित हुआ है। उस समय इन्द्रजाल, तत्र-चमत्कार का बोलबाला था। धर्म की क्या स्थिति

हो गई थी, यह भैरवानन्द की शक्ति-धर्मस्तुति से स्पष्ट व्यक्त है :

रंडा चंडा दीक्षिता धर्मदारा, मद्यं मांसं पीयते खाद्यते च।
भिक्षा भोज्यं चर्मखंडं च शय्या, कौलाधर्मः कस्य तो भाति रम्यः॥

अर्थात् न मंत्र, न तत्र, न ध्यान, न दान चाहिए। एक गुरु-प्रसाद के अतिरिक्त हमारे धर्म मे कोई भी साधन विहित नही। ध्यान, वेद-पठन, यज्ञ-यागादि कर्मों से हमे कोई काम नही। मद्य-मास और सुरत-केलि से मोक्ष की प्राप्ति होती है, ऐसी भैरवानन्द ने कौलधर्म की प्रतिष्ठा वर्णित की है। शाक्त-धर्म औपनिषदीय दर्शन पर अधिष्ठित है। अतः आदि-शक्ति की उपासना उसमें विहित है। तथापि मूल तत्त्वो का रूढि के कारण कैसा विपर्यास होता है, यह उपर्युक्त उक्ति से स्पष्ट होगा।

इस सट्टक मे जो दूसरे दृश्य उस समय की परिस्थिति का चित्रण करते हैं, वे चैत्र गौरी, हिंडोला-चतुर्थी और वट-सावित्री व्रत के चित्र है। उस काल मे ये उत्सव बहुत धूम-धाम से मनाये जाते थे। नृत्य, गायन, दंडरास-क्रीडा आदि कई बातें उस समय वट-सावित्री समारोह मे हुआ करती थी। समुद्र से प्राप्त मोतियो को भेद कर कुण्डल और हार बनाते थे और हार तैयार करते थे। राज-द्वार पर पहरा, चौरपथ, पालित शुक, दीवारो पर देवादि के चित्र तथा मूल्यवान् आभरण उस समय के समाज मे थे। लंका, अगस्त्याश्रम, पाड्य देश, कर्नाटक, केरल, वैदर्भ, कान्यकुब्ज इत्यादि स्थलो का निर्देश इस नाटक मे मिलता है। तत्कालीन समाज समृद्ध और विलासी था, ऐसा अनुमान किया जा सकता है।

'कर्पूरमजरी' के कथानक की घटनाएं कितने समय मे पूरी हुई होगी, यह प्रश्न भी विचारणीय है। पहले अक मे वसत का वर्णन राजा, रानी, विदूषक और विचक्षणा कर रहे है। द्वितीय जवनिकान्तर में चैत्र-शुद्ध षष्ठी का उल्लेख है और चैत्र गौरी के उत्सव का वर्णन है। उसके पश्चात् हिडोला-चतुर्थी के समारोह का वर्णन है और ज्येष्ठी पूर्णिमा को इसका कथानक समाप्त हुआ है। वसंतारम्भ-वर्णन और ज्येष्ठी पूर्णिमा के वर्णन के आधार पर ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि कथानक समाप्ति मे कुल ढाई महीने लगे है।

देश, काल और कृति मे एक प्रकार से सुसंगति होनी चाहिए, ऐसा यूनानी सधि-त्रय का आशय था। फ्रासीसी नाटककार भी इस नियम को बहुत-कुछ पालते थे। शेक्सपीयर ने इस वस्त्वैक्य की परवाह नही की। कालिदास और भवभूति भी इन बन्धनो को नही मानते। इन श्रेष्ठ नाटककारो की तुलना मे राजशेखर बहुत हल्का उतरता है। 'कर्पूरमजरी' के संविधान-कर्म में कोई

उदात्तता नही है। अलग-अलग पात्रो का स्वभाव-चित्रण स्वाभाविक नही है। चंडपाल राजा को धीरोदात्त नायक नही कहा जा सकता। चांचल्य और दुर्बलता उसमें विशेष हैं, और वह सदा कल्पना-सृष्टि मे रमता रहता है। नायिका कर्पूरमजरी एकदम कृति-शून्य है। भैरवानन्द रानी और विचक्षणा के हाथो की वह एक सुन्दर-सी गुड़ियामात्र है। नायक-नायिका का प्रथम मिलन कुशलता से चित्रित नही है, और परिहास भी प्रायः ग्राम्य ही है। भैरवानन्द की कपट प्रवृत्ति के कारण पाठक अपनी सहानुभूति उसे नही दे पाता। विचक्षणा और रानी की ओर यह सहानुभूति स्वाभाविक रूप से केन्द्रित होती है।

कर्पूरमंजरी सट्टक के प्रधान गुण हैं: प्रसग-विशेष पर सुगठित भाषा और सूक्तियों का प्रयोग। प्रमदोद्यान मे हिंडोले पर जो दृश्य है, वह बहुत हृदय स्पर्शी है। द्वितीय जवनिकान्तर मे ३० से ३२ कविताओ मे, राजशेखर की भाषा, शैली और वृत्त-कौशल प्रकट हुआ है। ३३ से ४० श्लोको तक मधुर सगीत और प्रतिभा चमत्कार की झलक मिलती है। अशोक वृक्ष के पुष्पस्तवकों को देखकर राजा ने जो वर्णन किये हैं, वे अत्यन्त सप्राण और काव्य-पूर्ण हैं। पहले अंक में सायकाल का वर्णन ३५, ३६, द्वितीय अक मे सूर्यास्त का वर्णन ५०, तृतीय अंक में चद्रोदय-वर्णन २५, इत्यादि कविताए राजशेखर के कवित्व का प्रमाण देती हैं।

कर्पूरमजरी का एक और महत्त्व है कि नाटक मे प्रवेशक और विष्कभक के आने से पहले सट्टक नामक एक नाट्य-प्रकार था। प्राकृत के सट्टक, बहु-जन-समाज को बोधगम्य प्राकृत भाषा मे, रगमच पर दिखलाये जाते रहे होंगे। ऐसा मालूम होता है कि तत्कालीन प्राकृत नाट्य-साहित्य ने सस्कृत से एक कदम आगे रखा था, जिसमे प्राकृत जरा भी न हो, ऐसा विशुद्ध सस्कृत नाटक नही मिलता। परन्तु राजशेखर का यह सट्टक विशुद्ध प्राकृत मे है; इसमें एक भी संस्कृत शब्द नही मिलता। प्राकृत भाषाओ के इतिहास की दृष्टि से इस नाटक का बडा महत्त्व है। ईसा की नौवी शताब्दी में प्राकृतो की क्या स्थिति थी, उन पर किन भाषाओ का प्रभाव पड़ा था, इसका इस नाटक के अध्ययन से पता चलता है।

हिन्दी कवि

कबीर
विद्यापति
१८५७ के गीत
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
मैथिलीशरण गुप्त
'एक भारतीय आत्मा'
जयशंकर 'प्रसाद'
बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
'निराला'
सुमित्रानन्दन पंत
महादेवी वर्मा
दिनकर
आधुनिक हिन्दी कविता

: ६ :

कबीर

संतो की बानी युग-युग के लिए होती है, ऐसा माना जाता है। आज के युग मे कबीर के वचन पढ़ने से हमे कौन-सा सदेश मिलता है, यह कबीर के ही शब्दो मे अर्थ सहित नीचे दिया गया है। आज वह युग आ गया है जब राजनीति को धर्म से सर्वथा पृथक् करना और रखना आवश्यक है। अन्यथा लोकराज और प्रजाराज का पुनः सामंती या एकतत्री फाशीवाद की ओर झुक जाना सहज संभव है। हमें धर्म और सस्कृति इन दो शब्दो में आज मुग्धालता नही करना है। नही तो हम सभी प्राचीन संस्था और रूढ़ियों को सनातनियों की भाँति हृदय से चिपटाये रह जायगे। इससे बढ़कर अनर्थ नहीं हो सकता। अतः हम धर्म के असली रूप को पहचाने। धर्म की टट्टी की ओट शिकार करने वाले आज कई अधर्मी पैदा हो गये है।

कबीर कहते है :

> नगन फिरत जौ पाइए जोगु।
> बन का मिरगु मुकति सभु होगु ॥
> किया नागे किया बाधे चाम।
> जब नहिं चीनसि आतमराम ॥
> मुण्ड मुड़ाए जो सिधि पाई।
> मुकती भेड न गईआ काई ॥

नंगे फिरने से जो योग मिलता तो वन के सभी मृग मुक्त हो जाते। नगे रहने या मृगछाला आदि बाँधने से क्या होता है—जब तक आत्माराम नही

चीन्हा, तब तक इससे क्या ? मूँड मुँडाकर ही जो सिद्धि पा जाते तो इतनी भेड़ें क्यों न मुक्ति की ओर चली गई ?'

कबीर ने इस पद में भेडियेधसान की, ढोंग-धतूरे की, धर्म के कर्मकांडित्व की निन्दा की है। 'संधिआ प्रात इस्नानु कराही, जिस भए दादुर पानी माही'—'जो प्रातः संध्या स्नान करने से राम की प्राप्ति सहज समझते हैं, तो वे पानी के मेंढक के समान हो गये है।'

कबीर अछूतों की ओर से सम्पूर्ण आत्मविश्वास और दृढ़ता से पूँछता है :

गरभवास नहिं कुल नहि जाती।
ब्रह्म बिंदु ते सभु उतपाती॥
कहु रे पंडित बामन कब के होए।
बामन कहि कहि जनमु मत खोए॥
तुम कत ब्राह्मण हम कत सूद।
हम कत लोहू तुम कत दूध॥

'गर्भवास मे न तो कुल होता है, न जाति। सभी उत्पत्ति ब्रह्म-बिंदु से है। कह रे पंडित, तू ब्राह्मण कब से हुआ ? ब्राह्मण कह-कहकर अपना जन्म मत खो। तुम कहाँ के ब्राह्मण और हम कहाँ के शूद्र हैं ? हम क्या लोहू से बने और तुम क्या दूध से ?'

नाज़ियों ने जब यहूदी वैज्ञानिकों को अपने झूठे आर्यत्व के अभिमान मे जर्मनी से देश-निकाला दे दिया, तब उन्होंने जर्मन शुद्ध आर्य-रक्त और यहूदी-रक्त की रासायनिक परीक्षा कर यह सिद्ध कर दिया कि यह शुद्ध रक्तवाली बात सबसे बडा झूठ है। मानवजाति का रक्त एक-सा है—हाँ, बीमारों का रक्त खराब हो सकता है, लेकिन बीमार तो सभी जातियो मे होते हैं। यह कहना कि हम शुद्ध सदीपन ऋषि के वंशज है, या हम उच्च भार्गव कुल के हैं; और अमुक व्यक्ति तो कोरी या बलई या अहीर या मेहतर या बसोर है, अतः उसका रक्त नीच कोटि का है—एक घोर अवैज्ञानिक बात है। यह पुरोहित-शाही कायम रखने की सदियो की साज़िश थी, जिसका भंडाफोड़ कबीर और वारकरी संत और गाँधी ने किया।

कबीर जैसा 'रैशनलिस्ट' (विवेकवादी) मिलना मुश्किल है। उसने स्मृतियों पर बहुत अधिक ध्यान देनेवाले हठवादियों से कहा—'भाई, स्मृति तो वेद की पुत्री ही है। लेकिन यही हमें और तुम्हें बाँधने के लिए साँकल और

रस्सी ले आई है। इस तरह अपना नगर तूने खुद बाँध रखा है। यह स्मृति का बन्धन काटे नहीं कटता, टूट तो सकता ही नहीं। उसने सर्पिणी बनकर इस ससार को खा डाला, उसने हमारे देखते सारे जग को लूट लिया।'

जर्मन दार्शनिक काण्ट ने भी हमारी चेतना देश-काल की परिमा (कैटेगरी) से कैसे आबद्ध है, यह सिद्ध किया था। जब तक 'स्मृति' (काशसनेस) है, तब तक यह तन्मात्राएँ—अह, बुद्धि आदि विकारो से छुटकारा कैसा ? इसी से कबीर कहते हैं—'न इस मन का कोई रूप है, न कोई रेखा है। इसी से यह मन बडा है या वह जिसमे मन अनुरक्त है ?'

कबीर को ऐसे ढोगी धर्म से नफरत है, जिसमे 'जीवत पितर न मानै कोऊ मूएं सराध कराही' और 'माटी करि देवी देवा तिसु आगे जीउ देही !' इस प्रकार रूढ धर्म पर सीधी चोट करने से कबीर को निन्दा का भाजन बनना पडा। सभी सतो को, कम-अधिक मात्रा मे, इस प्रकार की टीका-टिप्पणी सहनी पडी है। 'निदंक बाबा बीर हमारा'—नामदेव ने कहा, तुकाराम ने—'निंदकाचे घर असाये शेजारी', और मीरा ने—'बदनामी लागै म्हने घणी मीठी री !' इमर्सन ने इसीलिए कहा था कि 'टु बी ग्रेट इज टु बी मिसअडरस्टुड'—महत्ता के साथ-साथ गलत समझे जाना भी स्वाभाविक है। 'महात्मा' के प्रति आज कितनी गलतफहमियाँ अपने ही लोगो मे फैली हुई है, विदेशियो की कौन कहे ? सो कबीर कहते हैं—'निन्दा करै सु हमरा मीतु।'

बनारस के बारे में कबीर के पद बहुत व्यंग्यात्मक हैं। कही-कही काशी की स्तुति भी है। कहते हैं—'अब कहु राम कौन गति मोरी, तजि लै बनारस मति भई थोरी।' और 'आस-पास घन तुरसी का बिरुआ माझि बनारस गाऊँ रे। उहा का सरूपु देखि मोहि गुवारनि,' परन्तु काशी के ढोगियो का भंडाफोड भी देखिये, और एल्डूस हक्स्ले की भारत-यात्रा मे कही हुई बात फिर मन मे दुहरा लीजिये कि 'दि होलियर दि प्लेस, दि डर्टियर इट इज' (जितना ही अधिक पवित्र स्थान, उतनी ही अधिक गन्दगी!)

कबीर कहते है :

गज साडे तै तै धोतिआ तिहरे पाइनि तग।
गली जिन्हा जप मालिआ लोटे हाथ निबग।
ओइ हरी के सन्त न आखि अहि बनारसि के ठग।
ऐसे सन्तन मो कउ भावहि।
डाला सिव पेडा गटकावहि॥

'साढ़े तीन-तीन गज की धोतियाँ और तिहरे तागे पैरो तक पहने हुए, गले

में जयमाला, हाथ में लोटा—इन्हे सन्तान कह कर बनारस के ठग कहना चाहिए।" मुझे ऐसे सन्त अच्छे नहीं लगते जो टोकनी भर-भर कर पेड़े गटक जाते हैं। ये सन्त बरतन मॉज कर खाना खाते है, लकड़ी धोकर जलाते है। पाप करते समय यहाँ से वहाँ घूमते रहते है, ताक-झाँक करते है और वैसे पवित्र इतने बनते हैं कि मुख देखते ही वे छूत मान लेते हैं।"

कबीर का सबसे बड़ा सन्देशा था हिन्दू-मुस्लिम एके का। वे पूछते हैं कि

हिन्दू तुरक कहा के आये, किनि एह राह चलाई ?
दिल माहि सोच-बिचारि कवादे भिस्त दोजक किनि पाई ?
काजी ते कवन कतेब बखानी।
पढ़त गुनत ऐसे सभ मारे किनहूँ खबरि न जानी।

'हिन्दू-मुसलमान अलग-अलग कहाँ से आये ? और किसने यह पथ चलाया ? ऐ मूर्ख, अपने हृदय मे विचार कर कि बहिश्त और दोजख किसने पाया ? ऐ काजी, तूने किस कुरआन का उपदेश दिया है ? तूने पढते-गुनते हुए लोगों को ऐसा भरमा दिया कि उन्हें अपने विनाश का पता ही न चल पाया।'

'और वह बिल्कुल 'कामनसेन्स'—सर्वसामान्य बुद्धि से पूछ बैठता है—'सुन्नत किये तुर्क जे होइगा औरत का क्या करिये ?'

लखनऊ निवासियों को कबीर का यह पद ऐसे जान पड़ेगा जैसे कोई शान्ति-सभा में व्याख्यान दे रहा हो—हज्ज हमारी गोमती तीर—'हमारी हज तो गोमती के किनारे है, फिर हिजरत करने से क्या फायदा ?'

जो हिन्दुत्वाभिमानी बिहार की टैक्स्ट बुकों में बेगम सीता और पीर वसिष्ठ पर सख्त नाराज थे, वे ज़रा कबीर की इस बानी को गौर से पढ़ें और स्व० अब्दुलबारी के शिक्षा-क्रम को कोसनेवाले हिन्दी भाषा के गौरव कबीर के अमर आसन को डिगाने की कोशिश कर देखें ! कबीर कहते है—'जहाँ बसहि पीतंबर पीर....नारद सारद करहि खवासी, पास बैठि बीबी कवलादासी...हिंदू तुरक दोऊ समझावऊ कहत कबीर रामगुन गावहु !'

ऐसा जान पड़ता है कि कबीरचौरे के अपने मठ में बैठा हुआ यह महात्मा कोई प्रार्थना-सभावाला भाषण दे रहा हो। फर्क इतना ही है कि कबीर जब बोलता था, तब देश मे मुस्लिम राज था, आज वह कट कर अलग राष्ट्र बन चुका है। फिर भी कबीर ने काजी को मुखातिब कर ऐसी खरी-खरी सुनायी हैं, जैसे कोई उस समय का बुद्धिवादी धर्म-सुधारक कह रहा हो—

'ऐ काजी, तुमसे ठीक तरह बोलते नहीं बनता। हम तो ईश्वर के सेवक हैं (ईश्वर से तात्पर्य जनता) और तुम्हारे मन को राजसी बातें भाती है। धर्म के स्वामी ने कभी अत्याचार करने की आज्ञा नहीं दी। तू रोजा रखता है, नमाज पढता है, मगर सिर्फ कलमा पढने से स्वर्ग (जन-जन की मुक्ति) की प्राप्ति नहीं होती ? नमाज का अर्थ है न्याय-विचार और कलमा का अर्थ है अवल को जानना...मारने का अहंकार जरा कम कर। मिट्टी एक ही है, उसी ने अलग-अलग रूप ले रखे है। तूने स्वर्ग छोड़ कर नरक (फाशीवाद) से अपने मन को सन्तोष दिया है।'

और एक पद में—'तू रोजा रखता है, अल्लाह को मानता है, फिर भी अपने मतलब के लिए जीवो का नाश करता है। तू केवल अपना स्वार्थ देखता है, किसी दूसरे के हित को नहीं। इस तरह फिजूल तू क्यो झख मारता है ? ऐ काजी, 'साहब' तो एक है, वह तेरा है और तुझी में है।'

कबीर पुकार कर कहता है—'हिन्दू और मुसलमान दोनो मे वह एक ही है।' उसने एक पद मे यहाँ तक कहा है—'हे भाई, वेद और कुरान सब झूठे है। इनसे हृदय की चिन्ता नहीं जाती।' और एक भजन मे 'मन को मक्का कर और शरीर को किबला ; हिन्दू और मुसलमान का स्वामी एक ही है, उसके लिए मुल्ला क्या करे और शेख क्या करे ?' 'जिसके दिल मे खलल हो जाता है, वह कुरान छोड़कर शैतान के वश मे होकर कार्य करने लगता है।' 'यदि अल्लाह एक मसजिद मे ही निवास करता है तो शेष मुल्क पर किसका राज है ?'... कहा जाता है, दक्षिण मे (हिन्द यूनियन मे) हरि का निवास है, और पश्चिम में (सिन्ध सरहद आदि मे) अल्लाह का स्थान है; किंतु अपने हृदय मे खोज, प्रत्येक हृदय मे खोज, तुझे हर स्थान पर उसका निवास मिलेगा।'

'उसका' से हम तात्पर्य 'शोषित जनता' से लें, क्यो कि परमात्मा भी वही बसता है, जहाँ सर्वाधिक दुख हो। इन नारकीय अत्याचार करनेवाले झूठे मुसलमानो से कबीर कहता है—'वजू करके तुमने क्या निज को पवित्र किया ? और क्या मुँह धोया और क्या मसजिद मे सिर नवाया है ? जब तुम्हारे हृदय मे कपट है तो तुमने क्या नमाज पढी और क्या तुम हज के लिए काबा गये ? तू बिल्कुल अपवित्र है, क्योकि तुझे परम-पवित्र (मानव-मानव मे परिव्याप्त तत्त्व) नहीं दिखाई दे रहा है।' अतः

बुत पूजि-पूजि हिन्दू मुए, तुरक मुए सिरु नाई।
ओई ले जारे, ओई ले गाडे, तेरी गति दुहू ने पाइ॥

झूठे नेताओं पर और सुधारकों पर कबीर ने जो मुण्डियो के प्रति वचन कहे हैं, वे कैसे चस्पा होते है, देखिए—'लड़की और लड़को के खाने के लिए कुछ भी नहीं है। हाँ, ये मुण्डिया जरूर प्रतिदिन सन्तुष्ट किये जाते हैं। हम लोग तो जमीन पर बिस्तर डालकर सोते है और इन लोगो के लिए खाट का प्रबन्ध हो जाता है। ये लोग सिर धोकर कमर मे पोथी बाँध लेते है, बस, इसी बात पर तो ये लोग मेरे घर मे रोटी खाते है और हमे चबेना ही मिलता है। इन मुण्डियो ने हमे डुबोने की ठानी है।'

आज के दुखो का निदान भी कबीर के शब्दो मे हम पा सकते है—'ऐ पागल, तूने दीन-दुखियो को भुला दिया, तू अपना पेट भरता रहा और पशु की भाति सोया।' 'निर्धन को कोई आदर नही देता। वह लाख यत्न करे, उसकी ओर कोई ध्यान नहीं देता। यदि निर्धन धनवान के पास जाता है तो निर्धन को आगे बैठा देख कर धनवान पीठ फेर कर बैठ जाता है।' 'इस शरीर-रूपी गाँव मे आत्मा महतो है। इस गाँव मे पाँच किसान हैं। यह सब महतो को नहीं मानते। चेतू नाम का कायस्थ (पटवारी) मुझसे क्षण-क्षण का लेखा माँगता है। जब धर्मराज मेरा हिसाब माँगता है, तो काफी बकाया निकालता ही रहता है। पाँच किसान तो भाग गये। यह बेचारा बाँध कर दरबार मे ले जाया जाता है। दरबार भी उसी धर्मराज साहूकार का है। ऐसे तो खेत ही से मुझे अलग कर दो।'

और यह उक्ति किसी देशी राजा पर लगाकर देखिए—'तुम टेढ़ी पाग बाँध कर टेढ़े चले और पान के बीड़े खाने लगे! भक्ति-भाव (जन सेवा) से (पीछे होके) कुछ भी सरोकार न रख कर कहने लगे कि काम ही मेरा दीवान है। स्वर्ण और महासुन्दरी स्त्री को देख-देखकर तुम सुख मानने लगे? लालच, झूठ और विकारो के महामद मे तुम्हारी पूरी जिन्दगी ही व्यतीत हो गई!'

इसके बाद कबीर कहता है, 'अब तुम्हारे मनमानेपन का अन्त आ गया!'

इस प्रकार कबीर का नये सिरे से, प्रगतिशील दृष्टिकोण से, अध्ययन और अर्थ जानना आवश्यक है।

: ७ :

विद्यापति

विद्यापति हिन्दी के प्रसिद्ध शृङ्गारी भक्त-कवि हो गये है। उनकी कोमल-कात पदावली के कारण उन्हे मैथिल-कोकिल भी कहा जाता है। उनकी पदावली मे सखी, दूती, माधव और राधा शीर्षक से पद बटे है। करीब ६०० पूरे पद उनके मिलते हैं। इस लेख में उनके 'सखी से सखी' नामक पदो की ही विशेषताओं की चर्चा करना चाहता हूँ। यह सखी राधा की सखी जान पड़ती है, कही वह बडी चतुर है और कही बहुत भोली। बहुतेरी बातें राधा या माधव के मुख से विद्यापति नहीं कहलाना चाहते थे, उन्होने सखी के मुँह से कहलाई है।

२४वाँ और २५वाँ पद सखी से सखी का है, उसमे केवल सौदर्य वर्णन है, यथा :

धनि मुखमण्डल चाँद विराजित, लोचन खंजन भाँति।
मदन चाप जिनि भौह लग, युग दोखहि मोतिम पाँति॥

या

हस्ती गमन जकाँ चलइति सजनि गे देखइत राजकुमारी।
जनिकर एहनि सोहागिनि सजनि गे पाओल पदारथ चारि॥

४०वे पद मे राधा नहाकर लौट रही थी और राह मे 'वी कान्ह' मिल गये। अब गुरुजन साथ थे और वह देखे कैसे? परन्तु गोरी भी अपूर्व चातुरी थी, अपना हार वही तोड कर फेंक दिया और मणि चुनने के मिस से कान्ह के मुख-चन्द्र के नयन-चकोरो के भी पूरे दर्शन कर लिए। ५८वे गीत मे सखी सखी से कहती है—'आज कन्हाई इस बाट से आ गया। बेला बूझ न पडी—अचानक सोचते-सोचते नव कलेवर अपनी पराजय से स्तम्भित हो

गया। दर्शन और आनन्द-लीला के लोभी को लज्जा ने ग्रस लिया। जिस तरह बिजली की रेखा जलधर मे गड जाती है, वैसे मन्दिर के बाहर सुन्दरी की स्थिति हुई।'

७५वे गीत 'चेतन चेतनगुपुति पिरीति पर कहहु न जाई' का वर्णन है तो अगले गीत मे 'वह हीके पास आते ही मदन उसे छू गया, वह कैसे बाधने के मिस रुक गई। रमण भवन के पास फिर लौटकर देखने लगी, दृष्टि आई और सन्देश दे गई।' ७७वे गीत मे फिर युवती के चरित्र की बडी विपरीतता है, 'उसका पार कहाँ तक पाया जाय? जो गुण निकेतन चेतन हो गया वह तो समझ जायगा, गंवार झूठ मे ही पडा रहेगा। मुख पलटकर बाँकी चितवन से देखती है, कपट से मन्द चलती है।' 'दुइ मन मिलल ठाम अकुला प्रेम तरुआ कान्ह।' (जहाँ दो मन मिल गये वहाँ निश्चित प्रेम अकुरित हो जाता है) आगे तो ७६वे गीत मे यह शिकायत सखी सखी से करती है कि 'सपनेहु न पुरुस मनक साधे!' (सपने मे भी सत की साध पूरी न हुई।)

११४वाँ गीत पुन' नाट्य गीतात्मक सम्वादात्मक है। ऐसे कुञ्ज मे सब नगर मिले कि जहाँ सखिगण पहले से ही छिपी थी, अतः 'दुहु दुहु बदन हेरि दुहु आकुल विद्यापति कवि गाई'—(दोनो के मुँह देखकर दोनो आकुल होते रहे, विद्यापति गाते है।)

१५०वे गीत मे राय सिवसिंह (विद्यापति के आश्रयदाता) और लखिमादेवी के रमण का स्पष्ट उल्लेख है, अतः उसे चाहे तो छोड दे। १५१ मे प्रश्न मिलन के सकोच का वर्णन है--'सूति रहिलि धनि सेजक ओर' (सखी जो कि एक ओर सोती रही!) वही प्रश्न 'मिलन' अगले पद मे और स्पष्ट कर दिया है। उन्ही के शब्दो मे—

छूइते बासि मलिन भइ गेलि। बिधु कोरे कुमुदिनि मलिन भेलि॥
नहि नहि: करु नयन झर नोर। शुति रहल राइ शयनक ओर॥
आचर लइ बदन पर झाँपे। थिर नहिं होयत थर-थर काँपे॥

विद्यापति में बॉयरन की भाँति कविता में सजीवता रक्त-तत्व (ब्लड एलिमेंट) बहुत थोडे शब्दों मे चित्र खड़ा कर देने की क्षमता है। आज जीवन इतना कृत्रिम हो गया है, कि कविता भी रक्त-हीन (ऐनिमिक) होती जा रही है। परन्तु वैष्णव कवियों की धार्मिकता से चाहे हमारा मतभेद हो, उनकी काव्यकला के गुणों का हमें उचित आदर और प्रशंसा करनी ही चाहिए।

[illegible] ४७५ पृष्ठों की बड़े आकार की नगेन्द्रनाथ गुप्त द्वारा संकलित एवं संपादित १६१० में इंडियन प्रेस प्रयाग से प्रकाशित विद्यापति ठाकुर की पदावली मे

'सखी से सखी के' यह दस-बारह गीत हैं। परन्तु इन गीतो मे एक ओर जहाँ रूढ सखी कार्य का वर्णन है, वहाँ विद्यापति के पास की सामन्ती समाज व्यवस्था मे इन बादियो या सखियो का अपने स्वामी या स्वामिनियो के प्रेम रस वर्णन के अतिरिक्त और कोई विषय या सुखदायक सलाप न था, यह भी व्यक्त होता है। नारी सुलभ सकोच भी वे अपनी चर्चाओ मे नही रखती। जान पडता है कि विद्यापति इस प्रकार के सवाद गीतो द्वारा राधा और माधव की शृगार-चेष्टाओ को, जो अवशिष्ट और अवर्णित वाह्य अंग थे, उन्हे आधुनिक बरतावबादी लेखको की भाँति वर्णित करना चाहते है। इसीसे मूर्च्छादि गाम्भीर्य, मादकता आदि बातो का, सचारी भावो का विशद वर्णन उन्होने किया है।

विद्यापति का अध्ययन केवल कोमल कान्त पदावली या शृङ्गारी कवि की ही दृष्टि से नही परन्तु एक मनोवैज्ञानिक के नाते आवश्यक है। माना कि उनमे पुनरुक्तियाँ बहुत अधिक है, फिर भी उनकी मधुरता 'क्षणे क्षणे' बढ़ते जाने वाली है। या उन्ही के शब्दो में :

सखी की पूछिसी अनुभव मोय।
से हो पिरिती अनुराग बखानइत, निते निते नूतन होय।
जनम अवधि हम रूप निहारिल, नयन न तिरिपित भेल।
सेहो मधुर बोल श्रवण ही सुनल, श्रुतिपथ परश न गेल।

विद्यापति की कविता का एक और मौलिक अश है विरह-वर्णन। विद्यापति की नायिकाओ का विरह कृष्ण उनको सोती छोड जाने से आरम्भ होता है। विद्यापति ने कृष्ण का मथुरा जाना तो स्वीकार किया है, और कुब्जा के प्रणय का भी सकेत किया है—किन्तु परम्परागत कथा की तरह उनका विरह आरम्भ नही होता। कृष्ण और राधा अथवा कृष्ण और गोपिकाओ का स्वरूप उनके सम्मुख बहुत स्थल है। सम्भवत. 'राजा शिवसिंह रूपनारायन और लखिमादेवी' अथवा शिवसिंह और अन्य रानियो के व्यक्तित्व से अधिक विकसित व्यक्तित्व उनके कृष्ण और राधा का नही है। विरह के अतिरिक्त अन्य प्रकरणो मे वर्णित उनकी राधा अथवा गोपिकाएँ सस्कृत कवियो की परम्परागत नायिकाओ के रूप मे व्यक्त हुई है। कोई विप्रलब्धा है, कोई विरहोत्कण्ठिता, कोई कलहान्तरिता है और कोई खडिता। दूतियाँ भी अनेको है—और सखियाँ भी। विद्यापति ने सर्वत्र प्रेम को लौकिक आचरण और मानवी आवरण प्रदान किया है—उनका प्रेम शरीर की स्वस्थ मांसल आवश्यकता मात्र है।

कृष्ण नायिका को सोती छोड़ गये हैं—उसका नायिका को परिताप है। वह अपनी सखी से इसी दुख की बात कहती है :

एक सयन सखि सूतल रे,
आछल बालम निसि भोर।
न जानल कति खन तेजि गेल रे,
बिछुरल चकेवा जोर ॥

या

सूतल छलहुँ अपन गृह रे
निन्दइ गेलउँ सपनाइ।
करसों छुटल परसमनि रे
कोन गेल अपनाइ ॥

तथा

सपनहु संगम पाओल,
रंग बढाओल रे।
मीरा बिहि बिछुटाओल,
निन्दओ हेराएल रे ॥

विरह मे शरीर और प्राण दोनो अवसन्न हो जाते हैं। भूमि के समस्त उपकरण अपने साधारण धर्मो का कोई अर्थ-प्रभाव नही रखते, प्रतीत नही होते। प्राणो में केवल एक पीडा का सचार रहता है और उस पीडा का कारण होता है एक निश्चित अभाव। प्रिय एक मात्र लक्ष्य होता है। उसकी प्राप्ति के उपरान्त ही समस्त सुखो या सुख के उपकरणो का मूल्य है और मान है। अन्यथा, चन्द्रमा की शीतलता, चन्दन का अगलेप, मृगमद का सौरभ, सब व्यर्थ है। उनसे कष्ट की वृद्धि ही होती है। विद्यापति की नायिका को भी वे कितना संताप दे रहे है :

मृगमद चानन परिमल कुंकुम
के बोल सीतल चन्दा।
पिया बिसलेख अनल जों बसिये,
विपति चिन्हिए भल मन्दा ॥

प्रिय को पाने अथवा उसके दर्शन की उत्कट आकाक्षा रहती है। काग को भी निमन्त्रण और प्रलोभन दिये जाते है। साधारण विवेक बुद्धि भी उस काक-वार्त्ता का उपहास करेगी, किन्तु दग्ध नायिका कितने प्रेमाकुल और आश्वासन के स्वर से काग से कह रही है :

काक भाख निज भाखह रे
पंहु आओत मोरा।
खीर खाँड भोजन देब रे
भरि कनक कटोरा॥

विद्यापति का विरह दो प्रकार से निरूपित हुआ है। या तो उनकी नायिकाएँ अपनी वेदना स्वयं व्यक्त करती है, अथवा उनकी सखी या कवि उनकी वेदना का वर्णन करता है। उनसे जहाँ नायिकाओ ने अपनी वेदना को स्वय व्यक्त किया है, वहाँ उनकी प्रेम विकलता, प्रेम विह्वलता, हृदय का घना हाहाकार, प्राणो की उलझन, प्रण-तत्परता और अश्रुओं की लाचारी सर्वथा तीक्ष्ण आवेग मे मिलते है। लक्षणा और व्यजना से वे अपने दुख के कारण को प्रकट करती है—किंचित रोष कुब्जा के प्रति भी उनका होता है, और नायक कृष्ण को उपालम्भ भी मिलते है—कृष्ण की कठोरता पर नायिका क्षुब्ध भी होती है और जब यह यो कह कर अपनी प्रेम की दृढ़ता का परिचय देती है :

नखर खोआओलँ, दिवस लिखि लिखि
नयन अँधाओलु पिया पथ देखि।

अथवा

केतक जतन सौं मेटिए सजनी
मेटए न रेख पखान।
जे दुरजन कटु भाखए सजनी
मोर मन न होय विराम।

उनकी प्रेम-पूर्णता पर सहज आस्था हो जाती है—श्रद्धा से हृदय आप्लावित हो जाता है।

प्रेम के साथ यौवन का मूल्य भी वे जानती है। यौवन के उपकरण आत्म-भोग के लिए नही, किन्तु प्रिय के उपभोग के लिए उन्हे प्रिय है—उन्हे वे सहेज कर रखना चाहती हैं। प्रिय का सत्कार उन्हे उन्ही से करना है और यौवन तो अस्थिर है, सौन्दर्य प्रतिक्षण निस्तेज होता जाता है। कृष्ण की प्रेयसी को उसकी चिन्ता है। वह बार-बार इसी व्यग्रता मे कहती है :

अंकुर तपन ताप जदि जारब,
कि करब वारिद मेहे।
इव नव जौवन विरह गमाओब
कि करब से पिया गेहे॥

वह प्रिय के लौटने की आशा मे है, अन्यथा प्रिय के बिना उन्हे यौवन सर्वथा कष्टदायी है। अपने यौवन की असार्थकता का कितना सुन्दर कथन उन्होने दिया है :

सरसिज बिनु सर, सर बिनु सरसिज
की सरसिज बिनु सूरे।
जौवन बिनु तन, तन बिनु जौवन
की जौवन प्रिय दूरे॥

शृङ्गारिक उद्दीपन विरह मे प्राणद्रोही हो जाते है। पावस ऋतु मे दूसरो के पति और प्रेमी अपने-अपने घर आ गये हैं—और नायिका का प्रेमी अभी नही लौटा, इस पर उसे कितना क्षोभ है—'सखि मोर पिया, अबहुँ न आओल कुलिस हिया।'—उस पर भी सूने मन्दिर पर अनग और इन्द्र के तीक्ष्ण शर। नायिका कितनी विह्वल होकर कह रही है :

सखि हे हमर दुखक नहि ओर।
ईभर बादर माह भादर,
सून मन्दिर मोर॥
झंपि घन गरजंति सतत
भुवन भरि बरसंतिया।
कन्त पाहुन काम दारुन,
सघन खर सर हंतिया॥

दूसरे प्रकार के विरह-वर्णन मे, जिसमे कवि ने स्वयं अथवा सखियो के द्वारा नायिकाओ और राधा की विरह-दशा का वर्णन किया है। कवि की व्यंजना अधिक क्रमबद्ध और वेदना का सभार अधिक ऊर्जस्वित प्रतीत होते है। इस अवस्था मे वियोगिनी ससार से उदासीन केवल कृष्ण को—अपने प्रिय का नाम स्मरण ही करती रहती है। वह उनका गुण स्मरण नही करती। क्योकि विद्यापति कथा-गायक नही हैं :

अधर न हास विलास सखी संग,
अहो नित जप तुम नामें।
जनि जलि-हीन मीन जक फिर इह.
अहो निति रहइह जागी॥

और

लोचन नीर तटनि निरमाने।
करए कलामुखि तहिहि सनाने।

सरस मृनाल करइ जप माली,
अहोनिसि जप हरिनाम तोहारी ॥
जिब कर समिध समर कर आगी ।
करति होम बध होए बइ भागी ॥
चिकुर बरहि रे समरि करि लेअई ।
फल उपहार पयोधर दे अई ॥

और प्रो० रामरघुवीरप्रसाद सिंह के शब्दो मे : 'विद्यापति के गीत लोक-गीतो के रंग लिये हुए है । यद्यपि उनमे पूरी साहित्यिक साज-बाज और सुरुचि वर्तमान हैं, लेकिन चित्र जो अंकित किये गए हैं, उनमे अधिकॉश मे लोक-जीवन के चित्र ही है । दरबार की सजी-धजी नायिका या रंगमहल मे क्रीडा करती हुई काम की पुतली कही भी देखने को नही मिलेगी । बिहारी की कला मे संयम तो है, लेकिन काम जरी का है; दरबार का ऐश्वर्य जगह-जगह रग पकडने लगता है ।'

जरी कोर गोरैं बदन बढी खरी छबि, देखु ।
लसति मनौ बिजुरी किए सारद-ससि-परिवेषु ॥

विद्यापति की नायिका ग्रामीणा है, सरला है, मगर सुरुचि से सॅवरी हुई है । भारतीय कुल बधू का सरस सुहावना रूप विद्यापति की नायिकाओं में ही विशेष-कर देखने को मिलता है । नायक के रूप मे प्रतिष्ठित कृष्ण तो भक्तो के काव्य मे भी छैला बने हुए है, तो बेचारे विद्यापति को ही इसके लिये क्यो दोष दिया जाय । तभी तो कृष्ण के 'छ्यलपन' पर विद्यापति के नायिका की प्रेम भरी खीझ इस प्रकार व्यक्त हो उठी है :

एक दिन हेरि हेरि हँसि हँसि जाय ।
अरु दिन नाम धए मुरलि बजाय ॥
आजु अति नियरे करल परिहास ।
न जानिए गोकुल ककर बिलास ॥
साजनि ओ नागर सामराज ।
मूल बिनु पर धन माँग बेआज ॥
परिचय नहि देखि आनक काज ।
न करए संभ्रम न करए लाज ॥
अपन निहारि निहारि तनु मोर ।
देइ अलिगन भए विभोर ॥

खन खन वेदगधि कला अनुपाम।
अधिक उदार देखिअ परिनाम॥
विद्यापति कह आरति ओर।
बूझिओ न बूझए इह रस भोर॥

वयःसन्धि मे प्रसंग से 'खने खने बसन धूलि तनु भरई' लिखकर विद्यापति ने स्पष्ट बता दिया है कि उनकी नायिका कहाँ की है। उन्होने फूलो से मिट्टी को सजाया है, धरती का शृङ्गार किया है। इसी से विद्यापति के गीत लोक-कंठो मे गूँजते है, मिथिला की सस्कृति उनकी रचनाओं मे बोलती है। उनकी रचनाओ मे स्थानीय रग प्रचुर मात्रा मे है। साहित्य की कला-कुशलता और भावभगिमाओ मे रचा हुआ कवि यदि लोक-जीवन से भी अपना सम्बन्ध बनाये रहता है, तो यह उसकी बहुत बडी सफलता है :

सामर सुन्दर ए बाट आएत
तें मोरि लागलि आंखि।
आतरि आँचर साजि न भेले
सब सखीजन साखि॥

लेकिन विद्यापति दाम्पत्य जीवन के प्रेमी है और दम्पतिरस के अभिलाषी। उस रूप और गुण के उचित साम्य से ही दाम्पत्य-जीवन मे सच्चा रस आता है। इसीलिए विद्यापति बार-बार कहते है :

पयसि पयाग जाग सत जागइ
सोइ पावै बहुभागी।
विद्यापति कह गोकुल नायक
गोपी जन अनुरागी॥
जिनकर एहनि सोहा गनि सजनी गे
पाओल पदारथ चारि।
भनइ विद्यापति गावे।
बड पुन गुनमति पुनमत पावे॥

भारतीय नारी के शील सौजन्य का निर्वाह करते हुए विद्यापति दाम्पत्य-रस का वर्णन करते हैं। एक उदाहरण लीजिए, जिसमे यहाँ के घरेलू दाम्पत्य-जीवन का एक रस-सिक्त प्रसंग आया है :

नील बसन तन घेरलू सजनी गे
सिर लेल घोंघट सारि।

लग लग पहु के चलइत सजनी गे
सकुचल अंकम नारि ॥
सखि जब देल भवन कए सजनि गे
घुरि आएलि सभ नारि ।
कर धए लेल पहु लग कए सजनि गे
हेरए बसन उघारि ॥
भए बर सनमुख बोलइ सजनि गे
करे लागल सबिलास ।
नव रस रीति पिरीति भेल सजनि गे
दुहु मन परम हुलास ॥
विद्यापति कवि गाओल सजनि गे
ई थिक नवरस रीति ।
बयस जुगल समुचित थिक सजनी गे
दुहु मन परम पिरीति ॥

वस्तुतः दम्पति के समुचित वयस में ही प्रेम और रस की सच्ची प्रतीति होती है। इसलिए अन्यत्र विद्यापति ने प्रकारांतर से बाल-विवाह का विरोध भी किया है। लेकिन प्रीति की रीति मे केवल वयस का ही आग्रह नहीं है, गुण का भी है :

ए धनि कमलिनि सुन हित बानि ।
प्रेम करबि जब सुपरुष जानि ॥
सुजन क प्रेम हेम समतूल ।
दहइत कनक दुगुन होय मूल ॥
टुटइत नाहि टुट प्रेम अद्भूत ।
जइसन बढ़इ मृनाल क सूत ॥
सबहु मतंगज मोति नहि मानि ।
सकल कंठ नहिं कोइल बानि ॥
सकल समय नहि रीतु बसंत ।
सकल पुरुष नारि नहि गुनवंत ॥
भनइ विद्यापति सुन बर नारि ।
प्रेम क रीत अब बुझह विचारि ॥

विद्यापति की रचनाओं मे प्रेम की रीति और रस की प्रतीति तो है ही, एक

समर्थ कवि की कला-कुशलता भी है। अभिव्यजना कौशल और अलंकारो पर कवि का पूर्ण अधिकार प्रतीत होता है। यद्यपि अलकारो मे उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपकातिशयोक्ति का ही अधिकतर प्रयोग किया गया है, लेकिन उनकी योजना विषयवस्तु का स्पष्ट बोध कराने के निमित्त ही हुई है। उदाहरण के लिए आँख से सम्बन्धित उत्प्रेक्षाओ को लीजिए और देखिए कि आँखो के भिन्न-भिन्न प्रकार के सौन्दर्य को किस तरह से उभार कर रख दिया गया है.

नयन नलिनि दओ अंजन रंजइ
भौंह विभंग बिलासा।
चकित चकोर जोर विधि बाँधल
केवल काजर पासा॥
चंचल लोचन बाँक निहारल
अंजन शोभा पाय।
ज न इंदीवर पवन पेलल
अलि भरे उलटाय॥
नीर निरंजन लोचन राता
सिंदुर मंडित जनु पंकजपाता
सहजहि सुन्दर आनन रे
भौंह सुरेखलि आंखि।

विद्यापति ने केवल मैथिली मे ही रचना नही की। उनकी अन्य भाषाओ की रचना पर शशिनाथ झा ने लिखा है:

संस्कृत-रचनाएं

विद्यापति सस्कृत के विद्वान थे तथा उनके बनाये नाना-विषयक ग्रन्थ सस्कृत-साहित्य मे सौभाग्यवश आज भी समुपलब्ध है। दिग्दर्शनमात्र के लिए एक गङ्गास्तव यहाँ उद्धत करते है:

जय गङ्गे जय गङ्गे, शरणागत भुज भङ्गे॥
ब्रह्म-कमण्डलु-वाससुवासिनि सागर-नागर-गृह-बाले।
पातक-महिष-विदारणकारण-धृतकरवाल - वीचि-माले॥
सुर-मुनि-मनुज-रचित-पूजोचित-कुसुम-विचित्रित-तीरे।
त्रिनयन-मौलि जटाचय-चुम्बन-भूति-विभूषित-सितनीरे॥
हरि-पद - कमलगलित-मधुसोदर - पुण्यपूत - सुरलोके।
प्रविलसदमरपुरीपद - दान-विधान - विनाशित-शोके॥

सहजदयालुतया पातकि-जन-नरक-विनाशिनि पुण्ये ।
रुद्रसिंह-नरपति-वरदायिनि विद्यापति-कविभणित-गुण ।।

भावार्थ—ब्रह्मा के कमण्डलु मे बधू के समान (छिप कर) रहने वाली; सुचतुर समुद्र के घर वालिका के समान (चचला); पाप-रूपी महिषासुर के विनाशार्थ वीचि (लहर) की तलवार धारण करने वाली, देवता, मुनि तथा मनुष्य के द्वारा अर्पित किये हुए पूजा के योग्य फूलो से चित्रित तीरोवाली; शिवजी के जटाजाल मे रहने के कारण शुभ्र भस्म से धवल जलवाली; विष्णु के चरणकमल के मकरन्द की सहोदरा तथा अपने पुण्य से स्वर्ग-लोक को पवित्र करने वाली, (स्नान-पानावगाहनादि द्वारा) विलास करने वालो को स्वर्ग भेज कर उनके शोक का नाश करने वाली, स्वाभाविक दयालुता से पापियो के नरक का नाश करने वाली, पुण्यरूपिणी, राजा रुद्रसिंह को बरदान देनेवाली; कवि विद्यापति द्वारा वर्णित गुणोवाली, शरणागत के भय को नष्ट करने वाली गंगा की जय हो ! जय हो !!

उर्दू-भाषा की रचना

उर्दू-साहित्य मे उनकी कोई सर्वांगीण कृति तो मिलती नहीं; पर दो-चार उत्कृष्ट कविताएँ अवश्य मिलती हैं। जान पडता है, प्रायः समय-समय पर आवश्यकतावश उन्होने उनका निर्माण किया था। जो हो, इससे उनकी बहु-भाषाभिज्ञता अवश्य प्रकट होती है। जब महाराज शिवसिंह दिल्ली के कारागार में कैद थे और उन्हे छुडाने के लिए शाही दरबार में विद्यापति उपस्थित हुए, तब वहाँ जोबराज (युवराज, यवनराज अथवा तन्नामक कविविशेष) ने उनसे कवित सुनाने का आग्रह किया।

कहे जोबराज बानी सुघर बहुत नगर कवि दलमल्यो।
गप्प-सप्प तुम छोडि देह बदन निहारो आपनो ।।

इसके उत्तर मे विद्यापति ने तुरन्त एक कविता सुनाई, जो उर्दू-फारसी-मिश्रित भाषा मे थी, पर अब वह शुद्ध रूप मे नही मिलती, अज्ञजनो के हाथ में पडकर बहुत विकृत हो गई है, जिसके कारण उसका अर्थ ठीक नही लगता।

शेर फरक शमशीर फरक हौजे दरियाओ अस्त
ऐन फरक आफताब फरक आसमान जा अस्त
हीग फरक काफूर फरक बिसियार बिसी अस्त
फरख्ता जरे तावताजी उमे खर अस्त

बदकस जादा दे सिल्लाव दफ्तर चूमी सिवाय
जोबराज सोभे दिगर मुलुक पयामे ते कुली

उसे सुन कर सब-के-सब दग रह गये। बादशाह ने कवि के आतिथ्य ग्रहण करने का आग्रह किया। वे बादशाह के अतिथि होकर ठहरे और अपने काव्य-कौशल से प्रसन्न कर अपने आश्रयदाता (शिवसिंह) का उद्धार किया।

अवहट्ठ-भाषा की रचनाएँ

'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका' नामक, उनकी लिखी हुई वीररस की दो पुस्तके अवहट्ठ-भाषा मे है। 'अवहट्ठ' (अपभ्रष्ट) भाषा प्रायः उस समय तक भारत की सर्वप्रिय राष्ट्रभाषा के रूप मे विद्यमान थी। इसीलिए 'कीर्तिलता' के प्रारम्भ मे वे लिखते है—'देसिल बयना सब जन मिट्ठा, ते तैसन जपओ अवहट्ठा।' इस पद के पूर्वार्ध से उपर्युक्त मत का परिपुष्टि हो जाती है। जायसी आदि की भाषा भी तो प्रायः इससे मिलती-जुलती ही है, जो अर्धमागधी का अन्तिम रूप मानी जाती है तथा जो अपभ्रंश-साहित्य का अवसान रूप है। मेरे अनुमान से तो 'अवहट्ट' कोई भाषा नहीं; किन्तु जिस प्रकार मिष्ट का अपभ्रंश-रूप 'मिट्ठा' है उसी प्रकार 'हृष्ट' का भी अपभ्रंश-रूप 'हट्ठ' है। प्रायः कवि का अभिप्राय है कि मै हृष्ट होकर यानी खुशी-खुशी देशी भाषा मे साहित्य का निर्माण कर रहा हूँ। 'अवहट्ठ' मे 'अव' संस्कृत-उपसर्ग 'अव' का रूप हो सकता है। जो हो, कवि की दोनो उपर्युक्त पुस्तके ऐतिहासिक-दृष्टि से परम उपादेय है। उनमे उस समय के आचार-व्यवहार का स्पष्ट निदर्शन है। पर अभाग्यवश 'कीर्तिपताका' समुपलब्ध नही। सुनते है, स्वर्गीय हरप्रसाद शास्त्री को नेपाल के राजकीय पुस्तकालय मे उसकी एक प्रति देखने को मिली थी। 'कीर्तिलता' तो सुलभ है। उसमे महाराज कीर्तिसिंह का, 'असलान' के के साथ हुए युद्ध का वर्णन है। भाषा-साहित्य मे वीररस का यह परम-प्राचीन चम्पू है। इसके एक-एक पद से भारतीयता चुई-सी पडती मालूम होती है। देखिए, जब असलान सन्धि-प्रस्तावना उपस्थित करता है तथा राज्य वापस कर देने का आश्वासन देता है, तब कीर्तिसिंह क्या कहते है :

मान - बिहूना भोअना, सत्तुक देअल राज।
सरन पइट्ठे जीअना, तीनू काअर-काज॥

महाराज कीर्तिसिंह ने प्रस्ताव को ठुकरा दिया तथा ईट का जवाब पत्थर से देने का निश्चय कर, जौनपुर के नवाब इब्राहीम शाह की सहायता से, लोहा

बजा ही दिया। आखिर असलान मारा गया और तिरहुत का राज्य महाराज ने हस्तगत किया।

यह 'अवहट्ठ'-भाषा—अर्थात् उस समय की 'देसिल बयना'—वीर-रस की लिए फबती भी खूब थी। देखिए—महाराज शिवसिंह के युद्ध का अधोलिखित वर्णन। उस समय दिल्ली के तख्त पर तुगलक-वंश का आधिपत्य था। उसके विरोध मे महाराज शिवसिंह ने बगावत का झंडा ऊँचा किया। 'कर' देना बन्द कर दिया गया। फिर क्या था! शाही सेना 'मार-मार' करती हुई तिरहुत पर टूट पडी। पर, शिवसिंह तो फौलाद के बने हुए थे, भय किस चिड़िया का नाम है—यह तो जानते ही न थे। दबडर की तरह शाही सेना पर टूट पडे :

दूर दुग्गम दमसि भंजेओ गाढ गढ गूढिय गंजेओ
पातसाह ससीम सीमा समर दरसेओ रे।
ढोल तरल निसान सद्दहि भेरि कोहल संख नद्दहि
तीनि भुवन निकेत केतकि सान भरिओ रे।
कोह नीर पयान चलिओ वायुमध्ये राय गरुओ
तरनि तेअ तुलाधरा परताप गहिओ रे।
मेरु कनक सुमेरु कम्पिअ धरनि पूरिअ गगन झम्पिअ
हानि तुरए पदाति पय भर कमठ सहिओ रे।
तरलतर तरवारि रंगे बिज्जुदाम छटा तरंगे
घोर घन संघात बारिस काज दरसेओ रे।
तुरए कोटिअ चाप चूरिअ चारि दिसि सौं बिदिस पूरिअ
विसम सार असाढ धारा धरनि भरिओ रे।
अन्धकूअ कबन्ध लाइअ फेरवी फफ्फरिस गाइअ
रुहिर मत्त परेत भूत बैताल बिछलिओ रे।

: ८ :

१८५७ के गीत

१८५७ के गदर को स्वतन्त्रता-सग्राम का पहला क्रातियुद्ध माना जाता है। उस समय की सारी उथल-पुथल को कई लोकगीतो मे व्यक्त किया गया है। कुछ गीत विलियम क्रुक नाम के एक सेवानिवृत्त 'आई सी एस' ने 'इंडियन एटिक्वेरी' के ईस्वी सन् १९११ के अप्रैल-जून अको मे सानुवाद प्रकाशित किये है। उनकी भूमिका मे उन्होने लिखा है :

'यह गीत कुछ वर्ष पहले मुख्यतः रामगरीब चौबे ने सग्रहित किये। इस चौबे ने अपनी राय यो लिख रखी है कि ग़दर का प्रभाव जिस प्रदेश के लोगो पर पड़ा, वहाँ उनके मन मे अग्रेजो की प्रचड शक्ति के लिए बहुत गहरा असर पैदा हुआ। ऊपर के वर्ग ने वह असर छिपा रखा, मगर नीचे के वर्ग के लोगो ने ब्रिटिशो के विजय के सन्मान मे निःसकोच रूप से गीत रचे और गाये। ऐसे गीत उत्तरप्रदेश की जनता के होठो पर अभी भी नाच रहे है। रामगरीब चौबे ने ऐसा भी कहा है कि इन्ही कारणो से ग़दर के पचास बरस बाद भी ये गीत जमा करके रखना जरूरी है। इनसे जनता की सच्ची भावनाओ का पता लगता है। अनेक देशी सम्पादक और प्रकाशक इन गीतो को जमा कर रहे है और छाप रहे हैं।'

क्रुक की इस पक्षपातपूर्ण एकागी भूमिका के अलावा एटिक्वेरी के सम्पादक ने एक और छोटी टिप्पणी जोडी है, जिसमे यह कहा गया है कि इन लोकगीतो में भारतीय लोकगीतो के सभी साधारण गुण है। इतिहास का संदर्भ केवल सदिग्ध या अस्पष्ट है और केवल स्थानिक महत्त्व के वृत्तान्त ही उसमे दिये गये हैं। भाषा घरेलू है और विषयानुसार शब्दयोजना है।

वे गीत इस प्रकार से है :

१. मेरठ की लूट

सहारनपुर की गूजर स्त्रियो का यह गाना है :

लोगों ने लूटे शाल-दुशाले, मेरे प्यारे ने लूटे रूमाल ॥१॥
मेरठ का सदर बजार है, मेरे सानियाँ लूटं न जाने ॥टेक॥
लोगों ने लूटे थाली-कटोरे, मेरे प्यारे ने लूटे रूमाल ॥२॥
लोगो ने लूटे गोले-छुहारे, मेरे प्यारे ने लूटे बदाम ॥३॥
लोगो ने लूटे मुहर-अशरफी, मेरे प्यारे ने लूटे छदाम ॥४॥

२. ग़दर के दिनों में फैजाबाद

अहमद उल्ला 'फैजाबाद का मौलवी' नामसे प्रसिद्ध था। फैजाबाद जिले के उनही के किसी बदा अली सैयद से यह गाना रामग़रीब चौवे को मिला। गाना यो है :

राणा बहादुर सिपांही अवध मे धूम मचाई मोरे राम् रे॥
लिख लिख चिट्ठियाँ लाट ने भेजा : 'आन मिलो राणा भाई रे ॥
जंगी खिलात लंदन से मगा दूँ, अवध मे सूबा बनाई रे॥ १॥
जवाब-सवाल लिखा राणा ने : 'हम से न करो चतुराई रे॥
जबतक रहे प्रान तन भीतर, तुमको खोद बहाई रे' ॥ २॥
जमींदार सब मिल गये मुल्कान, मिल मिल के कपाई रे॥
एक तो बिन सब कट-कट जाई, दूसरी गढी 'खोदवाई रे ॥ ३॥

३. बरवा बटेला में गुलाबसिंह का पराक्रम

अवध मे हरदोई जिले के सडीला तहसील मे बरवा बटेला गॉव है। गुलाब-सिह वहॉ का ठाकुर था। यह अविवाहित था, पर वारिस के तौर पर उसने अपने भान्जे को गोद लिया था। उसकी बहिन बडी बहादुर थी। यह गीत रामगरीब चौबे ने किसी कमरुद्दीन से सुना था :

'राजा गुलाबसिंह रहिया तोरी हेरूँ
एक बार दरस दिखावा रे !" (टेक)
अपनी गढी से यह बोले गुलाबसिग :
'सुन रे साहब मेरी बात रे।
पैदल भी मारे, सवार भी मारे,
मारी फौज बेहिसाब रे ॥'
'बाँके गुलाबसिग रहिया तोरी हेरूँ,
एक बार दरस दिखावा रे।'

'पहली लडाई लखमनगढ जीते,
दूसरी लड़ाई रहयाबाद
तीसरी लडाई संडीलवा में जीते
जामू मे कीन्हा मुकाम रे ।।'
'राजा गुलाबसिह रहिया तोरी हेरूँ,
एक बार दरस दिखावा रे ।।'

४. बहादुरशाह की बेगमों का विलाप

यह गीत इटावा जिले मे अमरपुर के शालिग्राम कायस्थ ने गाया और अमरपुर शाला के एक अध्यापक ललिताप्रसाद ने लिखा। बहादुरशाह पर मुकदमा चलाया गया और उसे देश-निकाला देकर बर्मा मे भेज दिया गया। तब बेगमों ने इस तरह से विलाप किया :

अब कैसी करी हो निमकहरामी देसवा बेगानी कर दी रे ?
गलियाँ गलियाँ रैयत रोवाई, हटिआँ बनिया बजाज रे।
महल मे बैठे बेगम रोवै, देहरी पर रोवे खवास रे।
मोतीमहल की बैठक छूटी, छूटी है मीना बाज़ार रे।
बाग़ जमनियाँ की सैरें छूटी, छूटो है मुल्क हमार रे।
जो मै ऐसा जानती, मिलती लाट से जाया रे।
हा-हा करती पैयां परती, लेती देसवा छोरागा रे।

५. अवध के जिले का इन्तजाम

लार्ड डलहौसी ने १८५६ ईस्वी मे अवध का सूबा अगरेजी सल्तनत में मिला लिया। वहाॅ के नवाब वाजिद अली शाह को कलकत्ते के कारावास मे डाल दिया। तब का यह गीत है। उसमे जो तिरसठ, पैंसठ, छियासठ के जिक्र है, वे हिजरी की तेरहवी सदी के है। फिर भी वे गलत है। यह गीत आगरा जिले के चन्द्रापुर मे गिरधारीदास चौबे से रामगरीब ने सुना था :

जिस वक्त साहबां शहर लखनौ लिया।
वाजिद अली जो शाह था कलकत्ता चल दिया।
शाहजादगां बेगम हमराह कर लिया है।
मलिकह मुअजम ने तनख्वाह कर दिया है। १
अकबाल से फिरंगी मुल्क अवध ले लिया।
सब राजगान खौफ़ से हताअत कबुल किया।
बेइन्तिज़ामी ऐसी थी बादशाह पर,

विरात मुल्क होता था रखते नहीं खबर।
अँग्रेजों ने जब देखा, ऐसा मचा है ग़दर।
नायब शहरयार ने दखल कर लिया शहर,
अकबाल से फिरंगी मुल्क अवध ले लिया,
सब राजगान खौफ़ से हथिआर धर दिया।
फैला अमला फिरंगी का तिरसठ के साल मे।
बलवा हुआ है मुल्क मे पैंसठ के साल मे।
अंग्रेज फिर दखल किया छियासठ के साल मे।
बिरजिसकदर बेगम नैपाल राज में।
अकबाल से फिरंगी मुल्क अवध ले लिया।
सब राजगान खौफ़ से हथियार धर दिया।
जिस वख्त बेली गारद में साहबाँ थे,
कोई रसद न चलती थी, महताज खुदा थे।
और गौरहय लेकर मुस्तहद जंग थे।
भूको-पियासों मरते थे, पर भागते न थे।
अकबाल से फिरंगी मुल्क अवध ले लिया।
सब राजगान खौफ़ से हथियार धर दिया।
जब साहबां धावा करते थे फौज पर।
बदमाश मुल्की बत्ती देते थे तोप पर
उनके मुकाबिले से छिपाते थे दर-ब-दर।
सर काट लेते गोरा उन्हें खोज-खोज कर।
तलवार और गोली और संगीन चलती थी।
सदा स्र्व के ऊपर जब बत्ती बलती थी।
आवाज उस तरफ से ज़मीन थरथराती थी।
उस वक्त जन शिकमसे हमल डाल देती थी।
यह बिरजिसकदर बेगम की कही गई बहादुरी?
दुनियां मे नाम रह गया शाही से आखिरी
अब कौन कर सकेगा ऐसी बहादुरी?
बेगम निकलते वक्त खुद जंग क्या करी?
जिस वक्त राणासाहब गोरों से जंग किये।
बदमाश भाग भाग के उत्तर की राह लिये।

जगराजसिंह पीछा गोरों का किया खूब।
एक-एक को मारकर नाली मे दिया डूब। ८
यह राणा वेणीमाधव जवांमर्द है बड़ा।
खुद जंग माँगता है, मुस्तइद है खरा,
यह लोह बैसवारे का बैसों का है कड़ा।
अब तो मुकाबला अंग्रेजों से आ पड़ा। ९
तब साहबाँ आपस में मसहलत किया।
"राणाको लेव मिलव मुलक अवध ले लिया।
और राजगान सारे मुल्क अवध बेवफा।
यह लोग हाजिर जब खौफ बर मला।" १०
जब राजा मानसिंह फिरंगी मे आ मिला।
उस वक्त लाल माधो पर खौफ चल मिला।
"बदमाश भाग भाग लुके जाके करबला।"
जब साहबाँ जाके घर लिया बर मला। ११

तब राणा ने दिल में सोचा :

अब आबरू के साथ निकल चलना खूब है।
अफवाज अपनी ले के उत्तर की राह ली।
सब राज अपनी छोड के बेगम की साथ दी। १२
आखिरको बदहवास हुए राजगान सब।
किसान नमकहरामी अवध शाह घर है जब।
"अंग्रेज बेवफाई करेंगे करो यह कब?"
बरखौफ हाजिर आये यह राजगान सब। १३
पहला ही इन्तिजाम बन्दोबस्त सरसरी,
बारहै जिला किया है औ अर्बा कमीश्नरी
सुबह अवध मे एक है जुडिशल कमीश्नरी।
निसबत अपील के यह दर्जा है आखिरी। १४
फेर बादको मौजे मौज़े वा हद बस्त कर लिया;
दन्दे और मेन्दे का सब झगड़ा उठा दिया।
आईनी जंज़ीर पैमाइश शुरु किये,
मुमकिन और घैरमुमकिन सब जुदा किये। १५
जब कागज़ात बिल्कुल तरतीब कर लिया।
तब इन्तज़ाम साली बन्दोबस्त कर किया।

हर एक के नाजारी हुक्मनामा कर दिया।
और इस तरहं दावेदारी का दे दिया। १६
बारह बरस की मयाद मुकर्रर जो की गई।
तिरसठ के जगह साल इक्कावन लिखी गई।
अन्दर मिआद कबज़ा डिक्री दी गई।
कबजाहे न बुद, अर्जी खारिद कर दी गई। १७
हर एक जिला मे चार मुहकमा खडा किया:
जिला, कलकटरी, दिवानी, अयाँ किया।
फौजदारी बाद, बन्दोबस्त रो दिया।
यह हाल कह गई, गोया कलम बन्द कर दिया। १८

: ८ :

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

१—व्यक्तित्व

आज हिन्दी भाषा और साहित्य प्रतिष्ठा एवं अभिवृद्धि की जिस अधित्यका पर जा पहुँचे है, उसकी चढ़ाई का सूत्रपात भारतेन्दु ने ही किया है। एक ओर जहाँ हिन्दी भाषा को राजनीतिक और सामाजिक प्रतिष्टापद दिलाने की नींव डालने का साहसपूर्ण कार्य उन्होंने किया, वहीं दूसरी ओर हिन्दी साहित्य को काव्य की कुञ्जगली से बाहर निबन्ध, नाटक, उपन्यास एव आलोचना आदि के विभिन्न क्षेत्रो मे उतारने का श्रीगणेश भी उन्हीं से हुआ है। भारतेन्दु का यह ऋण और बढ जाता है जब हम उनके व्यक्तिगत प्रयत्न एव प्रोत्साहन से हिन्दी सेवा के क्षेत्र मे आने वाले उनके समकालीन साथियो का कार्य भी उनके कार्य के साथ जोड देते है। भारतेन्दु ने अकेले जो कुछ अपनी ३४ वर्ष की आयु मे किया, वह स्वयं ही एक विराट् विस्मय है, पर जब हम उनके जीवन के विविध सामाजिक कार्यकलापो एव समारंभो की ओर दृष्टि डालते है और उनके इन समारभो का लेखा-जोखा लेने बैठते है, तब तो हमारे विस्मय का अन्त ही नहीं रहता। हिन्दी को जीवन देने मे सूर और तुलसी का, हिन्दी को सज-धज देने मे देव और बिहारी का जा स्थान है, वही स्थान हिन्दी को प्रतिष्ठा देने मे भारतेन्दु का है। इसीलिए भारतेन्दु का कवित्व प्रतिष्ठा दिलाने के इस भगीरथ प्रयत्न मे उनके व्यक्तित्व से प्रतिच्छायित हो गया है। "निज भाषा उन्नति लहै" की प्रबल इच्छा ने भारतेन्दु को उनकी साहित्यिक प्रतिभा से ऊपर उठाकर एक नये सास्कृतिक पुनरुज्जीवन का युगप्रवर्तक बना दिया है। बंकिमचन्द्र, चिपलूणकर और नर्मद ने जो कार्य अपने प्रातीय क्षेत्रो मे किया, उसके विस्तृत स्वरूप का आत्मदर्शन

किया है भारतेन्दु ने ही। भारतेन्दु से ही खड़ी बोली न केवल घुटनो के बल चलना छोड़कर खड़ी होना सीखती है, बल्कि वह साहित्य एवं वाङ्मय के विभिन्न क्षेत्रो मे विचरण करने का भी पथनिर्देश प्राप्त करती है। तुलसी ने भाषा को सस्कृत की बराबरी मे रखने मे जिस अद्भुत क्षमता का परिचय दिया है, सभवतः उतनी ही क्षमता भारतेन्दु ने भी हिन्दी को तत्कालीन राजभाषाओं की बराबरी मे खड़ा करने मे दिखलाई है। भारतेन्दु का स्थान साहित्य मे उतना बड़ा न हो, पर हिन्दी भाषा के इतिहास में वे तुलसी ही के समकक्ष हैं, इसमे तनिक भी सन्देह नही।

हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु का स्थान किस तारतम्य मे है, इसकी समीक्षा करना तो कठिन ही होगा, किन्तु यह तो स्वतःसिद्ध ही है कि इतनी अल्पवय मे हिन्दी आदोलन के साथ साहित्य के विविध क्षेत्रो मे सूत्रारंभ करने की जिस प्रतिभा का उपयोग होगा, उसके विकास की माप ऊँचाई मे न करके आयाम मे करना अधिक न्यायसंगत होगा। भारतेन्दु का साहित्यिक कृतित्व इन सीमाओ मे बँधा हुआ है और इसलिए उसका मूल्यांकन करते समय आयामात्मक मापदण्ड को प्रयोग मे लाना होगा। कवि के रूप मे वे आत्मविस्मृति मे खोये भक्तकवियो के नवीन सस्करण है, नाटक्कार के रूप मे स्वदेशी और विदेशी परम्पराओ का दिग्दर्शन कराते हुए भी मौलिक नाटक साहित्य के वे आदि-सस्थापक है, निबन्धकार के रूप मे उस अनुप्राणित स्वानुभूत्यात्मक शैली के प्रवर्त्तक है जिसका दुर्भाग्यवश हिन्दी मे आगे कुछ अधिक विकास न हो सका और पत्रकार के रूप मे स्वतत्र विचारशक्ति और निष्पक्ष विवेचना के आदर्शो के जन्मदाता। इतिहास, धर्म और दर्शन आदि विषयो में भी मार्ग-निर्देश उन्होने किया, पर अपने मस्त जीवन में इनके लिए पर्याप्त अवकाश न पा सके। भाषा के प्रसाद और स्वच्छंद भाव-प्रवाह का अद्भुत तादात्म्य उनकी साहित्य-साधना का मर्म है। उनके साहित्य मे तीव्रता या गहराई उतनी न हो, पर जीवित समरसता का जो एक शाश्वत सन्देश उनकी रचनाओ मे सर्वत्र प्राप्त होता है, उसे अभी तक भली-भाँति आँका नही गया है। जीवन के प्रति जिस स्वस्थदृष्टि को उन्होने अनुबिंबित किया है, वह केवल दो-चार इने-गिने कवि हिंदी मे दे पाये है। वे अपने व्यक्तित्व की छाया से स्पृष्टमात्र चाहे हुए हो, किंतु उन्होने कही भी अपने को उस छाया से अभिभूत नही होने दिया है, यह आधुनिक युग की व्यक्तिवादी परिधि मे बहुत बड़ी सिद्धि है। इन सभी दृष्टियो से विस्तार मे विवेचन आगे किया जायगा, किन्तु साहित्य-स्रष्टा के रूप मे भी उनका स्थान इस युग मे अप्रतिम है, इतना निर्विवाद है।

अपने पिता गोपालचन्द जी उपनाम गिरधरदासजी से, जो हिंदी के लब्ध प्रति-

ष्ठित कवि और कवियों के केन्द्र-बिंदु थे, साक्षात् दाय के रूप मे उन्हे साहित्यमेधा मिली थी। भारतेन्दु बाबू को माता के वात्सल्य से पांच वर्ष की अवस्था मे ही और पिता के स्नेह से दश वर्ष की अवस्था मे वंचित होना पडा, इनका प्रभाव उनके ऊपर कुछ विपरीत ही पडा। दु:ख से सतप्त होकर अवसन्न होने के बजाय दु:ख की चिन्ता से भी उन्मुक्त होकर प्रसन्न रहने का कुछ स्वभाव उन्होंने अपना लिया और दुरन्त दुश्चिता के स्थान पर हद दर्जे की बेफिक्री ने उनके अन्तर्जीवन मे घर बना लिया। पिता के सरक्षण मे घर पर अल्पवय मे ही उनकी विभिन्न भाषाओं की शिक्षा-दीक्षा प्रारभ हो गयी थी; पडित ईश्वरीदत्त जी से हिन्दी-सस्कृत, मौलवी ताज अली से उर्दू-फारसी और पंडित नन्दकिशोर तिवारी से अगरेजी की आरभिक शिक्षा उन्हे प्राप्त हुई थी। स्कूल के बाहर शिवप्रसाद सितारेहिन्द का भी शिष्य रहने का उन्हे अवसर मिला था।

इस शिक्षाकाल के बीच ही मे १३ वर्ष की अवस्था मे सम्वत् १९२० के अगहन मे उनका विवाह शिवाले के रईस लाला गुलाबराय की पुत्री श्रीमती मन्नोदेवी के साथ बडे समारोह के साथ हुआ। इसके बाद ही उन्होंने सपरिवार पुरी यात्रा की और पठनक्रम को नमस्कार किया। सम्वत् १९२३ मे बुलन्दशहर, चुनार, कानपुर, लखनऊ, सहारनपुर, मसूरी, हरिद्वार, लाहौर, अमृतसर, दिल्ली और आगरा का उन्होंने पर्यटन किया। इस यात्रा के बाद ही बडी द्रुतगति मे अपने साहित्यिक समारभों की ओर ये अभिमुख हुए। सवत् १९२४ मे हिदी की पहली साहित्यिक मासिक पत्रिका 'कवि वचन सुधा' प्रकाशित की। सम्वत् १९२५ मे 'विद्यासुन्दर' नाटक की रचना हुई। इसके बाद तो सम्वत् १९३८ तक, जब तक स्वास्थ्य जर्जर नही हो गया तब तक उनका जीवनकाल साहित्य सभाओं और कवि-समाजो की स्थापनाओं, नाटकों और कविताओं की रचनाओं, पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादन और हिंदी आदोलन के व्यापक आयोजनो से इस प्रकार सकुल रहा कि इस अविच्छिन्न कर्म-प्रवाह मे कही भी विराम नही।

इधर सम्वत् १९२७ मे ही उनकी बेफिक्री मे और चार चाँद लग गये जब उनके लोकबुद्धिविचक्षण लघु भ्राता ने सम्पत्ति का बॅटवारा करा लिया और अब तो "दानी हरिश्चन्द्र" की दोनों मूठ खुल गयी। यदि किसी ने टोका भी तो सीधा सा उत्तर बना बनाया तैयार—"इस धन ने मेरे पूर्वजो को खाया, अब मैं इस धन को खाऊँगा।" पर इस धन को खाते-खाते वे अपना ऋण-भार बढाते गये और ऋण ने भी खाते-खाते उनके शरीर का स्वास्थ्य खा डाला और सम्वत् '३९ मे महाराणा सज्जनसिह के आग्रह पर उदयपुर यात्रा करके जो वे लौटे तो शरीर ने निरन्तर अत्याचार का प्रतिशोध लेना एकदम आरंभ कर दिया और राजरोग ने

जो पदार्पण किया तो उनको लेकर ही वह बिदा हुआ। इस रोग को अपनी अन्य कार्य-व्यापृतियों से दबाने की भरपूर कोशिश की, किन्तु भीतर ही भीतर यह बढता ही गया और माघ कृष्ण ६ सम्वत् १६४१ को उनकी "लास्ट नाइट" आगयी और उस क्षण तक भी अपनी संजीदगी जगाते रहते वे इस भूमि से बिदा क्या हो गये, भारत का उदयकालीन द्वितीया का इन्दु ही अपनी कल्याणकारिणी कला दिखलाकर अस्त हो गया। वे केवल एक कन्या सन्तान छोडकर मरे।

उन्होंने शिक्षा और धार्मिक सस्थाओं को भी जन्म दिया और उनके आजीवन प्राण बने रहे। उनके बहुकार्य व्यापृत जीवन मे इतने अधिक ग्रंथ लिखे जा सके, यह उनकी आशुरचना-शक्ति और तीव्र मेधा का ही फल है। साथ ही उनको इतना अधिक आत्मबल अनन्य भगवद्भक्ति से प्राप्त हुआ था और अत्यंत स्वच्छंद जीवन व्यतीत करते हुए भी किस प्रकार एकोन्मुख अनुरक्ति के साथ-साथ ससार से मधुर विरक्ति की भावना उनके अन्दर काम किया करती थी, इसका परिचय उनके समर्पण-लेखो मे सर्वत्र मिलता है। अपने जीवन भर का सचित स्नेह लुटाकर चलना ही उनका ध्येय था, जो कि उनकी इन अंतिम पक्तियों से परिलक्षित है :

डंका कूच का बज रहा मुसाफिर जागो रे भाई।
देखो लाद चले पंथी सब तुम क्यो रहे भुलाई॥
जब चलना ही निहचै है तो लैं किन माल लदाई।
हरीचंद हरिपद बिनु नहितौ रहि जैहो मुँह बाई॥

इसलिए अपने व्यक्तिगत और सामाजिक दोनो सबधो मे वे देकर ही गये है, कुछ लेकर नही, प्रतिभा का पौरुष भी इसी आत्मदान मे ही है। उनकी उदारता का यह अत्याचार उनके अभाव की अनुभूति को और भी तीव्र बना देता है और इसलिए आज भी उनका व्यक्तित्व एक असाधारण आकर्षण रखता है और रखता रहेगा।

भारतेन्दु के व्यक्तित्व के प्रधान उपलक्षण हैं, हृदय की उदारता, रसिकता, विनोद-प्रियता तथा स्वच्छदता। इनके निर्माण मे इनकी कुलगत परम्पराएं और उनकी पारिवारिक परिस्थितियाँ भी योग देती रही है। इससे यह न समझ लेना चाहिए कि उनका हृदय कभी बेकली का अनुभव नही करता था, इसके विपरीत अपने स्वच्छंद और अधाधुन्ध उदार जीवन-प्रणाली की तत्कालीन प्रतिक्रियाओ के मर्मभेदी आघातो ने अनेको बार उन्हे व्यथा पहुँचाई, पर उसे वे पी गये, इस विषपान के केवल सूक्ष्म सकेत यत्र-तत्र उनकी रचनाओ मे मिलेगे। प्रेम-

योगिनी मे रामचन्द के बारे मे यह उक्ति कि "कवित्त बनावनो कुछ अपने लोगन का काम थौरै हय, ई भॉटन का काम है", सत्य हरिश्चन्द्र की प्रस्तावना मे नटी का लम्बी सॉस लेकर यह कहना कि "हा, प्यारे हरिश्चन्द्र का ससार ने कुछ भी गुण-रूप न समझा। क्या हुआ, 'कहेगे सबै ही नैन नीर भर भर पाछे प्यारे हरिश्चन्द्र की कहानी रहि जायगी।" और भारत-दुर्दशा मे पहले अंक मे योगी की करुण लावनी, ये सभी उनकी उपेक्षा-जनित अन्तर्व्यथा के सकेत है। हॉ, इतना अवश्य है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ऊपर से इन तमाम चोटो को फूल की तरह ओढा और असीम कष्टमयी मरणवेला मे भी वे अपनी पीडा से उसी प्रकार विनोद करते रहे—

"हमारे जीवन-नाटक का प्रोग्राम नित्य नया-नया छप रहा है। पहले दिन ज्वर की, दूसरे दिन दर्द की, तीसरे दिन खॉसी की सीन हो चुकी, देखें लास्ट नाइट कब होती है।"

लोकसग्रह तक सीमित दृष्टि उन्हें असफल कह ले, पर जीवन की सफलता एकदेशीय चित्र को लेकर नही निर्धारित की जाती, उसके लिए तो जीवन को समष्टि रूप से समझने की आवश्यकता पडती है। "एप्रिल फूल" बनाने मे जो विचित्र से विचित्र बालसुलभ परिहास के दृश्य उपस्थित किया करता था, वही भारत की पराधीनता से प्रज्ज्वलित होकर ऑनरेरी मजिस्ट्रेटी भी छोड सका था, इस विरोधाभास को समग्रतया समझने के लिए उनके जीवन के ध्येय-बिन्दु को सतत दृष्टि मे रखना चाहिए। भारतेन्दु की एकमात्र कामना थी अपने देश और अपनी भाषा की चेतना को अपने आराध्य कृष्ण के चरणों मे समर्पित करना। वे न तो योगी थे और न दार्शनिक। गहन अध्ययन करके गभीर विचारक बनने का उनके पास न तो समय ही था और न इसकी उत्कंठा ही। अपने छरहरे सॉवले और कुटिल कुन्तल रूप को उन्होने अगर कही तपाया तो प्रेमयोग मे ही तपाया और सच है कि उन्होने लौकिक मर्यादाओ की कुछ उपेक्षा भी की, पर इसके अनौचित्य को भी स्वीकार करते हुए। उन्होने अपने व्यक्तित्व को अततक जनजीवन के साथ समरस बनाये रखा और यही कारण है कि उनमे और प्रतापनारायण मिश्र जैसे उनके अनुयायियो मे जनजीवन की विभिन्न अंतर्धाराओ के साथ स्निग्ध आत्मीयता मिलती है। अपनी लावनी, कजली और होली मे भी वे उसी तरह सहज रूप मे रम सके है जिस तरह अपने कवित्त, सवैया या छप्पय मे।

२—लावनियाँ

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समूचे काव्य-साहित्य मे मे उनकी लावनियो का यहाँ विचार किया जायगा।

'लावणी' मराठी साहित्य का तथा लोककाव्य का एक महत्वपूर्ण अंग है।

हिन्दी मे यद्यपि 'लावनी' लिखा जाता है, मराठी में इस गीत प्रकार को लावणी कहते है। और हिन्दी रीतिकाल के समसामयिक मराठी काव्य साहित्य में पोवाडो (वीर-रस प्रधान आख्यान-काव्य) और लावणियो (शृङ्गार-रसप्रधान प्रेम-गीत) का बहुत जोर रहा है। ये काव्य-प्रकार विशेषतया लोक-काव्य के रूप होने के कारण 'तमाशो' के फडो (दलो) मे, अथवा अशिक्षित गायकों मे, गुरु परम्परा या वश परम्परा के द्वारा ही स्थायित्व प्राप्त कर सके। लावणियाँ हजारो रची और गायी गई होगी, पर जैसे हिन्दी मे कजली, बिरहा, होली आदि के संग्रह कम ही है, वैसे ही मराठी में भी केवल सात कवियो की लावणियाँ मिलती हैं—रामजोशी, अनन्तफन्दी, होनाजी बाला, प्रभाकर, परशुराम, बाला बहिरू और सगनभाऊ।

लावणी की अनेक परिभाषाएं मराठी आलोचको मे प्रचलित है, लेकिन निश्चितार्थ देने वाली कोई नही। अच्युत बलवन्त कोल्हटकर ने एक परिभाषा की थी कि 'जो हृदय पर ऐसी छाप लगा दे कि श्रोता भूल न सके, वह लावणी।' व्युत्पत्तिकोषकार ने लावणी का अर्थ 'एक प्रकार का ग्राम्य प्रेमगीत' दिया है, पर सभी लावणियाँ ग्राम्य या शृङ्गारिक नही हैं, यद्यपि गेय वे अवश्य हैं। मराठी लावणियो मे अस्सी प्रतिशत शृङ्गारिक होगी, पर कई लावणियो में किसानों के जीवन के दुःख-दर्द, तीर्थ-वर्णन, शहरो मे नये सुधार, नये फैशनो पर फबतियाँ आदि विषय भी मिलेंगे। कवियो की नायिकाए सामन्तयुगीन विलासिनियाँ ही अधिक है, जनजीवन की ग्राम्याए कम।

भाषा की ओर ध्यान देने पर हम पाते हैं कि यद्यपि पोवाडो और लावणियों के रचयिता (शाहीर) ग्रामीण ही थे, और उन्होने लोक-भाषा के सशक्त वाक्प्रचारो का कुशल उपयोग किया है, तथापि अनुप्रास-प्राचुर्य और नाद-माधुर्य की दृष्टि से उनकी रचनाएं 'गीतगोविन्द' प्रभृति सस्कृत रचनाओ की कोटि की है। रामजोशी ने तो संस्कृत मे लावणियाँ लिखी है। भारतेन्दु ने भी एक संस्कृत लावनी लिखी है, जिसका उल्लेख हम आगे करेंगे। रामजोशी अनन्तफन्दी और प्रभाकर ब्राह्मण कवि थे, होनाजी बाला और परशुराम ब्राह्मणेतर और सगनभाऊ मुसलमान था। इनकी भाषा में प्राचीन सन्त-काव्य की परम्परा

से आये हुए शब्द तो है ही, परन्तु एक नये प्रकार की जन-सम्मत प्रेषणीयता भी है, जो शिष्ट सम्मत चाहे न भी हो। प्रभाकर और सगन की रचनाओं में कहीं-कहीं नग्न शृङ्गार भी है।

इस प्रकार लावणी के विषय आध्यात्मिक नहीं, लौकिक है। उसके रूप-वर्णन जीने-जागते मानवों के हैं। लावणियाँ साधारण जन-समूह के सामने पढ़ी जाने के लिए थीं, उनमे आधुनिक कवियों की सी दीक्षा-गम्य प्रतीक-सज्जा नहीं थी। लावणीकारो मे आपस में बड़ी स्पर्धा चलती थी, और हर कवि रचना के अन्त मे अपनी प्रशंसा करता था। कविताएं आठ मात्रा के धुमाली ताल में होती थीं, यह ताल अनन्तर लावणी ताल कहलाने लगा। इन कविताओं मे यमकों की झडी-सी लग जाती थी। पेशवाई के उत्तरकाल मे यमकों की यह बाढ़ हिन्दी मे पद्माकर आदि रीतिकवियों के शब्द-शिल्प की याद दिलाती है। साहित्य मे प्राणों की अल्पता के साथ-साथ अश्लीलता और शब्दालंकरण की वृद्धि होने लगती है, यह सहज क्रम है।

व्युत्पत्ति

लावणी शब्द की व्युत्पत्ति कई प्रकार से सिद्ध की जाती है :

(१) मराठी मे 'लावणें' का अर्थ है लगाना। खेती में बुवाई या पौध की रोपनी को भी लावणी कहते है। ऐसे समय जो गीत गाये जाते है, वे लावणी कहलाये। यह एक सीधी व्युत्पत्ति है, किन्तु इसमें सार नहीं है, क्योंकि लावणी न तो ऐसे अवसरों पर गायी जाती है, न उसका रोपने की क्रिया से कोई सम्बन्ध है।

(२) संस्कृत 'लू' धातु का अर्थ है काटना, अर्थात् लावणी रोपने के समय नहीं बल्कि कटनी के समय गाया जाने वाला गीत है। यह भी उपर्युक्त कारणों से अग्राह्य है।

(३) 'मधुर' से 'माधुर्य' और 'माधुरी' की भाँति, 'लवण' से 'लावण्य' और 'लावणी' दोनो रूप सिद्ध होते है, ऐसा गो० कृ० मोडक का सुझाव है। शब्द-सिद्धि की दृष्टि से यह युक्ति निर्दोष है, पर हमारी भाषाओं में सौंदर्य के लिए जैसे लावण्य का प्रयोग होता है, लावणी का कहीं नहीं होता।

(४) व्युत्पत्तिकोषकार ने 'लापनिका' व्युत्पत्ति दी है। जैसे अन्तर्लापिका—बहिर्लापिका आदि संस्कृत कूटप्रश्नात्मक काव्य है, वैसे ही संस्कृत मे 'लापनिका' रही होगी। इस शब्द का उल्लेख 'सिंहासन द्वात्रिंशिका' नामक जैन-ग्रन्थ मे आया है। पर उसका अर्थ है बोलना, सम्भाषण। प्राचीन मराठी मे भी

लापनिका' शब्द बड़बड़, रामरसरा के अर्थ मे प्रयुक्त होता है। शब्द-सिद्धि की दृष्टि से 'लप्' बोलना से 'लापयति' बनता है और 'ली' चिपकना से भी 'लापयति' प्रयोजक रूप बनता है। इस प्रकार ली—लापयति—लापनिका—लावणी, शब्द-संगति तो हो जाती है, पर इसमें 'लापनिका' शब्द कच्चा तन्तु है। संस्कृत मे कही इसका प्रयोग नही; और मराठी (या हिन्दी) लावणी का संस्कृत काव्य-प्रकारो से कोई साम्य नही।

(५) म० वा० धोण्ड का सुझाव है कि 'ली' 'लग' धातु के प्रयोग मराठी 'लागणे' लगाना का प्रयोजक 'लावणे' बना। इसका अर्थ जमाना, सजाना, रचना, यह भी होता है। राजवाड़े ने अपने 'मराठी छन्द' में 'ओवी' छन्द नाम की व्युत्पत्ति मे बताया है कि ओवणे (गूँथना)—ओवणी—ओवी से महानुभावीय कवियो ने 'दर्शन-प्रकाश' में 'ओवनिका' का प्रयोग किया। लावणें—जोड़ना, सजाना से 'लावन' रूप मराठी के 'ग्रन्थ-लापन', 'श्लोक-लापन' आदि पदों मे पाया जाता है।

'लावणी' का अर्थ जोडना या मिलाना, रचना या सज्जा के अभिप्राय से, मराठी के प्राचीन कवियो मे भी मिलता है। ज्ञानेश्वर लिखते है :

"तया निरूपणाचेवि नांवें। अध्यायपद सोवें, लावणी पाहतां जाणावे। मागिलावरी।" **ज्ञानेश्वरी, १६, ६३**

यहाँ लावणी का अर्थ विषय का व्यवस्थित निरूपण है।

शिवाजी के समय का शाहीर (कवि) अज्ञानदास, 'अफजल खॉ-वध' के पोवाडे मे 'तिसज्या सदरेची माण्डणी' के वर्णन मे लिखता है :

'चाँदवा जडिताचा बान्धोनी। घोंस मोतियांचे वर टिकड़ी नाना परीची। अवघी जडिताची लावणी। हिरे जोडिले खणोखणी।'

यहाँ छत के वर्णन मे हीरकखचित या जटित के अर्थ में 'लावणी' का प्रयोग हुआ है।

सुभग-रचना के अर्थ मे 'लावणी' का प्रयोग होता रहा होगा। कर्णाटक में अभी भी वीर-रस के आख्यान-काव्य और शृङ्गार-गीत दोनो 'लावणी' कहलाते है। लावणी की रचना मे महाराष्ट्र मे भी बहुत विकास और अन्तर होता गया। आरम्भ मे वाक्प्रतियोगिता का जो रूप होता था, उससे क्रमशः कूट-वर्णन, नख-शिख आदि का सन्निवेश हुआ, गाने की तर्जें भी बदली। रचना रागदारी मे, पर गायन लावणी-गायकी के ढँग पर होने लगा। तमाशो की घुमन्तू बेड़िने कोठियों की कलावन्तिने बन गयी, लावणी शुद्ध शृङ्गार-गीत हो गयी।

मराठी लावणी का छन्द रूप निश्चित नहीं है; परन्तु भारतेन्दु की लावनियाँ मराठी शैली से भिन्न हैं। कुछ मराठी के 'भूपतिवैभव' 'केशवकरणी' आदि छन्दों से मिलती हैं, तो कुछ गजल की बहरों पर रची जान पड़ती है। भाषा भी कुछ में ब्रज की पुट लिये खड़ी बोली हैं तो कुछ मे उर्दू, एक लावनी संस्कृत मे भी है।

भारतेन्दु-ग्रन्थावली मे जो सोलह लावनियाँ उद्धृत है, उनका ब्योरा इस प्रकार है :

(क) उर्दूई भाषा, उर्दू पद्धति के छन्द :

प्रथम पंक्ति	विषय
१—बिना उसके जल्वा के	सूफियाना सर्वव्यापी का परम-प्रेम
२—चाहे जो हो जाय उम्र भर	एकांगी प्रेम
३—बाल य दिल के बबाल	प्रेम का केश-वर्णन (उत्प्रेक्षाएँ)
४—आँखो मे लाल डोरे	प्रेमी की बेरुखी का वर्णन

(ख) ब्रज की पुट लिए खड़ी बोली :

छन्द मात्रिक :

प्रथम पंक्ति	विषय
५—करि निठुर शाम सों	कृष्ण के विरह मे राधा के मनोभाव
६—तुम सुनो सहेली संग की	कृष्ण के काम-कौतुक का गोपी द्वारा वर्णन
७—दुख किसे कहूँ	विरहिणी का विप्रलम्भ शृङ्गार

(ग) खड़ी बोली मिश्रित या अनियमित छन्द :

प्रथम पंक्ति	विषय
८—वही तुम्हें जाने प्यारे	सूफी परम-प्रेम का वर्णन
९—जब तक फँसे थे इसमें	दुनिया की असारता
१०—सखि चलो साँवला दूलह	कृष्ण का दूलहा-वर्णन
११—बीत चली सब रात न आये	वर्षा में विरहिणी
१२—बरसा रितु सखि सिर पर आयी	वर्षा मे विरहिणी

(घ) ब्रजभाषा, मात्रिक छन्द :

प्रथम पंक्ति	विषय
१३—मोहिं छोड़ि प्रान-प्रिय	विप्रलंभ शृङ्गार
१४—प्राननाथ मनमोहन	कृष्ण-विनय
१५—तुम बिन व्याकुल बिलपत	गोपी-विरह वर्णन

(च) संस्कृत, मात्रिक :

प्रथम पंक्ति	विषय
१६—कुञ्जं कुञ्ज सखि सत्वर	गोपी का आग्रह

(सख्या १० और १५ संवत् १६३४ मे रचित 'प्रेम-प्रलाप' से, सख्या ११-१२ संवत् १६३७ में रचित 'वर्षा-विनोद' से है। संख्या १६ सवत् १६३१ मे रची गयी थी।)

संवत् १६३१-१६३७ के कालखण्ड मे रचित, 'हरिश्चन्द्र मैगजीन', 'हरिश्चद्र-चन्द्रिका' और 'कविवचनसुधा' मे प्रकाशित ये सोलह लावनियाँ भारतेन्दु के काव्यगुणो का मुकुर हैं। वह कैसे भक्त और फक्कड, रसीले और उत्कट भावुकता-सम्पन्न सौंदर्यप्रेमी थे, इसकी छाप उनकी रचनाओ में भी स्पष्ट है। इतना ही नही, उस काल की सक्रमणशील काव्यशैलियो का भी अनुमान इन रचनाओं से हो जाता है। सस्कृत की कोमल-कान्त पदावली, ब्रज की अतिशय आलकारिकता, उर्दू की मुहावरेदानी और उक्ति-चमत्कार तथा लोक-गीतो का सहज सीधापन—सब का परिपाक इन गीतो मे है। विषयो का कोई बन्धन यहाँ नहीं है। कृष्ण-राधा हैं, कुञ्जवन है, यार की जुल्फे है, आँखो के लाल डोरे है, तो संसार की असारता भी है, और 'खँडहर पै साँप ठनकारै' जैसा भयद वर्षा वर्णन भी है। प्रायः सभी उत्कट और गाढ रसो के रग इन सरस पदो मे मिलते है। कुछ उदाहरण इस बात को स्पष्ट करेगे। निम्न पदो मे शैली की और रस-दशाओ की भी विभिन्नता लक्षणीय है।

> **वही मेरा माशूक झलक इन बुतों मे भी दिखलाता है।**
> **वही इश्क में आशिको को हर तरह फँसाता है॥**
> **कहीं मेहरबाँ बनता है और कहीं जुल्म फैलाता है।**
> **गरज कि हर जा मुझे वो यार ही नजर आता है॥**
> **'हरीचन्द' जो और देखते वो आशक भरपूर नही।**
> **सिवा यार के दूसरे का इस दुनिया में नूर नहीं॥**

इस लावनी को पढ़ कर जान पड़ेगा कि हम किसी सूफी कवि की पदावली सुन रहे हैं। अथवा कोई मध्ययुगीन सन्त दादू-कबीर की-सी सिधाई से 'घट-घट-व्यापी रमया' की बात कह रहा है। यह एक नमूना है। दूसरा अत्याधुनिक कवि की टक्कर का मिश्रित रसो का वर्षा-वर्णन देखिए :

> **खडी अकेली राह देखती बरस रहा पानी॥**
> **अँधेरी छाय रही भारी।**
> **सूझत कहूँ न पन्थ सोच करै मन मन मे नारी॥**
> **न कोई समझावनहारी।**
> **चौंकि चौंकि के उझकि झरोखा झाँकि रही प्यारी॥**

बिरह से व्याकुल अकुलानी ।
खड़ी अकेली राह देखती बरस रहा पानी ॥
सूझै पन्थ न कहीं हाथ से हाथ न दिखलाता ॥
एक रंग धरती अकास का कहा नहीं जाता ॥
किसी का बोल नहीं सुनाता ।
बूंद बजैं टपटप मारग कोई नहिं आता जाता ॥
सोये घर घर सब पट तानी ।
सन सन करके रात खनकती झींगुर झनकारैं ॥
कभी कभी दादुर रट कर जिय व्याकुल करि डारैं ॥
साँप खँडहर पर ठनकारै ।
गिरे करारे टूट टूट के नदी छलक मारै ॥
पिया बिन सब ही दुखदानी ।
ठण्डी पवन झकोरे आँचल उड़ उड फहरावै ॥
बिरहिन इतसों उत डोले कोई नहीं जो समुझावै ॥
पिय बिन को जो गर लावै ।
'हरीचन्द' बिनु बरसा में को कलक मिटावै ॥
कहाँ बिलमै, को मनमानी ।
खड़ी अकेली राह देखती, बरस रहा पानी ॥

खड़ी बोली की कविता मे रोमाण्टिक अथवा स्वच्छन्दतावादी धारा का सूत्रपात प्रसाद या पन्त से भले ही माना जाय, वस्तुतः भारतेन्दु ने ही कल्पना की स्वैर-यात्रा और सूक्ष्म संकेतों की योजना द्वारा भाव-चित्रों का निर्माण आरम्भ कर दिया था। इस भाव-गीत मे एक ओर 'चौकि चौकि के उझकि झरोखा झाँकि' में घनानन्द के ऋतु-वर्णन की छाया मिलती है, तो दूसरी ओर 'नेचर रड इन टूथ एण्ड क्लॉ' का-सा सुन्दर स्वतःसम्पूर्ण चित्र भी मिलता है—'साँप खडहर पै ठनकारै। गिरै करारे टूट-टूट के नदी छलक मारै।' इस बाह्यतः अलंकरण-शून्य गीत मे शलियों के साररूप मे मानो दो युग आकर मिल गये हैं। बीच-बीच मे उर्दू की मुहावरेबाजी से मँजी लोकभाषा का ऐसा प्राजल रूप है—'सूझे पन्थ न कही हाथ से हाथ न दिखलाता। एक रंग धरती-अकास का कहा नही जाता।' 'सन सन करके रात खनकती' मे मानवीकरण अथवा छायावाद वाला अप्रस्तुत का रूप-विधान भी है।

दूसरा वर्षा-गीत इतना कसा हुआ नहीं है। फिर भी उसमें प्रकृति-वर्णन की

छटा देखिए :

जुगनूँ चमकै च्यार दिशा में भई बड़ी सोभा।
हरी भूमि पर बीरबहूटी देखत मन लोभा॥
नये-नये विरछन के गोभा।
देख-देख के कामदेव मेरे जिय मारै चोभा
हुई जोबन-मद से माती।
पिया बिना मै व्याकुल तड़पूँ नीद नही आती॥
बरसा रितु में पीतम के सँग फिरै सभी नारी।
झूलैं बागौं जाय हिंडोरा गावै दे तारी॥
पहिन के रंग रंग की सारी॥
मै किपके सँग सोऊँ सखी री विपति बड़ी भारी॥

आधुनिक कवि कदाचित् अन्तिम पंक्ति लिखते हिचकिचाता—जिसमे जन-भावना से उसके दूर जा पड़ने का स्पष्ट संकेत मिलता है। वह क्यो नही भारतेन्दु की-सी प्राजल, प्रवाहमयी, प्रेषणीय शैली मे लिख पाता? कही कोई गाँठ उसके मनोलोक मे ऐसी पड़ गयी है की दुरूहता उसका स्वभाव-दोष बन गया है।

अन्य लावनियो मे रूप-वर्णन है और भाव-निरूपण भी। रूप-वर्णन कुछ उर्दू कविता का असर लिये हुए है, जैसे :

आँखों मे लाल डोरे शराब के बदले।
है जुल्फ छुटी रुख पै निकाब के बदले॥
नित नया जुल्म करना सवाब के बदले।
झिड़की देना हरदम जवाब के बदले॥
त्योरी में बल बालो के ताब के बदले।
खून मे रँगना कपड़े शहाब के बदले॥

संस्कृत लावनी की शैली इससे बिल्कुल उलटी है। महान कलाकार अपनी कलावस्तु के अनुरूप उस कला की अभिव्यंजना को भी अपनी अनुभूति की तीव्रता से साँचे मे ढाल लेता है।

'सखी चलो साँवला दूलह देखन जावैं' लावनी मे लोकगीतो की-सी-सरलता और वैभव के वर्णाढय विवरण की झलक है :

नीली घोड़ी चढि बना मेरा मन आया।
भोले मुख मरवट सुन्दर लगत सुहाया॥

जामा चीरा जरकसी चमक मन भाया ।
सूहा पटुका कटि कसे भला छवि छाया ॥
हाथों मेंहदी मन हाथों हाथ चुरावैं ।
मधुरी मूरत लखि अँखियाँ आज सिरावैं ॥

कई लावनियो मे सूफी ढंग की आध्यात्मिक छटा है 'वही मेरा माशूक झलक इन बुतो मे भी दिखलाता है,' इत्यादि ।

कही वैराग्य की निर्वेद-भावना है, यथा 'मतलब की दुनिया है, कोई काम नही कुछ आता है । अपने हित की मुहब्बत सब से सब बढ़ाता है ।'

संक्षेप मे भारतेन्दु की लावनियाँ अधिकाशतः शृङ्गारपरक है, पर कही अन्य रसो की भी ओर विशेषतः भक्ति, करुण और शान्त रसो की भी उद्भावना है ।

राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' से भाषा को लेकर चाहे जितनी झपट हुई हो, कवि-कर्म मे 'भारतेन्दु' ने अपनी रचनाओ की मधुरता बढाने मे कोई कोर-कसर नही छोडी । उन्होने ब्रज भाषा से, चलती लोक-भाषा से, संस्कृत से, उर्दू-फ़ारसी से, 'गरज कि' (यह उनकी लावनियो मे बार-बार आया है) किसी भी भाषा-शैली से शब्द लेने मे आनाकानी नही की, उदाहरणतया :

विदेशी : जलवा, खूबरू, खुशगलू, मखमूर, उसी सीगे मे उसको गरदानो; शीशएदिल, मह, मुअम्मा तेरा कोई हल कर जो ले, रहे गलताँ-पेचाँ; नीम-बिस्मिल का, पेचदार खम खाये; मुश्क से खुशबू मे रेशम से चमक मे ये चौकाले हैं, उक्दा, रूपोशी, जईफी इत्यादि ।

देशज : उन पहले आकर हमसे आँख लगायी, पर उन नही मानी सो तिनका सी तोडी, इक हाथ लगी मेरे जग बीच हँसायी; पलगो पै इकली, कस्यो मेरे भुजसो भुज, मै औचक रह गयी कियौ जोई मनमानी; रहे सदा हाथ पर लिये मुझे दिलजानी, भई जोगन दै गल सेली; चिकलदार चुनकारे गिंडुरी से हो कर रह जाते है, चमकाले, झबिया; अलबल बैन उचारे, इत्यादि ।

इस प्रकार 'भारतेन्दु' की इन लावनियो के शब्द और मुहावरो के चयन मे एक प्रकार की सर्वग्राहकता और उदारता मिलती है, स्वयं सामन्ती संस्कारो के कवि होने पर भी हरिश्चन्द्र की जनवादिता बहुत दूर तक पहुँचनेवाली थी । उनकी कविता मे एक सच्ची वर्गहीनता मिलती है, जो आज भी अनुकरणीय गुण है ।

नाट्यात्मक भाव-गीत

भारतेन्दु की प्रतिभा मे काव्य अधिक था, अथवा नाट्यात्मकता, यह निर्णय करना कठिन है। ब्राउनिंग ने जिस प्रकार के नाट्यात्मक भावगीतो की सृष्टि की थी, उस प्रकार के संवादात्मक गीतो मे वस्तुनिष्ठता अत्यन्त आवश्यक होती है। रीतिकालीन काव्य में यह गुण था। खडी बोली की आरम्भिक कविता मे भी यह गुण रहा। भारतेन्दु की लावनी से यह उदाहरण लीजिए :

एक दिन कुञ्जों में साथ दूसरी नारी।
अपने सुख बैठे थे मिलकर गिरधारी॥
मै गयी तो सकुचे झट यह बुद्धि विचारी।
बोले यह आयी तुमहि मिलावन प्यारी॥
तुम घर भेजन को बिनती करी रहि आनी।
पिय प्यारे की मैं कहँ लौं कहौं कहानी॥

और इसी बीच-बीच मे समुच्छ्वसित वाणी मे वैयक्तिक भावाभिव्यक्ति भी होती रही है :

वह बन-बन बिहरन कुञ्ज कुञ्ज तरु पातैं।
वह गलभुज डारन प्रीत-रीत की बातैं॥
वह चन्द चाँदनी और निराली रातैं।
एक-एक की सौ-सौ जी में खटकती बातैं।

इसी नाट्यात्मकता के कारण कुछ लावनियो मे स्वगत-भाषण की शली आ गयी है।

चाहे कुछ हो जाय उम्र भर तुझी को प्यारे चाहैंगे।
सहैंगे सब कुछ, मुहब्बत दम तक यार निबाहैंगे॥
तेरी नजर की तरह फिरैगी कभी न मेरी यार नज़र।
अब तो यो ही निभैगी यो ही जिन्दगी होगी बसर॥
लाख उठाओ कौन उठे है, अब न छुटेगा तेरा दर।
जो गुजरैगी, सहेंगे, करैगे यों ही यार गुजर॥
करोगे जो जो जुल्म न उनको दिलबर कभी उलाहैंगे।
सहैंगे सब कुछ मुहब्बत दम तक यार निबाहैगे॥

भारतेन्दु की लावनियाँ आधुनिक हिन्दी पाठक के लिए ही नहीं, आधुनिक हिन्दी कवि के लिए भी माननीय और उपयोगी हो सकती है।

३—भूमिकाएँ और आत्म-समर्पण

भारतेन्दु जी की भूमिकाएँ और समर्पण की उनकी गद्य काव्यशैली के प्रमाण है।

महान लेखको की पुस्तको के अध्ययन के समान, उनके ग्रन्थो के समर्पण और भूमिकाएँ भी कम मनोरजक नहीं होती। वे भी साहित्य के एक विद्यार्थी के लिए अध्ययन की सामग्री होती हैं। उनमे झलकने वाला लेखक का व्यक्तित्व उनकी भाषा-शैली और विषय-वस्तु से निर्णीत होता है।

भारतेन्दु संस्कृत-मूलक हिन्दी के प्रेमी थे, नाट्यप्रिय मौजी जीव थे, विनोदी थे और उत्कट प्रेमी। यह उनके कतिपय नाटको और कविता-ग्रन्थो के आरभिक पृष्ठों से व्यक्त हो जाता है। कुछ उदाहरण दे रहा हूँ।

उन्होने बनारस मे मि० बैसाख १, स० १६२५ को 'रत्नावली' की भूमिका मे लिखा था :

'हिंदी भाषा मे जो सब भाँति की पुस्तकें बनने के योग्य है, अभी बहुत कम बनी हैं, विशेष करके नाटक तो [कुंवर लक्ष्मणसिंह के शकुन्तला के सिवाय] कोई भी ऐसे नहीं बने हैं जिनको पढ के कुछ चित्त को आनन्द और इस भाषा का बल प्रकट हो। इस वास्ते मेरी ऐसी इच्छा है कि दो चार-नाटको का तर्जुमा हिन्दी मे हो जाय तो मेरा मनोरथ सिद्ध हो।'

अनुवादो का यह प्रेम भारतेन्दु-युग के प्रायः सभी लेखको मे मिलता है। आजकल जैसे वह क्षीण हो गया है। मौलिक लेखक अनुवाद कम करते है; शायद करना पसन्द नहीं करते। 'नाटक' पुस्तक का समर्पण कैसी सामासिक शैली मे है :

"हे मायाजवनिकाच्छन्न! जगन्नाटक सूत्रधार! भवरंगरग नायक! नट-नागर! जिसने इस इतने बडे संसार-नाटक को रचकर खडा किया है, जगदंतःपाती वस्तुमात्र उसी को समर्पणीय है, विशेष कर नाटक-सम्बन्धी और वह भी उसी के एक अभिमानीजन की।"

यही संस्कृतमयी शैली 'भक्त-सर्वस्व' की प्रस्तावना मे है। तीन परिच्छेदो मे अन्तिम है—"अनुप्रासो की संकीर्णता से इसमे पुनरावृत्ति बहुत है, जिसको रसिक लोग (भगवन्नामाकित जानकर) क्षमा करेंगे। मै आशा करता हूँ कि जो रसिक भगवदीय जन इसको पाठ करे, वह मेरे (इस) बाल-चापल्य को क्षमा करें और (जहाँ तक हो सके) इन पुस्तको को कु-रसिको से बचावे और

अनुग्रहपूर्वक सर्वदा मुझसे दीन को (अपना दास जान कर) स्मरण रक्खें।
—श्री हरिश्चन्द्र।"

यही शैली कविता-ग्रन्थो के केवल भक्तिमूलक रचनाओ मे नही, परन्तु अन्यत्र भी मिलती है। दूसरे कविता ग्रन्थ 'मधु-मुकुल' के 'समर्पण' मे उन्होने लिखा है :

"हृदयवल्लभ !

यह मधु-मुकुल तुम्हारे चरण-कमल मे समर्पित है, अगीकार करो। इसमे अनेक प्रकार की कलियाँ है, कोई स्फुटित कोई अस्फुटित, कोई अत्यन्त सुगन्ध-मय कोई छिपी हुई सुगन्ध लिए, किन्तु प्रेम सुवास के अतिरिक्त और किसी गन्ध का लेश नही। तुम्हारे कोमल चरणो मे ये कलियाँ कही गड न जायँ, यही सन्देह है।

फागुन कृष्ण १ स० १६३७] तुम्हारा—हरिश्चन्द्र"

इन भूमिकाओ का अध्ययन भाषा की दृष्टि से भी किया जा सकता है। कही-कही वे अग्रेजी पुस्तको, विशेषतः नाटको के अनुकरण मे हैं, तो कही बंगला पुस्तको की तत्कालीन अर्पण-पत्रिकाओ का छाया-प्रभाव उन पर दिखायी देता है। उन्होने अपनी बहुभाषा-भिज्ञता के द्वारो को मुक्त कर दिया है, और उनका रसिक मानस एक प्रकार की धाराओं से ओत प्रोत है कभी फारसी का शैर लिख देते हैं, तो कभी कोई संस्कृत श्लोक। कही उर्दू पंक्तियो का संदर्भ है तो कही केवल पत्र जैसी आत्मोपहार-शैली है। बंगला की भावुकता, उर्दू की नाटकीयता, अग्रेजी की शास्त्रीयता और तर्काश्रितता तथा सस्कृत की उपदेश-पूर्णता जैसे उनके इन समर्पण-वाक्यो मे घुल-मिलकर व्यक्त हुए है। इस प्रकार से भारतेन्दु के मार्मिक हृदयोद्गार जैसे उनके निबन्धो और अन्य टिप्पणियो मे उनकी पत्रकार कला मे मिलते है, वैसे ही सर्वत्र इन समर्पणो मे भी बिखरे हैं।

कभी-कभी, 'समर्पण' मे सूक्ष्म विच्छित्ति (विट) भी पाई जाती है, जैसे 'फूलो का गुच्छा' नामक उर्दू कविताओ के आरम्भ मे :

"मेरे प्राण-प्रिय मित्र !

क्या तुमने यह नही सुना है, "रिक्तपाणि न पश्येद्वै राजान भेषजं गुरु" अर्थात् राजा और वैद्य और गुरु को कोरे हाथ नही देखना। तो मै आज अनेक दिन पीछे तुम्हारा दर्शन करने आया हूँ, इससे यह "फूलो का गुच्छा" तुम्हारा जी बहलाने के लिए लाया हूँ, जो अगीकार करो तो परिश्रम सफल हो। यह

मत संदेह करना कि मैं राजा वा वैद्य वा गुरु इनमे कौन हूँ, क्योकि मेरे तो तुम्ही राजा और तुम्ही वैद्य और तुम्ही गुरू हो।

१४ सितम्बर १८८२ ||१९३९|| } केवल तुम्हारा हरिश्चन्द्र"

प्रहसन 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' की भूमिका का यह समर्पण क्या ही छलछलाता हुआ है :

'डेडीकेशन'

"प्यारे !

मैं तुम्हे क्या तमाशा दिखाऊँगा, हाँ धन्यवाद करूँगा, क्योकि, निस्सन्देह, तुमने ऐसा तमाशा दिखाया कि सब कुछ भूल गया। अहा ! स्त्री-पुरुष, पण्डित मूर्ख, अपना-बिगाना और छोटे-बडे सब का तमाशा देखा पर वाह ! क्या ही तमाशा है—तमाशा तो है पर देखने वाले थोडे है, न हो तुम देखो मै देखूँ, उन्ही तमाशाओ मे से यह भी एक तमाशा है, देखो :

चश्म मन् बर चश्म तू चश्मात् तू जाए दिगर।
मन तमाशाए तू बीनम् तू तमाशाए दिगर ॥

श्रावण शुक्ला ११ सोम० स० १९३० } तुम्हारा हरिश्चन्द्र"

कभी कभी इन समर्पणो के द्वारा वे समाज के दम्भ का बिस्फोट बहुत मजे से करते जाते है। वे अपने युग के इन सब ढोगो को खूब जानते थे। इसी से उन्होने उनका मधुर और कडुई दोनो प्रकार की भाषा से धिक्कार किया। और समाज-सुधार की ओर स्पष्ट इगित किया है :

'पाखण्ड विडम्बन' का समर्पण देखिए :

"मेरे प्यारे !

भला इससे पाखण्ड का विडम्बन क्या होना है ? यहाँ तो तुम्हारे सिवाय सभी पाखण्ड है, क्या हिन्दू क्या जैन ?

फाल्गुन सुदी १४ सं० १९२९] तुम्हारा हरिश्चन्द्र"

कहीं-कहीं इन भूमिकाओ का कार्य कोई एक दोहा या श्लोक अथवा उद्धरण से हो जाता है। 'दुर्ल्लभ बन्धु' 'मर्चेन्ट आफ वेनिस' का अनुवाद है। उसकी भूमिका मे केवल दो सूक्तियाँ है :

दुर्ल्लभा गुणिनो सूराः दातारश्चातिदुर्ल्लभाः।
मित्रार्थेत्यक्तसर्व्वस्वो बन्धुस्सर्व्वैस्सुदुर्ल्लभः ॥

(उर्दू लिपि मे):

खुदा मिले तों मिले आशना नहीं मिलता।
किसी का कोई नहीं दोस्त सब कहते हैं॥

यह संस्कृत और उर्दू का आरम्भिक पद्यमय विज्ञापन कुछ-कुछ आधुनिक सिनेमा के दोनो लिपियो मे लिखे हुए परिचयो का-सा जान पडता है।

स० १६२८ मे लिखे 'प्रेममालिका' कीर्तन-सग्रह का समर्पण अंग्रेजी मे है :

टू दी लव दीज फ्यू पेजेज़ आर अफैक्शनेटली डेडिकेटेड
विद दि गुड विशेज आफ हरिश्चन्द्र बनारस

'प्रेम सरोवर' का वह काव्यामत्क समर्पण देखिए :

'आज अक्षय-तृतीया है, देखो जलदान की आज कैसी महिमा है। क्या तुम मुझे फिर भी जलदान दोगे ? हाँ ! वरन्च जलांजलि दोगे; देखो मै कैसा प्यासा हूँ और प्यास मे भी चातकाभिमानी हूँ। हाँ ! जिस चातक ने एक श्याम घन की आशा पर परिपूर्ण समुद्र और नदियो तथा अनेक उत्तम मीठे-मीठे सोते, झील, कूप, कुण्ड, बावली और झरनो को तुच्छ करके छोड दिया, उसे पानी बरसना तो दूर रहे, जो मधुर गन की ध्वनि भी न सुन पडे तो कैसे प्राण बचे ?'

और 'प्रेमाश्रु-वर्णन का 'समर्पण' और भी गद्यात्मक है :

"कि तव,

यह प्रेमाश्रु की वर्षा है। इससे नहा के तब मुझे छूओ। क्योकि बहुत धूर्तता करने से तुम अशुद्ध हो गए हो। क्या करूँ, बहुत कुछ कहने को जी चाहता है, और लेखनी कहनी-अनकहनी सभी कहना चाहती है, पर क्या करें, अदब का स्थान है, इससे चुप है और चुप रहेगी।

.........यह बखेडा जाने दो, आज क्यों नही मिले ?

.........लो इस वर्षा से जी बहलाओ।

पर प्यारे, तुम भी कभी बरसो।

सावन हरिआरी अमावस }
गुरु पुष्य सं० १६३० } तुम्हारा चातक
हरिश्चन्द्र"

यही नाटकीयता 'जैनकुतूहल' के तीन वाक्य वाले समर्पण मे जहा वे अन्त मे कहते है : 'तुम्हे मेरी सौगन्द, वाह वाह अवश्य कहना।'

वैसे उन्होने कई ग्रन्थो की भूमिकाएँ ही नहीं लिखी जैसे 'प्रेम-माधुरी', 'प्रेम-तरंग', उत्तरार्द्ध', 'भक्तमाल', 'सतसई-सिंगार', 'गीत-गोविन्दानन्द'

'प्रेम-प्रलाप', 'रत्न सग्रह', 'वर्षा-विनोद', 'विनय प्रेम-पचासा' आदि। 'होली' का समर्पण भी दो ही वाक्य का है। मौजी जीव थे—इस कारण यह आवश्यक नही था कि वे सदा भूमिकाएँ लिखते ही—परन्तु इन भूमिकाओ और समर्पणो का अध्ययन स्वयमेव एक विचारोत्तेजक वस्तु है।

उनकी भूमिकाओ का उद्देश्य भी प्रकट रूप मे आत्म-निवेदन पत्र अथवा एक प्रकार से 'स्वांतः सुखाय' दिखायी देता है, फिर भी उपरोक्त रूप से उसमे समाज की विषमताओ पर व्यंग और 'बहुजनहिताय' की दृष्टि स्पष्टतः दिखायी देती है। उनका सारा लेखन इसी कारण से प्राचीन को नवीन से जोडने वाली एक श्रृंखला की भाँति जान पडता है, जिसमे भक्ति की निशा और शक्ति की उषा का संधिकाल सांकेतिक रूप से प्रस्फुटित है।

: १० :

मैथिलीशरण गुप्त*********

(षष्ठ्यब्द पूर्ति के समय)

मैथिलीशरणजी युग-प्रवर्त्तक कवि हैं। युग-प्रवर्त्तक कवि की व्याख्या मे यह कहा जा सकता है कि वह युग की आत्मा को व्यक्त करता है। वह युगीन परिस्थितियों की उपज होकर भी युग के प्रश्नों को वाणी का आकार देता है। युग को वह आगे ठेलता है। गुप्तजी की राष्ट्रीयता इसका प्रकट प्रमाण है। गुप्तजी की राष्ट्रीयता का विकास यदि हम देखे तो उनकी भारत-माता सम्बन्धी कविताओं का एक साथ अध्ययन करना काफी रोचक होगा। चूंकि इस लेख मे उन सब कविताओं को उद्धृत करना सम्भव नही, मै केवल उनकी ओर संकेत कर सन्तोष मान लेता हूँ। 'भारत सन्तान' या 'जय-जय भारत माता'— यह उनकी अपेक्षाकृत नई कविताएँ 'मंगल-घट' की 'मातृभूमि', 'मेरा देश' 'मातृ-भूमि' 'विशाल भारत' 'भारत वर्ष' 'मातृ-मदिर' आदि रचनाओं से तौलनीय है। कवि यदि सच्चे अर्थ मे द्रष्टा है तो उसकी वाणी मे ऐसा कुछ दिक्कालातीत तत्व निहित रहता है कि एक ओर अतीत की गाथा और दूसरी ओर भविष्यवाणी का मनोहर सगम उसमे मिलता है। मै प्रमाण-रूप मे 'अकाल' के सम्बन्ध मे 'भारत भारती' के पृष्ठ ८७ से ८६ प्रस्तुत करता हूँ। आप कही गलती से यह न समझ लीजिये कि सन् १९४३ के बग-देशीय दुर्भिक्ष को लक्षित कर कवि ने यह लिखा है। बल्कि पूरे ३० वर्ष पूर्व की यह कविता है। कविवर का यह ग्रन्थ सर्वाधिक लोकप्रिय हुआ। फलतः बावजूद उसमे की 'इतिवृत्तात्मकता' के और गद्य जैसे रूखे अशो के, इस ग्रन्थ के सप्तदश संस्करण

निकले। आधुनिक हिन्दी कविता मे शायद ही किसी अन्य काव्य-ग्रन्थ को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ हो।

अतः मुझे फिर से कहने दीजिए कि गुप्तजी आधुनिक हिंदी कविता के युग-उद्गाता ही नही, बल्कि युग-निर्माता है। बगला मे रवि बाबू के पहले माइकेल मधुसूदनदत्त से भी अधिक नवीनचन्द्र सेन ने जिस भावना का उद्बोधन किया। उसी प्रकार का कविता के अन्तरूप और बहिरूप का आमूल परिवर्तन गुप्तजी ने आधुनिक हिन्दी कविता के विकास के प्रथम-चरण मे उपस्थित किया। संक्षेप मे :

गुप्त-पूर्व हिन्दी-कविता

१. रीति-कालीन अवशेष।

विषय

२. धार्मिक अथवा प्रकृति-वर्णनात्मक।

३. राष्ट्रीय कविताएँ आत्म-निरीक्षण की अपेक्षा बाह्य कारणो पर दोषा-रोपण अधिक करने की प्रवृत्ति।

४. छायावादी कविता और शैशव।

५. द्विवेदी-प्रणीत इतिवृत्तात्मकता।

विन्यास :

१. ब्रजभाषा: कवित्त-सवैये मे स्फुट मुक्तक।

२. खडी-बोली, वर्ण-वृत्तो मे रचना।

३. ठेठ हिंदी के ठाठ में चोखे-चुभते चौपदे।

४. सत्यनारायण, श्रीधर पाठक, रत्नाकरजी की अलकृत लंबी वर्णन-शैली।

५. अग्रेजी की छाया मे प्रगीत मुक्तक।

गुप्तोत्तर हिन्दी-कविता

विषय :

१. नवीन विषय, अधिक रागात्मक।

२. धर्म और राष्ट्रीयता का सामञ्जस्य।

३. राष्ट्रीय दुर्दशा मे आत्म-निरीक्षण की ओर प्रवृत्ति।

४. छायावाद मे रहस्यवाद की पुट (झंकार)।

५. प्रबन्ध तथा खण्डकाव्यो का खडी बोली में प्रणयन।

विन्यास :

१. बोलियों की अपेक्षा एक भाषा का विकास।

२ वर्णिक वृत्तो की अपेक्षा मात्रिक वृत्तो का आकर्षक लचीलापन।

३. देशज शब्दो की ओर अधिक झुकाव।

४. सरल, सहज, हृदयस्पर्शी कथन।

५. प्रगीत मुक्तको पर बगला का प्रभाव, रवीन्द्रनाथ आदि का विशेष।

ऊपर मैंने केवल रेखाओ मे, गुप्तजी द्वारा की गई युग-प्रवर्त्तक काव्य-क्राति की झलक देने का प्रयत्न किया है।

जहाँ गुप्तजी हिन्दी-काव्य को एक आकार दे रहे थे, उनकी स्वयं की कविता भी आकार ग्रहण करती जा रही थी। स्थूल रूप से गुप्तजी की रचनाओ के साकेत-पूर्व तथा साकेतोत्तर ऐसे दो विभाग स्पष्ट दर्शित है। साकेत-पूर्व की रचनाओ मे कवि मे एक पौराणिक विषयो (यथा : जयद्रथ वध, पंचवटी, वनवैभव: बकसहार, सैरन्ध्री) का गहरा आकर्षण है, वैसे ही अतीत इतिहास के उज्ज्वल अगो की ओर भी बडी आसक्ति है। (यथा गुरुकुल, रग मे भग, पलासी का युद्ध, विकट भट, अनघ आदि), एक तीसरी धारा उन्हे इतिहास से वर्तमान पर खीच लाती है। और भारत-भारती, किसान (फिजी आदि उसमे के अत्यन्त कारुणिक अंश), स्वदेश-संगीत, हिन्दू आदि इसी तीसरी विचार-धारा के प्रमाण है। इसी बीच मे कवि रुबाइयात उमर खयाम का अनुवाद भी प्रस्तुत करता है। मूल के धार्मिक सस्कार रहस्योन्मुख हो उठते हैं। फलतः झकार। विशुद्ध कविता की भी सुन्दर छटा साकेत के उर्मिला के विरह-प्रकरण मे और यशोधरा के कई गीतो मे प्रस्फुटित हो उठती है। यशोधरा तक कवि की प्रतिभा मध्यान्ह-काल तक पहुँचती है।

विपुलच्छाय न्यग्रोध की भांति, स्थविरता का सायान्ह शुरू होता है। 'द्वापर' में इसके चिह्न स्पष्ट है। कवि अब सोद्देश्य सतर्क कलाकार (काशस आर्टिस्ट) बन गया है। कस के चित्रण मे, कुब्जा के चित्रण मे सर्वत्र कवि की अन्तर्मनसा पर व्याप्त गाधीवाद के अहिसा आदि मूल्य स्पष्ट है, जिनका विशदीकरण काबा और कर्बला तक और भी होता जाता है। परिणामतः 'कुणाल' एक भव्य और उत्तम विषय होने पर भी प्रासो की यांत्रिक हठाकृष्टता (जो कि अब आदत के कारण स्वाभाविक हो गई है) और सूत्रमयता से निस्सीम प्रेम के कारण प्रगीत खण्ड-काव्य के नाते उतना सफल नही उतरता। द्वापर की 'विधृता' तक कवि मे कुछ प्रगीत-मुक्तक के लिए आवश्यक भावात्मक उडान शेष थी। बाद मे जैसे कवि, कवि से अधिक भाष्यकार हो उठा। उसमे का चिंतक प्रधान हो गया, कवि गौण। विकल विश्व—जो कि कवि की गत महायुद्ध मे प्रारम्भ

की हुई, परन्तु इस महायुद्ध मे समाप्त की हुई रचना है, इसका अच्छा प्रमाण है। परन्तु चूंकि कवि की सभी कृतियाँ एक ही कोटि की कभी नहीं होतीं और हो भी नही सकती, अतः हम मे का आलोचक इतना प्रखर न हो उठे कि कुशल व्रण-सशोधक की भाति केवल गुप्तजी के शब्द प्रयोगो पर वह झुंझला उठे और मक्खी-लक्खी, नक्र-चक्र वाले प्रासो का ही चर्चा करे। कुछ आलोचक शब्दो से आगे बढ ही नही पाते, यह उनकी बहुत बडी कमजोरी है। इस लिए गुप्तजी की रचनाओ के उन अशो की चर्चा नही करनी चाहिए, जो इस प्रकार काव्य के गुणो से असम्पन्न हो, अपितु उनकी उन्ही रचनाओ की ओर हमारा लक्ष्य हो जिन्होने हिन्दी के नये कवियो मे स्फूर्ति प्रदान की है। इस दृष्टि से सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि गुप्तजी की प्रतिभा आधुनिक की अपेक्षा प्राचीन विषयो मे, वैसे ही वर्णनो की अपेक्षा सूक्तियो मे, अतुकात की अपेक्षा तुकान्त मे, प्रगीत मुक्तक की अपेक्षा प्रबन्ध-काव्य मे अधिक सफल है।

इस स्थल पर मुझे 'हिन्दी साहित्य की रूपरेखा' नामक एक बहु-पदवी-विभूषित विद्वान् लेखक की पुस्तक मे पृष्ठ १६७ पर जो गुप्तजी के 'साकेत' के सम्बन्ध मे एक वाक्य है, उसका खण्डन आवश्यक जान पडता है। वे कहते हैं—'आपने हाल मे साकेत, यशोधरा और द्वापर नामक काव्य भी प्रकाशित किये है, जिनमे पहला महाकाव्य है और कतिपय स्थल नीरस होने पर भी कवि की रसार्द्र प्रतिभा का परिचय देता है', आगे आप फरमाते है, 'आपकी रची छायावाद सम्बन्धी कविताओ का स्वय उस परिपाटी के कवियो मे यथेष्ट आदर है, जो आपकी व्यापक प्रतिभा और प्रत्युत्पन्नमतित्व का परिचय देते हुए आपको वर्तमान युग का प्रतिनिधि कवि सिद्ध करता है।' साहित्य के इन इतिहासकार महोदय की 'रस' की व्याख्या अनूठी है, अन्यथा साकेत के कौन से अश आपको नीरस लगे, पता नही ? उसी प्रकार गुप्तजी जी की छायावादी रचनाएँ कौन-सी है, तथा प्रत्युत्पन्नमतित्व का युग के प्रतिनिधि कवि होने मे क्या संयोग है—यह सब विचारणीय बाते है। रस के मर्मज्ञ आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल की 'साकेत' के उन स्थलो के सम्बन्ध मे, जो साधारणतः नीरस माने जाते है, अभिमत यो है—"दण्डकारण्य से लेकर लका तक की घटनाये शत्रुघ्न के मुंह से मॉडवी और भरत के सामने पूरी रसात्मकता के साथ वर्णन कराई गई है।" गुप्तजी को छायावादी, तो सिवा रूप-रेखाकार के शायद ही किसी ने कहा हो। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तो इसके विपरीत, स्पष्ट रूप से कहते हैं कि : "पर

असीम के प्रति उत्कण्ठा और लम्बी-चौडी वेदना का विचित्र प्रदर्शन गुप्तजी की अन्तःप्रेरित प्रवृत्ति के अन्तर्गत नही।"

गुप्तजी की कविता मे उनके युग के आदोलनो का, वैचारिक प्रभाव का स्पष्ट प्रतिबिम्ब है, यह तो आने वाली पीढ़ियो के आलोचको का कार्य होगा कि वे गाधीजी की चौदह मुद्दो वाले 'रचनात्मक कार्यक्रम' की सिद्धान्त-भित्ति और गुप्तजी के काव्यो मे यत्र-तत्र बिखरी सूक्तियो तथा विचार-सूत्रो मे उनका ज्ञापन निरूपित करे। इस छोटे से लेख मे यह कार्य सम्भव भी नही। तथापि कुछ स्थूल उल्लेखो के तौर पर अहिसा का समर्थन सिद्धराज से विकल-विश्व तक के ग्रन्थो मे मिलेगा। हिंदू-मुस्लिम ऐक्य का सदेश वैसे भारत-भारती मे नही था, परन्तु हिन्दू में वह मिलता है, गुरुकुल मे ११६ पृष्ठ पर सैयद बुद्धूशाह का जो प्रसंग है, और आगे चलकर काबा और कर्बला मे जो सहानुभूति चित्रण मिलते है—उनसे इस सम्बन्ध मे गुप्त जी ने मुशी अजमेरीजी को व्यक्तिगत सौहार्द और भ्रातृत्व देकर जो किया उसी का व्यापक स्पष्टीकरण हो जाता है। अछूतो के प्रति होने वाले अत्याचारो का उल्लेख हिन्दू मे है, उनके अनुज के 'अछूत' मे तो इसका बहुत ही हृदय-स्पर्शी चित्र है। स्त्रियो की स्वतन्त्रता के सम्बन्ध मे वीर क्षत्राणियो के जहाँ-जहाँ वर्णन आये है, गुप्तजी ने उस बात का समर्थन किया है। यशोधरा के मुख-पृष्ठ पर कवि की वे दो विश्रुत पक्तिया साक्षी हैं। हस्तोद्योग तथा ग्राम-शिल्प के विषय मे ता भारत-भारता के समय स ही उनके विचार विशुद्ध स्वदेशी के पोषक थे। परन्तु इन सब बातो के साथ-ही साथ युग के अधिक पेचीदे आर्थिक प्रश्नो, वर्ग-सघर्ष और समाजवाद आदि के विचार-प्रवाहो से भी गुप्तजी अस्पृष्ट नही रह सके है। 'साकेत' मे शत्रुघ्न कैसे आधुनिक राजनीतिज्ञ की भॉति कहते है:

> **राज्य को यदि हम बना लें भोग,**
> **तो बनेगा वह प्रजा का रोग।**
> **फिर कहूँ मै क्यो न उठकर ओह!**
> **आज मेरा धर्म.........राजद्रोह।**

सामाजिक दृष्टिकोण मे भी गुप्तजी प्रगति के पोषक है। देखिए, द्वापर का बलराम क्या कहता है:

> **जीर्ण वस्तुओं की ममता से घर ही घूड़ा होगा।**
> **अहा! आज का कुसुम-भार भी कल का कूड़ा होगा!**

यदि मानस-गोमुखी हमारी निरवधि नही झड़ेगी,
तो गर्त्तों में ही जीवन की धारा पडी सड़ेगी।
एक समय जो ग्राह्य, दूसरे समय त्याज्य होता है,
ऊष्मा मे हिम के कम्बल का भार कौन ढोता है?
सजल रूपिणी पुरवैया-सी खिडकी से आती है।
और सील-सी लोकालय मे रूढि बैठ जाती है।
भिन्नाहार-विहार उचित ही समय समय के सारे,
समय समय की बुद्धि भिन्न है, भिन्न विचार हमारे।
समयाचार विभिन्न, भिन्न हैं युग-धर्मो की धृतियां,
आकृति-प्रकृति विभिन्न समय की भिन्न क्यों न हो कृतियां।
अपने युग को हीन समझना आत्म-हीनता होगी।
सजग रहो, इससे दुर्बलता और दीनता होगी।
किस युग में हम हुए वही तो अपने लिए बडा है;
अहा! हमारे आगे कितना कर्म-क्षेत्र पडा है।

यह आशावाद का सदेश, यह नूतन के प्रति समुचित औदार्य, प्रगति का स्वागत और बात कहने की स्पष्टता अन्य साहित्यिको के सीखने योग्य है।

बलराम यज्ञ-यागादि की व्यर्थता के सम्बन्ध मे कहते है:

पुरखे यज्ञयाग करते थे, त्याग भाव था जिनमे,
किन्तु आज के यज्ञ देखलो, शेष रहा क्या इनमे?
दारुण हिंसा और दम्भ ही दिखलाई पडते है,
तृष्णा बुझती नहीं, रुधिर के झरने से झडते है।

ऐसे कई उद्धरण हैं। वे यदि दिये जायँ तो यह लेख एक ग्रन्थ बन जाय।

मैने गुप्तजी की काव्यशैली और शब्द-प्रणयन में स्पष्टता, श्रोता तथा वक्ता के बीच एकात्मबोध, तथा सहजता का उल्लेख किया है। इसकी प्रशसा गुप्तजी के सभी आलोचको ने की है। प्रो० गौरीशकर 'सत्येन्द्र' एम० ए० अपनी 'गुप्तजी की कला' मे पृष्ठ ४५ पर गुप्तजी के देशज, ग्रामीण बोलियो से लिये गये निम्न कई शब्दो की ओर पाठको का ध्यान आकर्षित करते हैं: जताना, लेखना, जता देना, बखाना, धरती, झीमना, बिखेर, बटोर, बिसारेंगे, लहकाना, खुरभी, निराती, ठौर, तिधर, तनिके, सूरत, बरताव आदि। इस ओर कवियो का झुकाव होना आज की एक सबसे बड़ी आवश्यकता है, जबकि आधुनिक कविता की भाषा जनता की भाषा से इतनी दूर कटी हुई-सी, सस्कृत-बहुला हो

गई है। चाहे शब्द बोलियों से ही क्यों न लिये जॉय, कविता और जनता के बीच का यह अन्तर मेटना ही होगा। अन्त मे इस समीक्षात्मक श्रद्धाञ्जलि को मै कबीर और गुप्तजी के 'सबद के अंग' और 'शब्द के प्रति' के उद्धरण देकर गुप्तजी दीर्घायु हो, और महाभारत का जो पद्यबद्ध अनुवाद कर विशाल प्रबन्ध-काव्य वे लिख रहे हैं, वह हिन्दी-कविता को प्राप्त हो, इस विनती के साथ समाप्त करता हूँ। कबीर का सबद के प्रति विचार :

सबद हमारा हम सबद के, सबद ब्रह्म का कूप।
जो चाहै दीदार को, परख सबद का रूप॥
सबद बिना स्रुति आँधरी, कहो कहाँ जाय।
द्वार न पावे सबद का, फिर फिर भटका खाय॥
सबद बराबर धन नहीं, जो कोई जानै मोल।
हीरा तो दामो मिलै, सबद ही मोल न तोल॥

और गुप्त ने १९२८ मे लिखा था :

सागर भरा तुम्हारे घट मे, विश्रुत तुम बहु वृत्त विधान;
भरे रहे भण्डार तुम्हारे, अहो शब्द! ओ अर्थ निधान!
जीते रहो, जगत है जबतक, तुम ध्वनि के जीवन-धन प्राण!
लो अनुभूति-विभूति विश्व की, तुम्हीं करोगे उसका त्राण:
तुम सजीव संकेत हमारे, आत्मसिद्धि के स्वतः प्रमाण;
तुम्ही प्रकाशक सत्य-तत्त्व के, तुम्हीं कल्पना के कल्याण!

: ११ :

'एक भारतीय आत्मा' *******

"मत बोलो बेरस की बातें, रस उसका जिसकी तरुणाई।
रस उसका जिसने सिर सौंपा, आगी लगा, भभत रमाई॥"

'प्रतिभा' शब्द हिन्दी की जिस कवित्वमयी विभूति को विशेषित कर स्वय गौरवान्वित हो, वह है पडित माखनलाल चतुर्वेदी! उनकी प्रतिभा के अनेक रूप है। वे प्रकृति के कोमल पक्ष के 'झरने' जैसे गायक है—रेवा के तट ने और बैतूल के वनों ने उन्हें प्रेरणा दी है, वे तरुणाई की शिरा-शिराओं मे रक्त-संचार करने वाले बलिपंथी राष्ट्रीय जागरण के कवि हैं। तिलक को जेल हुई और इस कर्मवीर ने एक लम्बी कविता लिखी, कृष्णमंदिर मे लिखी 'कैदी और कोकिला' तो सुविश्रुत ही है, १५ अगस्त '४७ पर लखनऊ से रेडियो पर प्रसारित कविता मे लाल किले को उन्होंने विश्व को स्मरण दिलाने उठी हुई उँगली की उपमा दी और 'सगम' में २६ जनवरी पर लिखी ओजस्विनी रचना वह सब बार-बार गूञ्जकर 'मोमबत्तियो के मरण-त्यौहार' की याद दिलाने वाली वे पँक्तियाँ हैं कि—

बलि के कम्पन में जो आती भटकी हुई मिठास,
यौवन के बाजीगर, करता हूँ उस पर विश्वास।

सम्वत् १६४५ मे जन्म लेकर भी अभी भी तरुणों के साथ कन्धे-से-कन्धा मिलाकर चलने वाला यह कवि अपनी वाणी की प्रखरता में एक प्रणय का उन्माद-सा लिये हुए है। सुभद्रा की 'झाँसी की रानी' और 'नवीन' का प्रलय-गीत तो उसी ध्वनि की बाद की प्रतिध्वनियाँ हैं, दिनकर की 'हुकार' भी उसी परम्परा की प्रतिगूञ्ज है। बलिदान के इस अमर-गायक की कविता का एक और

पक्ष है, जो उसकी प्रेम-भावना को रहस्यमयता की गोद मे छिपा देता है, जहाँ पतन भी उत्थान है, और रूप का आकर्षण भी 'आराध्य' की लीला-रति : 'किन बिगड़ी घड़ियो मे झाँका तुझे झाँकना पाप हुआ ?' या 'रमा कहूँ या राम कहूँ ?' वाली षट्पदियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। 'वन मे ? ना सखि, वनमाली मे !' गीत भी बहुत लोकप्रिय है।

यो माखनलाल जी के बहुमुखी व्यक्तित्व का एक प्रमुख रूप, जो कवि 'एक भारतीय आत्मा' है, उसमे तीन धाराएँ एक साथ सगमवती है, प्रकृति, देश-प्रेम और प्रणय के कण-कण मे उन्होने बलि-पंथी की आराध्य के प्रति निरन्तर जलते रहने वाली 'शाश्वत टोह' की प्रकाश-रेखा देखी है। इसी कारण से उनकी कविता मे कबीर जैसा भाषा का अनसवरा अटपटापन है, पर मिठास है, दुरुह साकेतिकता है, परन्तु त्रिगुणात्मक श्लेष भी है।

रखे लज्जा क्यों संत कपास
बेधकर तार-तार जो न हो
अरे हो जाय रुधिर बेस्वाद
लाडला मरण-ज्वार जो न हो !

उनके गद्य लेखन पर स्वामी रामतीर्थ का और उनके गुरु माधव राव सप्रे की मारफत कई मराठी लेखको के प्रभाव स्पष्ट हैं। उनके गद्य मे जहाँ वक्तृत्व की सी ताजगी और दृष्टान्तो की भरमार होती है, वहाँ वक्रोक्ति विनोबा वाली सूत्र-मयता और श्लिष्ठ पदावली का अनूठा शब्द-शिल्प मिलता है। 'साहित्य-देवता' के गद्य काव्यात्मक भाव-निबध, 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक और अभी तक सग्रहाकार न छपी, उनकी बहुत अपने ही ढंग की कहानियाँ (जैसे 'कर्मवीर' में छपी 'रंगरेज के लड़के की कहानी,' या 'विशाल भारत' कहानी अक मे छपी 'जेल की बिल्ली की कहानी' आदि)—उस 'स्टाइलाइज्ड' गद्य के नमूने है।

कवि पर 'एक भारतीय आत्मा' और 'साहित्य-देवता' के गद्यकार के अलावा इस प्रतिभा का एक रूप है 'कर्मवीर' ! 'प्रताप' के बाद वे इस पत्र का अपने ढंग से संपादन कर रहे हैं, और कभी-कभी उनके संपादकीय इतनी निर्मम, तीक्ष्ण, असिधार-सी प्रखरता लिये होते हैं कि उनके लिए राजनीति उनके जीवन के श्वासों का ताना-बाना बन जाती है। अपनी कविता मे वे पूछते है :

सखे, बता दे, कैसे गा दूँ, अमृत मौत का दाम न हो,
जगे एशिया, हिले विश्व औ' राजनीति का नाम न हो ?

इस पत्रकार रूप से भी अधिक निखरा हुआ उनका रूप है वक्ता का।

जिसने माखनलाल जी का वक्तृत्व एक बार भी सुना हो, वह उससे प्रभावित, मत्र-मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता। ऐसी सूझ का धनी, भाषा का 'सहज दुलीचा बाधकर ज्ञान के हाथी पर चढने वाला' मार्मिक, असखलित, धारावाही वक्ता हिन्दी के इतने प्रोफेसरो, डाक्टरो, बाजीगरो मे एक भी मुश्किल से मिलेगा। उनका एक अपना अन्दाज है, एक अपना लहजा है, वे श्रोताओ को अपनी उपमाओ और उत्प्रेक्षाओ की धार में लपेट लेते है। इतनी सुन्दर भाषण-कला हिंदी मे एक ही व्यक्ति की है—वह उनकी अपनी शैली है।

इस बहुमुखी साहित्यकार का जीवन बहुत सरल, त्याग और तपस्या का जीवन रहा है। बैतूल मे जन्म, जीवन के आठवे-दसवे वर्ष पेडो पर चाकू से काटकर तुकबन्दी रचने वाला यह साधारण अध्यापक अपने लम्बे विधुर-जीवन मे अनेक बार जेल का बन्दी बना। गणेशशकर विद्यार्थी की प्रेरणा से पत्रकार बना। और मध्य प्रदेश के अनेक अविकसित और अर्धविकसित मोतियो यही मालाकार और जौहरी बना। साहित्य के क्षेत्र का अनाभिशक्ति मम्राट् सवत् २००० मे हरिद्वार हिंदी साहित्य सम्मेलन का सभापति बना, और 'सोने-चादी के टुकडो पर उसका मसोदा ?' लिखने वाले रचनाकार की रजततुला बनी। जीवन मे लिखा बहुत। छपाया करीब नहीं के बराबर, ये 'हिमकिरीटिनी,' 'हिमतरगिणी' बहुत देर से छपे सग्रह हैं—सो भी प्रतिनिधिक नहीं। यह कला का एकात साधक नाम के पीछे कभी नहीं रहा। रूढ़िद्वार से निरन्तर पीड़ित यह तरुणो को सदा प्रोत्साहन ही देता रहा, कभी इसने मसि और असि को एक मानने वाले रस की सरिता को सूखने न दिया।

यहाँ व्यक्तिगत संस्मरणो पर उतरता हूँ, गो सब इस छोटे से चित्र मे लिख सकना सम्भव नहीं। इन पंक्तियो के लेखक ने हिंदी मे सन् १९३१ से लिखना शुरू किया, मुझे जो पथ प्रदर्शक, साहित्य मे प्रेरणादाता गुरुतुल्य लेखक मिले, उनमे कविता मे माखनलालजी प्रथम है, गद्य मे स्व प्रेमचन्द्र जी। सन् १९३२ में इदौर मे अ. भा. पत्रकार सम्मेलन का अधिवेशन हुआ, शायद प्रो. इंद्र सभापति थे। तब मैने एक कविता 'समाप्ति' कविसम्मेलन मे पढ़ी, जिस पर मुझे प्रथम कविता का रजत-पदक मिला। पं. गिरधर शर्मा कविरत्न ने वह पदक मुझे दिया। माखनलाल जी निर्णायको में से थे। कविता पंत जी के 'परिवर्तन' से मिलती जुलती थी—यह बाद मे मैंने जाना। तब से विद्यार्थी-काल मे इटरमीडिएट की अवस्था से माखनलाल जी से मेरा बहुत सपर्क—सहवास बढा। मैं और मेरे तब के साहित्यिक मित्र श्री वीरेन्द्रकुमार जैन ने

प्रो. शांतिप्रसाद वर्मा के सहयोग से अभिनव साहित्य परिषद् स्थापित की। हरिकृष्ण 'प्रेमी' की अध्यक्षता मे मैंने 'आकाश गगा' नामक लम्बी कविता पढी, जिस पर माखनलाल जी ने अपने भाषण मे बहुत प्रोत्साहित करने वाले शब्द कहे। मेरी पहली कविता 'अप्सरा द्वीप' उसी काल मे 'कर्मवीर' मे छपी। फिर तो मै निरन्तर 'कर्मवीर' मे विंध्यकुमार नाम से और अपने नाम से भी गद्य-काव्य, छुटफुट कहानियाँ, लेखादि लिखता रहा, 'प्रेमी', रामवृक्ष बेनीपुरी और प्रभागचन्द्र शर्मा तीनो के सह सपादन काल मे। अब तक मैंने उनके पत्र 'कर्मवीर' मे कम-से-कम १०० कविताएँ, ५० गद्यकाव्य और लघुतम कथाएँ तथा २५ लेख-समीक्षाएँ तो सहज ही लिखी होगी। सन् ३४ मे बम्बई की अखिल भारतीय कांग्रेस मे, जिसमे राजेन्द्र बाबू सभापति थे, सभापति के अग्रेजी भाषण का हिंदी अनुवाद माखनलाल जी, रामवृक्ष बेनीपुरी जी और मैंने रातो रात जागकर किया था। बेनीपुरी जी ने अपने एक लेख मे 'पारिजात' मे इसका हवाला दिया है। सन् ३६ मे प्रयाग मे हिंदुस्तानी एकेडेमी के जलसे मे मै उनके साथ आया। और बाद मे मै जहाँ-जहाँ भी रहा, चाहे इदौर हो या आगरा, उज्जैन हो या रतलाम, अहमदाबाद या वर्धा, वे नित्य मेरे विषय मे पूछते रहते, पत्र लिखते रहते। सन् ३९ के बाद से जब-जब मै सेवाग्राम मे जाता आता तो राह में एक ट्रेन से रुककर खडवा अवश्य उतरता उनसे मिलना एक साहित्यिक तीर्थ-यात्रा का पुण्य-पाना है। उन्हे उनके शिष्यजन 'दादा' कहते है, और वे अपने मधुर स्वभाव, आतिथ्य और ममता से किसी को भी अभिभूत कर देते है। स्थानाभाव से मेरे पास सग्रहीत उनके दर्जनो पत्रो मे से मैं एक भी नही दे पा रहा हूँ।

एक सस्मरण मेरे लिए चिर-स्मरणीय है। सन् ३४ में बम्बई कॉग्रेस के मध्य प्रदेश शिविर मे माखनलाल जी ठहरे थे। वहीं मैं भी विद्यार्थी-दर्शक के नाते गया था। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रो. महेश मिश्र जानते है। प्रेमचंद जी तब अजता सिनेटोन मे नही थे। वे माखनलाल जी से मिलते आये। खूब ठहाके रहे। प्रेमचंद के चेहरे की झुर्री-झुर्री सिन्दूरी हो गयी। माखनलाल जी मे वार्तालाप-कुशलता और 'विट' अत्यधिक है। उन्हे हँसते रहे, हँसाते रहे। बात कहानी और निबध की चली थी। अब मुझे धुंधली-सी स्मृति है। एक जूते को पालिस करने वाला छोकडा वहाँ शिविर के अस्थायी आवास में घुस आया। माखनलाल जी ने मराठी मे उस लडके से मजाक किया। जूता काला करने के बजाय, तू अपना ही मुँह काला कर (अर्थात् जब)

प्रेमचद अर्थ सुनकर बहुत हँसे। उन्होने कहा—यह जूते ही हैं, यह छडी है, यह शू-ब्लैक है—यह सब हमारे लेखको के विषय होने चाहिये। माखनलाल जी ने कहा था—टाल्स्टाय की तरह।

मैने उनके साथ अनेकानेक साहित्य-गोष्ठियो मे भाग लिया है। घन्टो उनके मुह से कविताएँ सुनी और 'साहित्यदेवता' लिखते समय पहली प्रतियॉ सुनी है। मै अधिक क्या लिखू ? हिंदी के जीवनीकारो और समालोचको का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ कि सिवा रामवृक्ष बेनीपुरी के 'विशाल भारत' में एक निबन्ध के, उनपर कोई उल्लेखनीय समीक्षा हिंदी में नहीं। शान्तिप्रिय द्विवेदी ने 'हमारे साहित्य निर्माता' मे कुछ लिखा है और कुछ दिनकर ने 'मिट्टी की ओर' मे 'बलिशाला हो मधुशाला' मे। बासठ वर्ष के इस साहित्यमनीषी का समादर हम हिंदी के नाम पर अक्रोश करने वाले क्या इसी भाति करेंगे ?

परन्तु, 'एक भारतीय आत्मा' के जीवन मे कही एक ऐसी करुणा की अन्तर्धारा है कि वे पारिताप्त से पावन आस्करवाइल्ड के 'दी प्राफडिस' की भॉति मानो कहते है—"प्लेजर फॉर दी ब्यूटिफुल बॉडी ! पेन फॉर दी ब्यूटीफुल सोल !!' और इसी परस्पर विरोधो के समवाय के आग्रह मे यह योद्धा-प्रणयी आराधक छॉदोग्योपनिषद् के उस आदर्श को जीवन का प्रकाशस्तभ मानता है कि :

एवमेवैष संप्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं
ज्योतिरूपसंसद्यस्वेनार्चना रूपेणाभिनिष्पद्यन्ते स उत्तम पुरुष:

'एक भारतीय आत्मा' चिर-युवा है ! उनके कुछ पत्रो के अश साथ में उनकी शैली के नमूने के तौर पर दे रहा हूँ।

६ रंग महल, इन्दौर,
सी. आई.
१६-६-३३

श्री मान्यवर !

कृपा पत्र मिला, धन्यवाद ! कुशल भी आपकी मिल गई।

मोटर दुर्घटना से कमर में चोट आने के कारण यहॉ इलाज के लिये आया हूँ। अभी कुछ दिन रहूँगा।

परीक्षा की सफलता के विषय में कुछ मालूम नही हुआ। लिखिये। आप जैसे तरुण के हृदय मे निराशावाद को तो जगह मिलनी ही न चाहिये।

आप के कोमल भावो से भरे पत्र के लिये, साधुवाद।

आपका—
मा. ला. चतुर्वेदी

कर्मवीर, खण्डवा।

चिः भैया,

तुम्हारा पत्र मिला। मैं तो यह जानता था कि तुम्हारे हृदय मे एक अभाव सदा खटकता रहता है, और यह भी जानता था कि तुम कुछ एकान्त क्षणो मे, अपने कल्पना-चित्रो मे समा जाया करते हो—तुम्हारे मन की कोमलता और जीवन की प्रखरता यह बाते कह दिया करते थे। किन्तु मै यह नही जानता था कि तुम इतने पागल भी हो।

देखो भानु! मै इस कोमल सतह पर लिखे हुए पत्र पसन्द नही करता। यानी, मै यह जानता हूँ कि इस सतह को, उन्माद और समर्पण की इस सतह को निबाह ले जाना विश्व का आसान पत्र नही है। इच्छा, जीवन का सबसे अत्याचारी और हृदय की गहराई का हमारे चरित्र का ऐरावत ही बोझ सम्हाल सकता है।

साहित्यिक या चिन्तक के मन मे आने वाला भाव, कल्पनाओं का खिलवाड़, मोजी मन की तरंग, और मीठे शब्दो का सदुपयोग या दुरुपयोग मात्र नहीं होता, शब्दो के व्यक्त करने के पीछे, शब्दो के हृदय पर, भावो के महलो में, अर्थों की दुनिया बसी होती है, और वही अर्थ, युग के सन्देहवाही देवदूत होते है। कोमल-भावो मे इतनी जोखिम है। मेरे भैया, समझे!

तुम्हारा—
मा.

कर्मवीर, खण्डवा,
११-५-५०

प्यारे भाई माचवे,

'४-३-५०' का तारीख पड़ा, और ४-४-५० की इलाहाबाद पो. आ. की मुहर खाता हुआ तुम्हारा कृपा-कार्ड मुझे मिल गया। आज ११-५-५० को उत्तर दे रहा हूँ। किन्तु उत्तर क्या दूँ? तुम्हे मेरी याद आई इससे सुखी हूँ। यो सीमा, साधन हीनता, और सरुजता तीनो के बीच के जीवन का आनन्द लिये चला जा रहा हूँ।

चि सौ. श्रीमती शरद् माचवे को मेरा नमन-पूर्ण आशीष, और बच्चे को स्नेह। प्रयाग आऊँगा जब मिलूगा। और पत्र, कार्ड के लिए? कृतज्ञता! खैर, भेट पर।

तुम्हारा—
मा. ला. च.

: १२ :

जयशंकर 'प्रसाद'

स्वर्गीय जयशकर 'प्रसाद' रहस्यवादो कवि तथा अमर नारी-चरित्रो के रचयिता नाटक्कार तथा कथाकार माने जाते हैं। 'कामायनी' के मनःशक्ति-दर्शक प्रतीक पात्र श्रद्धा और इडा, 'कामना' की रूपकमयी पात्रियाँ लालसा, लीला और 'कामना'; 'स्कदगुप्त' की वज्र कठोरा 'अनन्तदेवी' और 'अजातशत्रु' की 'छलना' और कुसुमकोमला 'देवसेना' तथा 'मल्लिका', 'वासवी' और 'मालविका' जैसी सती प्रेमिकाएँ तथा 'सुरमा' और 'शमा' जैसी वारयोपिताएं, 'मागधी' (अजातशत्रु) और 'दामिनी' (जनमेजय का नाग-यज्ञ) जैसी अतृप्तवासनामयी मानवियाँ; 'कोमा' और 'राज्यश्री' जैसी करुणा की छायाएँ 'चन्द्रलेखा' (विशाख) और 'ध्रुवस्वामिनी' जैसी रूपसियाँ; 'तितली' और 'घटी' जैसी उपन्यास-सृष्टि की मूल-सूत्रिकाए, और लघु-आख्यायिकाओ की अनन्त सृष्टियाँ यथा 'नूरी' 'इरावती', 'सदानीरा', 'दासी', 'अलका', आदि-आदि—नारीचरित्र-चित्रण के कई प्रकार के प्रमाण 'प्रसाद' के साहित्य मे हमे कलाकार की कुशलतूलिका से अंकित मिलते है। प्रस्तुत लेख मे रहस्यवादियो का नारी भावना से सम्बन्ध तथा 'प्रसाद' की रचनाओ में से कुछ उदाहरणो से इस 'आदिशक्ति' नारी का वैविध्य-पूर्ण निरूपण स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है।

पूर्व तथा पश्चिम के कई रहस्यवादी परम-तत्व के साथ मानवात्मा का 'बध, परम-पुरुष के साथ नारी-प्रकृति के चिरन्तन स्नेह-सम्बन्ध के समान मानते हैं। कावेन्ट्री पैटमोर ने लिखा है कि 'दि रिलेशन आफ दि सोल टु दि क्राइस्ट एज हिज बिट्रोथ्ड वाइफ इज ए माइन आफ अनडिस्कवर्ड ज्वाय एण्ड पावर'

(अर्थात्—आत्मा का ईसा से इस प्रकार सम्बन्ध मानो कि वह उसकी वाग्दत्ता वधू है, यह भावना ही अनन्य आनन्द और शक्ति की मूल खान है)। परमात्मा को वर तथा अपनी आत्मा को वधू मानने का भाव हेनरी वाघान के 'दिवर्ल्ड', टेनीसन के 'सेट एग्नेसेज ईव' तथा पैटमोर की 'क्राइ आफ मिडनाइट' कविताओ मे निदर्शित है। जयदेव के राधा-माधव भी तो उसी अनन्तआसक्ति के मूर्त रूप मात्र है। आत्म-तत्व की आत्मोपरि-तत्व (ओवरसोल) से मिलन-लालस विश्व के साहित्य मे अनेकानेक रूपो मे अभिव्यजित हुई है।' 'वागार्थमिवसपृक्तौ'—पार्वती परमेश्वर का यह कवि कुलगुरु द्वारा प्रशसित रूप कभी अर्द्धनारी-नटेश्वर रूप मे प्रकट हुआ है, तो भी रामकृष्ण परमहस द्वारा चिन्मय-तत्व को महामयी मातृशक्ति के रूप मे मानने मे। स्त्री और पुरुष वस्तुतः उसी लीलामय की दो व्यजनाएँ मात्र हैं, अतः कौन हीन और कौन उच्च ? वाल्ट विटमैन के शब्दो मे, 'सॉग आफ माइसेल्फ' मे—

'आइ एम दि पोएट आफ दि वूमन दि सेम एज दि मैन,
एंड आइ से इट इज एज ग्रेट टु बी ए वूमन एज टु बी ए मैन,
एड आइ से देअर इज नथिग ग्रेटर दैन दि मदर आफ मैन।'

अर्थात्—मै नारी तथा नर दोनो का कवि हूँ। नारी बनना उतना ही महान है जितना नर बनना। और मै कहता हूँ कि मनुष्यो की माता से महत्तर कुछ भी नहीं है ! 'न मातुः पर दैवतम्' वाला यह भाव अन्यान्य रहस्यवादी कवियो और भक्तो मे प्रचुरता से मिलता है।

शक्ति के अनन्त रूप

दक्षिण भारत के भक्त-कवियो मे इस शक्ति के अनन्त रूपो की स्तुति है : वह पुरुष का आनन्द-केन्द्र, पतितो की उद्धारिका, वस्तुओ का मूल-स्रोत, स्वयम् ओमृस्वरूपिणी है। स्वर्गीया सरोजिनी नायडू के शब्दो मे वह कालीमाता है जो 'क्रूर, कोमल तथा स्वर्गीय' सब एक साथ है। वह शिवगगा की राजराजेश्वरी हो चाहे तिरुवैयार की धर्मसवर्द्धनी , मदुरा की मीनाक्षी हो या कांची की कामाक्षी, त्रिचनापल्ली की सुगंधकुतला हो या वर्पपुरी की फलदम्बिका, है वह वही प्रतिमा की प्रेरिका महामाता।

यदिष्यम् तव पुत्रोहम् माता त्वम् यदि मामकी,
दयापयोधरस्तन्य सुधामि, रामि रामिशिंच माम्।

शंकराचार्य ने अपनी जीवनेच्छा यो व्यक्त की है :

यत्रैव यत्रैव मनोमदीयम् तत्रैव तत्रैव तव स्वरूपम्,
यत्रैव यत्रैव शिरोमदीयम् तत्रैव तत्रैव पदोद्वयम् ते।

महेश्वरी, महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वती के चतुर्विध स्वरूप मे यह महाशक्ति प्रकट होती है, ऐसा अरविंद का विश्वास है। उसी महाशक्ति को स्वार्थ-त्यागपूर्ण शक्ति से ही इस विश्व मे सत्य, प्रकाश और आनन्द की अवतारणा होती है। इतालवी महाकवि डान्टे ने अपने महाकाव्य 'डिवाइन कामेडी' के 'स्वर्ग' खड मे 'दि विजन' कैंटो २२ मे अपनी प्रिया बीएत्रिस का वर्णन 'पवित्र दीपक', 'चिरतन स्वर्गीय निर्देशिका' के रूप मे किया है। वह लिखता है :

एंड शी वाज लाइक दी मदर, हू हर सन
बिहोल्डिग पेल ऐण्ड ब्रेथलेस, विथ हर वायस्
सूद्स हिम एंड ही इज चीअर्ड !

अर्थात्—वह थी उस माता के समान, जो अपने बच्चो को विवर्ण और साँस भरी देख कर, अपने स्वर से उसे सहलाती है और उसे आनन्द हो जाता है।

आँध्र भागवतम् के दशम खंड मे जब कृष्ण का सदेशवाहक नद-यशोदा के पास जाता है और सब कृष्ण के विषय मे तरह-तरह के प्रश्न पूछते है, तब यशोदा कुछ पूछती नहीं, केवल उसके पास आकर बैठ जाती है और उसके स्तनो से दुग्ध-धार प्रवाहित होती है :

चन्नुमोनल बालु गुरिभाग ननुगोनलनु जलमु लोकुकाग बेग्गलिमे।

आँध्र मे गोदावरी जिले मे उम्मिडि ग्राम में गिरिगोपाल मन्दिर मे यह कथा है कि, एक वृद्धा वहाँ गयी, जो कि नीद मे रोती, हँसती और चिल्लाती थी। वह मन्दिर मे कृष्ण-दर्शन के लिए व्याकुल रहा करती थी। उसने आकर गाया : 'सरसमुलाडेतदुक समयमिदि कादुरा ना सामि ?' (अर्थात्—क्या यह समय प्रेम करने का और विलास करने का है ? हे स्वामी ! क्या यह समय सुख और प्रेम-प्रदर्शन का है ?) यह हलका ललित गान सुनकर पुजारियो ने बेचारी वृद्धा को खूब पीटा। परन्तु जब जन्माष्टमी की रात्रि को सब देव-पूजा मे निमग्न थे, बाहर से यह मधुर-गीत ध्वनि सुनाई दी। घबड़ाकर दर्शक बाहर पहुँचे—देखते है कि कृष्ण उसी वृद्धा की गोदी में बैठे हैं। वह गीत इस प्रकार से था : ननु पालिम्प नडचिवच्चितिवो ना प्राणनाथ !' (ओ प्राणनाथ ! क्या इतने दूर से तू मुझे आशीर्वाद देने, मेरा उद्धार करने अपने पैरो से चलकर आया है ? क्या चलकर ही आया है ?)। यो सुदूर दक्षिण भारत के संतकाव्य हो चाहे विदेशी मर्मियो की

वानी, सर्वत्र यही मातृ-रूपिणी शक्ति बहुत बड़ी प्रेरणा स्रोत कवियों के लिए रही है ।

कामायनी में नारी के प्रतीक-विधान

'प्रसाद' की रचनाओ मे श्रेष्ठ 'कामायनी' मे नारी के अनेक प्रतीक विधान मिलते है : यथा 'सोमलता' । सोम उनकी दार्शनिक मूल-भित्ति है । ऋग्वेद मे उसके कई उल्लेख मिलते है । तथा आनन्द की अवस्थाओ तथा प्रकाश की 'प्रतीक' सोमलता के विधान को हिन्दी के मान्य आलोचकजन भी ठीक तरह से समझ न पा सकने से उल्टा ही अर्थ बताते है । यथा डा० नगेन्द्र 'साहित्य-सदेश' मे 'प्रसाद' की कामायनी मे रूपक-योजना विपय पर लिखते हुए सोम को केवल स्थूल भोग बताते है, जो गलत है :

"सोमलता का साकेतिक अर्थ है भोग । इस प्रकार सोमलता से आवृत वृषभ का अर्थ हुआ भोग सयुक्त धर्म, जिसका उत्सर्ग करके मानव चिरानन्दलीन हो जाता है ।"

दर्शन के उथले अध्ययन से हमारे आलोचको मे दर्शन तथा मनोविज्ञान की शब्दावली गलत-सलत प्रयुक्त करने की परिपाटी-सी चल पड़ी है ।

इस रहस्यमयी चिरन्तन नारीत्व की प्रतीक लज्जावती के साथ ही कई सप्राण मूर्तियाँ और है । 'प्रसाद' के नारी-चरित्रो मे प्रतिहिसा से भरी स्कदगुप्त की विजया की भाति कुछ पात्रियाँ है । जैसे वह अनन्त देवी से कहती है : 'हृदय को छीन लेने वाली स्त्री के प्रति हृत-सर्वस्वा रमणी पहाड़ी नदियों से भयानक, ज्वालामुखी के विस्फोट से वीभत्स और प्रलय की अनन्त-चिरकाल से भी लहरदार होती है । मुझे तुम्हारा सिंहासन नही चाहिये । मुझे क्षुद्र पुरगुप्त के विलास-जर्जर मन और यौवन मे ही जीर्ण शरीर का अवलम्ब वाँछनीय नही । यह साहसिक वीरता उनकी रूपसी रमणी-सृष्टि मे बहुत मिलती है । 'विशाख' की चन्द्रलेखा कहती है : 'भगवान ने रूप देकर तुम्हे कई झझटे भी दे दी ।'

'प्रसाद' की दूसरी प्रिय नारी-चरित्र-सृष्टि है विलासिनी अतृप्त नारी । जैसे अज्ञात शत्रु की मागधी । इस चरित्र के विश्लेषण मे स्वर्गीय प्रोफेसर मोहन ने 'प्रसाद की चरित्र-सृष्टि' नामक अध्ययन पूर्ण निबन्ध में 'कामना' (कोटा) के सन् ४७ के एक अक मे लिखा था : 'प्रसाद' कथा-प्रसंग मे प्रथम ही स्वीकार करते है कि बौद्धो की श्यामावती वेश्या आम्रपाली मागधी और इस नाटक की श्यामा वेश्या का एकत्र संगठन कुछ विचित्र तो होगा, किन्तु चरित्र का विकास और कौतुक बढाना ही इसका उद्देश्य है ।'

निस्सन्देह, मागधी का चरित्र 'प्रसाद' के नाट्य-साहित्य का सबसे कौतुकपूर्ण अतएव आकर्षक चरित्र है। उसके मनोरजक चरित्र पर एक विहगम दृष्टि अरुचिकर न होगी। प्रथम तो वह हमारे सम्मुख उदयन की रानी, कौशाम्बी की राज-रानी के समान आती है, जिसे रूप का गर्व है और है अनादृत तथा तिरस्कृत होने की प्रतिशोध पूर्ण ज्वाला। प्रतिशोध की प्रवृत्ति इसे वेश्या, काशी की प्रसिद्ध वारविलासिनी बनाती है। अब वह सापत्न्य-ज्वाला से मुक्त है। उसके मृदुल विचार मे—'स्वर्ण पिंजर मे भी श्यामा को क्या वह सुख-भोग मिलेगा जो उसे हरी डालो पर कसैले फलो को चखने मे मिलता है ?' शैलेन्द्र मे वह प्रीति जुडाती है, लोह-कठोर डाकू को प्रेम-पात्र बना उसे अपने प्रेम-पाश मे बाँध रखना चाहती है, या यो कहे कि एक हिसक पशु को पालतू बनने का असफल उद्योग करती है, किन्तु वह सोचती है—'इस पामरी की गोद में मुँह छिपाकर कितने दिन बिताऊँ ?' मदिरा पिलाकर वह उसका गला घोटना है। गोतम द्वारा उसकी प्राण-रक्षा होती है। पुनः आम्रपाली के रूप मे जीवन बिताने का सकल्प कर उसने गोतम को प्राप्त किया, किन्तु उस रूप मे नहीं, जिस रूप मे यौवन के प्रथम चरण मे प्राप्त करना चाहा था।

कोमा ("ध्रुवस्वामिनी") और देवसेना ('स्कन्दगुप्त') के चरित्रो मे नारी-जीवन का करुणा (फेमिनिन ट्रेजिडी) निहित है। शकराज से प्रेम करने का (जो कि ध्रुवस्वामिनी के मन मे घोर अपराध है।) उसे जो दण्ड मिला वह उसी के शब्दो मे है ('वही जो स्त्रियो को प्राय. मिला करता है')—'निराशा! निष्पीडन! और उपहास!!' अमृततत्व की प्राप्ति (प्रेमी का प्रेम) तो दूर रहा, गरल (प्रियतम का शव-मात्र) ही उसे प्राप्त हुआ। प्रेम-मार्ग का अवलम्बन कर उसने अपने प्राणो की आहुति दी। यह कोमा के पवित्र प्रेम की कहानी है। देवसेना के प्रेमी हृदय को प्रेम के प्रथम प्रयास मे हार की अनुभूति होती है और उसे अपना जीवन विडम्बना ही प्रतीत होता है। उसी के शब्दो मे उसका जीवन है—"सगीत सभा की अन्तिम लहरदार और आश्रयहीन तान, धूपदान की एक क्षीण गध-धूप-रेखा, कुचले हुए फूलो का म्लान सौरभ और उत्सव के पीछे का अवसाद, इन सबो की प्रतिकृति मेरा क्षुद्र नारी जीवन!"

उनकी कहानियो से तो असख्य उदाहरण दिये जा सकते है। कविताए यद्यपि अमूर्त और छायावादी है, फिर भी कुछ स्थानो पर रेखाएँ स्पष्ट हैं।

जून १९१४ में प्रकाशित 'महाराणा का महत्त्व' दीर्घ-कविता मे से यह अंश स्वाभिमानी नारी-चरित्र-चित्रण का एक उत्तम प्रमाण है :

सुन्दर मुख का होता है सर्वत्र ही
विजय, उसे कर सकता कोई भी नहीं।
रमणी के सुकुमार अंग पर केशरी
सम्हल-सम्हल कर करता प्रेम प्रकाश है,
'प्रिये ! तुम्हारे इस अनुपम सौन्दर्य से
वशीभूत हो कर वह कानन केसरी,
दांत लगा न सका, देखा गान्धार का
सुन्दर दाख'—कहा नवाब ने प्रेम से।
सुमन कुञ्ज मे पंचम स्वर से तीव्र हो
बोल उठी वीणा—'चुप भी रहिये ज़रा
जिसकी नारी छोडी जाकर शत्रु से,
स्वीकृत हो सादर अपने पति से, भला
वह भी बोले, तो चुप होगा कौन फिर !'

नारी-हृदय की परिभाषा

नारी मे दुःख सहन की जो क्षमता होती है, उसका शरच्चन्द्र और जैनेन्द्र ने अपने उपन्यासो मे बडा चित्रण किया है। राज्यश्री दिवाकर मित्र के तपोवन मे कहती है—'दुखो को छोड़कर और कोई न मुझ से मिला मेरा चिर-सहचर ! परन्तु अब उसे भी छोडूँगी। आर्य मुझे आज्ञा दीजिये। स्त्रियो का पवित्र कर्तव्य पालन करती हुई इस क्षणभंगुर ससार से बिदाई लूँ—नित्य की ज्वाला से, यह चिन्ता की ज्वाला प्राण बचावे' (पृ० ६२)। 'विशाख' की चन्द्रलेखा कहती है—'बीत रहा है जीवन सारा केवल दुख ही सहते।' (पृ० १३)। वही भाव चन्द्रगुप्त की मालविका दुहराती है—'जाओ प्रियतम ! सुखी जीवन बिताने के लिए और मै रहती हूँ चिर-दुखी जीवन का अन्त करने के लिए। जीवन एक प्रश्न है, और मरण है उसका अटल उत्तर। यह चन्द्रगुप्त की शय्या है। ···स्मृति, तू मेरी तरह सो जा !' (पृ० २२०)।

प्रसाद जी के आनन्दवाद के मूल मे एक प्रकार का सूक्ष्म नियतिवाद संव्याप्त है। वह यह मानकर ही चलते है कि मानों पीडा की घुट्टी आत्मा के जन्म के साथ लगी हुई है। जैसे ध्रुवस्वामिनी पृ० २६ पर कहती है—'यही क्या विधाता का निष्ठुर विधान है ? छुटकारा नही ? जीवन नियति के कठिन आदेश पर चलेगा ही ? तो क्या यह मेरा जीवन भी अपना नही है ?' पर अन्त मे 'प्रसाद' कुछ द्वन्द्व मे पडे थे, और उनके नियतिवाद मे शब्दप्रामाण्य का

विश्वास डिगने लगा था, तभी मदाकिनी उसी नाटक मे पृष्ठ ५३ पर कहती है—'आर्य ! आप बोलते क्यो नही ? आप धर्म के नियामक हैं। जिन स्त्रियो को धर्म-बन्धन मे बॉधकर, उनकी सम्मति के बिना आप उनका सब अधिकार छीन लेते है, तब क्या धर्म के पास कोई प्रतिकार—कोई सरक्षण नही रख छोडते, जिससे वे स्त्रियॉ अपनी आपत्ति मे अवलम्ब मॉग सके ?' इसीलिए 'प्रसाद' का कलाकार नारी के निश्चल हृदय के साम्य-सुख की सराहना करता है। जनमेजय के नाग-यज्ञ की 'कलिका' कहती है—'साधारण मनुष्यता से कुछ ऊँचे उठा लेने वाला दम्भ, हृदय को बडे वेग से पटक देता है, जिससे वह चूर हो जाता है ! महादेवी, चूर होकर, मार्ग की धूल मे मिलकर, समता का अनुभव करते हुए चरणचिह्नो की गोद मे लोटना भी एक प्रकार का सुख है, जो सब की समझ मे नही आता।' (पृ० ७८)।

अन्ततः 'अजातशत्रु' की वासवी के शब्दो मे पृ० १२१ पर नारी-हृदय की जो परिभाषा मिलती है, वही 'प्रसाद' का भी अभिमत जान पड़ता है : 'नारी का हृदय कोमलता का पालना है, दया का उद्गम है। शीतलता की छाया है और अनन्य भक्ति का आदर्श है।'

: १३ :

'नवीन'

'डग डग रोटी, पग पग नीर' वाला मालवा (मध्य भारत) कालिदास के जमाने से आज तक साहित्यिक प्रतिभाओं की बडी सरस उपजाऊ भूमि रही है। इसी भूमि से पुष्पदन्त जैसे अपभ्रंश कवि मिले। आधुनिक काल मे मराठी कवि ताबे, स्व०रमाशकर शुक्ल 'हृदय' इसी भूमि के रत्न थे। हिंदी-काव्य-क्षेत्र को इसी भूमि के कई कवियो ने सीचा है, सर्वश्री हरिकृष्ण 'प्रेमी', जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिंद', शिवमगलसिंह 'सुमन', वीरेन्द्रकुमार जैन, गजानन माधव मुक्तिबोध, गिरिजाकुमार माथुर, हरि व्यास, नरेश मेहता, महेन्द्र भटनागर, इदिरा गुप्त और मैं हूँ। इन सब मे अनन्य साधारण हैं 'नवीन जी'।

"हम 'नवीन' मतवाले" अपने-आपको कविता में लिखने वाले श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' एक मस्त-मोला मालव-पुत्र हैं। उन्होने सदा बृहत्तर श्रेयस के लिए लघुतर प्रेयो का त्याग किया है। इसी मे उनके कवि-व्यक्तित्व की परम-सार्थकता है। उन्होने बहुत बचपन मे अपना घर छोडा। मध्यभारत से उत्तर-प्रदेश में आये। कानपुर मे स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी जी के चरण-पद्मो मे पत्रकारी सीखी, उसे राजनीतिक आन्दोलनो की पुकार पर छोड़ा। अन्ततः आकर राजनीतिक सत्ताओ के सघर्ष में हिन्दी के प्रेम और सेवा के लिए उन्होने बडे-से-बड़े पदो का भी त्याग किया। 'यह शाश्वत टोह' उनके अन्तराल को सदा मथती रही है। इसी ने उन्हे वर्षों तक 'हम अनिकेतन, हम अनिकेतन' बना दिया था। 'क्वासि की यह टेर मेरी!' उनके हृदय के अन्तरतम में व्यापी हुई है। वही उनकी आत्मा में से बार-बार हुंकार कर उठती है—'सिरजन की ललकारें मेरी!' उनके व्यक्तित्व मे तीन सूत्र जैसे एकप्राण हो गये हैं: मर्मी अध्यात्मवादी, ब्रह्मवादी,

जुझारू, आत्म-प्रगल्भ नेता , प्रणय-व्याकुल, सौन्दर्योपासक, सहृदय कलाकार। यह तीनों स्वर उनकी रचनाओं मे बार-बार उभर कर सामने आते हैं।

उनकी काव्यरचना मे एक अपनापन है, उनकी भाषा की अनगढ, अटपटी अपनी शली है, 'यह रग ही नया है। कूचा ही दूसरा है!' यह व्यक्तित्व का खरापन, यह अक्खडपन और सहजता उनकी कविता मे एक नया ही स्वर भर देती है; वस्तुतः, 'कुङ्कुम' या 'अपलक', ये दो प्रकाशित संग्रह उनके व्यक्तित्व का सपूर्ण चित्र नहीं उपस्थित करते। उनकी अप्रकाशित रचनाओं मे उनका व्यक्तित्व कहीं अधिक निखरा है। इसीलिए इस रेखाचित्र या समीक्षण लेख मे उनके सग्रहाकार न छपे पद्यों के अधिक उद्धरण हैं।

'सुन्दर' की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं :

ओ सौंदर्य-उपासक, तुमने सुन्दर का स्वरूप क्या जाना?
मधुर, मंजु, सुकुमार, मृदुल को ही क्या तुमने सुन्दर माना?
क्यों देते हो चिर-सुन्दर को इतने छोटे सीमा बन्धन?
कठिन, कराल, ज्वलंत, प्रखर भी है सौंदर्य-प्रकेत चिरंतन!
ललित, चारु, लघु, कोमल, तनुपर हिय न्यौछावर करने वालो,
मधुर, मधुर, सुकुमार गीत के तुम मनहर स्वर भरने वालो,
नहीं हुई है पूर्ण तुम्हारी सुन्दर की अर्चना अलौकिक,
चिर सुन्दर का स्तवन तुम्हारा रहा अभी तक केवल मौखिक,
जब तक उसकी वह कराल छवि कर न सकोगे मनसे स्वीकृत,
तब तक नहीं हो सकोगे तुम सुन्दर के द्वारा अंगीकृत।
ओज, तेज, विक्रम बल, दृढ़ता, महानाश-क्षमता, निर्ममता,
अडिग धीरता, कुलिशकठिनता, भीम शक्तिमत्ता, चित्-समता,
नित अपराजित सहनशीलता, नित्य अकंपित नवल सृजन-रति,
नित बाधा-भूधर उत्पाटन, नित्य क्रान्ति-कृति, नित अबाध गति,
ऐसा है सौंदर्य समुच्चय, ऐसा है वह सुन्दर प्रियवर,
ऐसा है वह जीवन-रंजन, ऐसी है उसकी छवि हिय-हर!

'नवीन' जी के काव्य मे इसी प्रकार के परुष, सम्पूर्ण-सत्य-दर्शी सौदर्य के दर्शन होते हैं। वे केवल 'कोमल से कोमलतर, कोमलतर से कोमलतम', सौदर्य से संतुष्ट नहीं। इसी कारण से जहाँ-जहाँ भी उन्होने अपनी कविता मे अपना उल्लेख किया है, चाहे वह 'कु कुम' के 'पराजय-गीत' मे हो, चाहे 'अपलक' के '४६-वें वर्षान्त के दिन' या 'षण्ढ सिंहावलोकन' मे हो, वे सदा अपने विषय में

आश्वस्त, अपने वैराग्य मे भी आनन्द लेनेवाले आत्म-स्वीकृति के रस से सराबोर है। 'अपलक' के 'हम है मस्त फकीर' गीत में वह लिखते हैं :

तुम्हें मिली है मानव हिय की यह चंचल ठकुरास !
पर, हमको तो मिली अचंचल मस्ती की जागीर !
तुम समझो हो कि अब हो चले हम नवीन, प्राचीन !
क्यो भूलो हो कि हम अमर हैं! हम हैं लौह शरीर !!
हम हैं मस्त फकीर !!

उनकी कविताओं का अधिकाँश उनके कारागृह-जीवन मे लिखा गया है। अतः उनमे स्मृति-तत्त्व का आधिक्य स्वाभाविक है। उन्होने अपने-आपको कुरेद-कुरेद कर कोसा है, बुरा-भला कहा है, स्वय का मूल्यॉकन निर्मम भाव से किया है। उनकी कविता का एक प्रधान स्वर इस आत्म-दुर्बलता की स्वीकृति और आत्म-गौरव के आग्रह के बीच के द्वन्द्व से उपजा है। दो उदाहरण मेरी बात को स्पष्ट करेगे :

१. हम अलख निरंजन के वंशज

हमने भी पाया अजब हृदय, हम जग को करने प्यार चले
पर अजब तमाशा हुआ यहाँ, हम सब के हो हिय हार चले
जिस जिसको हमने अपनाया, वह बेगाना हो गया यहाँ—
मरु मे सनेह-वर्षण करते इस जग में हम बेकार चले!
हम रहे फुट्ट फैयल याँ पर हम इधर-उधर हिय हार चले—
जीवन की इस डगरी मे हम अपना सब कुछ ही वार चले
जिनको हमने अपना समझा वे ही अब हमसे कहते हैं—
तुम कौन हमारे होते हो ? तुम गलत धारणा धार चले !
हम जन्मजात बौडम ठहरे हमको कब आई अकल जरा ?
इस छन भी तो उन सब के हित हम हो जाते हैं विकल ज़रा।
ऐसा कुछ लगता है गोया अपने ही दिल के टुकडे को—
अपना-सा कर पाने में हम हो गये यहाँ पर विफल ज़रा।
हम पास बढे जितना उनके वे उतना हमसे दूर हुए,
वत्सलता, स्नेह, दुलार, प्यार, सब उनको नामंजूर हुए:
हम थे मुगालते में अब तक, जब ठेस लगी तब होश हुआ—
इस खरी आँच के लगते ही, हिय के संभ्रम बेनूर हुए।
फिर भी हम तो हैं मस्ताने, है हमें न ख्वाहिश दानों की—

हम नहीं भिखारी दर-दर के परवाह न निज अरमानों की—
हम अलख निरंजन के वंशज निज मनोरथों के हम हंता
अपना सबकुछ देने से ही है सार्थकता इन प्राणों की।

और इससे भी ज्यादा स्पष्टवादिनी और शानदार यह कविता है :

२. आशा-ईमाँ

रंग दिखाते हैं, राग गाते है
हम परेशानियाँ उठाते हैं
रोज़ कहते हो बस ज़रा ठहरो
हम अभी एक दिन मे आते है!
कब से यह नेह-दीप टिमटिमाता है
क्या कभी ध्यान इसका आता है?
हुए चालीस बरस से ऊपर—
तेल अब खत्म हुआ जाता है!
आग तडपे कि वेदना जागी
कैसे हो मन विशुद्ध वैरागी?
रंगामेज़ी का खेल जब हो तो
क्यों न सब सृष्टि बने अनुरागी?
हमने चाहा कि बाँध लें मन को
तुमने सोचा कि मृत्तिका-कन को
इतनी जुरअत कि बने स्पंदनहीन?
और दे थाम इस रुधिर-रन को?
हमने कब गर्व किया संयम का?
जोग-बैराग का, नियम-यम का?
हममें यह ताब कहाँ है, पीतम;
जो कि हम दम भरें परिश्रम का?
आज भी हूक उठ ही आती है,
औ' तबीयत य' लुट ही जाती है,
कुछ हुए हैं अजीब वाके नवीन
उनकी उम्मीद कब बर आती है?

उनके इसी मस्त फक्कड़पन ने एक ओर उनकी कविता मे धरती की सोंधी ताज़गी बनाये रखी है। जैसे 'कुंकुम' मे ब्रजभाषा की रचना 'अपनी प्रीत को

मरम गुइयाँ काहू को बतैयो ना' या 'माधुरी' के पत्राक मे प्रकाशित बहन को भाई के जेल से पत्र या 'डोले वालो' नाम की कजरी और दूसरी ओर उनकी रचनाओ मे एक विद्रोहपूर्ण अराजकता का अनिर्बंध स्वर भरा है। (जिसे प्रगतिवादी मित्रो ने गलती से प्रगतिवादी लेख समझा था।) राष्ट्रीय आन्दोलन के आरम्भिक दिनो मे यह ध्वसवादी, अराजकवादी स्वर प्रायः सभी भाषाओ के कवियो मे मिलता है। शैले ने उसी स्वर मे एशिया का गीत लिखा था (केकी मे)। उसी स्वर से अनुप्रेरित होकर केशवसुत (मराठी कवि) ने 'साथी ना मेले-ल्याचे, माथी त्या दिल जानाचे, गाणार वडवाले ते' (डंका) जैसे स्वर उठाये, और उसीसे प्रेरित होकर जोश मलीहाबादी ने 'इन्सानीयत का कोरस' लिखा। उसी से प्रेरित काजी नजरुल इस्लाम की 'अग्निवीणा' थी। उसी ध्वंसवादी, अराजकवादी वृत्ति के स्वर भगवतीचरण वर्मा, 'दिनकर' और नागार्जुन तक मे मिलते हैं। उन्ही से जैसे बचते गिरिजाकुमार ने अपने संग्रह का नाम 'नाश और निर्माण' या शिवमगलसिह 'सुमन' ने 'प्रलय-सृजन' रखा।

इस सर्वनाशवादी स्वर का सर्वोत्तम उदाहरण उनकी आरम्भिक काल की रचना 'विप्लव-गायन' और इधर उनके गद्य मे 'अपलक' आदि संग्रहो की भूमिकाएँ हैं। 'विप्लव-गायन' मे कविवर 'नवीन' ने कहा था :

> कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ—
> जिससे उथल-पुथल मच जाए॥
> एक हिलोर इधर से आए—एक हिलोर उधर से आए,
> प्राणों के लाले पड जाएँ, त्राहि-त्राहि रव नभ में छाए,
> नाश और सत्यानाशों का, धुँआधार जग में छा जाए,
> बरसे आग, जलद जल जाएँ, भस्मसात् भूधर हो जाएँ,
> पाप-पुण्य, सदसद्भावों की—धूल उड उठे दाएँ-बाएँ,
> नभ का वक्षस्थल फट जाए, तारे टूक-टूक हो जाएँ।
> कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ—
> जिससे उथल-पुथल मच जाए॥
> नियम और उप-नियमों के ये बन्धन टूक-टूक हो जाएँ
> विश्वम्भर की पोषक वीणा के सब तार मूक हो जाएँ
> शान्ति-दण्ड टूटे—उस महारुद्र का सिंहासन थर्राए,
> उसकी पोषक श्वासोच्छ्वास, विश्व के प्राँगण में घहराए,
> नाश, नाश हा! महानाश की प्रलयंकारी आँख खुल जाए!!

यह 'सर्व संहारवादी' (निहिलिस्ट) स्वर कवि को एक ओर उत्कट वैराग्य-पूर्ण (जैसे 'कोऽहम ?' और 'कार्य-कारण-शून्यता'—दूसरी कविता की पैरोडी मैंने 'हंस' मे की थी 'कपडा-राशन-शून्यता' नाम से) रूखी तर्कयुक्त पद्य रचना की ओर प्रेरित करती है, तो दूसरी ओर प्रासगिक रचनाओ की ओर (यथा 'कुङ्कुम' की प्रथम जेल मे कडे परिश्रम पर रचना या युद्धकालीन 'धन्य सभी स्तालिन जन गण' नाम रूस-प्रशसा या गाधी-गुणाष्टक या 'हिन्दुस्तान हमारा है, यह भारतवर्ष हमारा है' या 'झूठे पत्ते चाटने वाले मजदूरों' पर कविताएँ) ले जाती है।

इस प्रकार से 'नवीन' जी की कविता मे एक दार्शनिक-रहस्यवादी धारा है। दूसरी उत्कट प्रणय-निवेदन की उत्तान शृङ्गारभरी (प्रिय, तुम आज झरी झारी-सी, या 'मत ठुकराओ मुझे सलोनी, मैं हूँ प्रथम प्यार का चुम्बन'; या 'सायुज्य-याचा') धारा, और तीसरी धारा है राष्ट्रीय-सामाजिक उद्बोधन पर, विद्रोही काव्य-रचना की धारा।

इन्हीं सब विषयों मे बार-बार उभर कर आने वाला विषय (जो प्रणय से सम्बद्ध है) है मरण। परन्तु फ्रायड के अनुसार कार्य का उत्कट रूप वस्तुतः आत्म-हनन ही है। आत्म-दान का आनन्द इसी मे है। प्रणयानुभूति की इस परम्परा को हमे चन्द्रबली पाडेय के शब्दो मे न केवल कालिदास अपितु उपनिषदों तक ले जाना होगा। चन्द्रबली जी अति सयमी व्यक्ति है, परन्तु उनका काम के प्रसंग मे अध्ययन यहाँ उद्धृत करने योग्य है :

" 'मिथुन' और 'काम' की आज बडी चर्चा है। फ्रायड (सन् १८५६-१९४० ई०) और मार्क्स (१८१८-१८८३) की कृपा से इनको स्थान भी अच्छा मिल गया है, अतएव थोड़ा इसे भी देख लेना चाहिए कि वास्तव मे मानव काव्य-क्षेत्र मे इनका महत्त्व क्या है। फ्रायड की शोध के विषय मे हमारा इतना ही कहना है कि वस्तुतः वह निदान के रूप मे है, कुछ विधान के रूप मे नहीं, जो उसका इतना ज्ञापन हो रहा है। यूरोप के लिए भले ही उसकी शोध नवीन चमत्कार हो, पर भारत के लिए तो वह अति पुरानी बात है। भर्तृहरि के 'शृङ्गारशतक' मे इस कथन पर ध्यान तो दीजिए :

> न गम्यो मंत्राणां न च भवति भैषज्यविषयो
> न चापि प्रध्वंसं व्रजति विविधैः शांतिकशतैः
> भ्रमावेशादङ्गे किमपि विदधद्भङ्गमसमं स्मराय-
> स्मारोऽयं भ्रमयति दृशं घूर्णयति च ॥

"कामदेवरूपी अपस्मार नाम रोग से पीड़ित हुए मनुष्य की व्यथा न तो

मन्त्र-तन्त्र से दूर होती है, न औषधियो के प्रयोग से जाती है और न शान्ति-पाठ आदि के कराने मे ही शान्त होती है, किन्तु जब-जब इसका दोरा होना है, तब-तब रोगी के अग मे न्यूनाधिक भाव से एक प्रकार की असह्य वेदना उत्पन्न हो जाती है कि जिससे उसका शरीर टूटने लगता है, मन फिरने लगता है और दृष्टि घूमने लगती है।

दूसरी ओर भर्तृहरि की यह घोषणा है कि

स्त्रीमुद्रां झषकेतनस्य परमां सर्वार्थसम्पत्करीं
ते मूढा: प्रविहाय यान्ति कुधियो मिथ्याफलान्वेषिण:
ते तेनैव निहत्य निर्दयतरं नग्नीकृता मुण्डिता: केचित्
पञ्चशिखीकृताश्च जटिला: कापालिकाश्चापरे ॥

"जो मूढ-जन कामदेव की परमोत्तम और सर्व प्रकार की सम्पदा को देने वाला स्त्रीमुद्रा का परित्याग करके बुद्धि-भ्रष्ट हो मिथ्या फल ढूढते फिरते है, उनको मीनकेतन ने भी बहुत कठोर दड दिये है। कितने ही तो नग्न हुए, कितने ही रुण्डमुण्ड, कितने ही पचकेशी धारण किये, कितने ही जटाधारी बने हुए, और कितने ही कपाल हाथ मे लिये हुए, भिक्षाटन करते घर-घर मारे-मारे फिरते है।

"महाराज कामदेव का दड-विधान कहिये अथवा महामति फ्रायड की अतृप्तवासना, है तो दोनो दशाओ मे भी इन तपस्वियो की वही स्थिति ? तो फिर हमारा मंगल कहाँ है ? भर्तृहरि स्पष्ट करते हैं :

एको रागिषु राजते प्रियतमादेहार्धहारी हरो
नीरागेष्वपि यो विमुक्तललनासंगो न यस्मात् पर:
दुर्वारस्मरबाणपन्नगविषज्वालावलीढो जन:
शेष:कामविडम्बितो हि विषयान् न भोक्तुं क्षम: ॥

"जैसे अनुरागियो मे पार्वती को अर्धाग मे धारण करने वाले शिव जी ही सबके शिरोमणि है वैसे ही विरागियो मे भी संसार के भोग-विलास का सर्वथा त्याग करने वाले महादेव जी ही सब मे अग्रगण्य है, क्योकि कामदेव के बाणरूप सर्पो की असह्य विषाग्नि से संतप्त हुए अन्य जन तो मदन की चेष्टा से विडम्बित होकर न तो विषयादिको का यथेच्छ भोग ही कर सकते है और न उनका त्याग ही कर सकते है।"

"शिव की इसी महिमा का प्रताप है कि शिवागमो मे 'सामरस्य' का विधान है और उनमे खुलकर इसका प्रतिपादन भी किया गया है। देखिये 'ज्ञानार्णव-तन्त्र' मे स्पष्ट कहा गया है :

अनुबन्धः सत्वरारोहे यावद्रेतः प्रवर्तते ।
रजोमयं रजः साक्षात्संविदेव न संशयः ॥
प्रकृतिः परमेशानि वीर्यं पुरुष उच्यते ।
सर्वं साक्षात्सामरस्यं शिवशक्तिमयं ततः ॥
तयोर्योगो महेशानि योग एव न संशयः ।
सीत्कारो मन्त्ररूपस्तु वचन स्तवनं भवेत् ॥
नखदन्तक्षतान्यत्र पुष्पाणि विविधानि च ।
कूजनं गायनं स्तुत्या ताडन हवनं भवेत् ॥
आलिंगनं तु कस्तूरीघुसृणादिकमद्रिजे ।
मर्दनं तर्पणं विद्धि वीर्यपातो विसर्जनम् ॥

और यह 'छान्दोग्योपनिषत्' के 'योषा वाव गौतमाग्निस्तस्या उपस्थ एव समिद्यदुपमन्त्रयते स धूमो' के सर्वथा मेल मे है। अतः यह कहने में कोई भ्रम नहीं दिखाई देता कि यहाँ के ऋषियों ने इस तत्त्व को भली-भाँति समझ लिया था और किसी प्रगतिवादी की मनमानी के लिए इसे छोड़ नहीं दिया था। कारण 'श्रीहंसविलास' से सुनिये :

शिवशक्त्योः समायोगादानन्दो योऽनुभूयते ।
स एव मोक्षो विदुषामबुद्धानां तु पातकम् ॥

किन्तु यह 'सामरस्य' सबकी खेती नहीं। यहाँ तो स्पष्ट निर्देश है :

शुद्धचित्तस्य शान्तस्य धर्मिणो गुरुसेविनः ।
अतिगुह्यस्य भक्तस्य सामरस्यं प्रकाशते ॥

अस्तु, हमे 'मिथ्याज्ञानविडम्बकों' से सदा सतर्क रहना चाहिए और जैसे-तैसे परम्परा के मेल मे उन्हे लाना चाहिए। काम की परम्परा अपने यहाँ क्या है, इसको स्पष्ट कर लेना चाहिए। कबीरदास का कहना है :

काम मिलावे राम को, जो कोइ जानै भेव ।
कबीर बिचारा क्या करै, यों कहि गये सुकदेव ॥

तात्पर्य यह कि 'काम' का जैसा विचार भारतीय वाङ्मय में हुआ है वैसा अभी यूरप में नहीं। फ्रायड को चिकित्सा मे निदान को सूझी तो अपस्मार को अतृप्त वासना का परिणाम कहा और उसकी पूर्ति को ही साधु समझा। फिर तो इस वासना पर उसकी ऐसी दृष्टि जमी कि फिर कभी इससे दूर न हुई और 'स्वप्न' तक जा पहुँची। जायसी के 'सपने सूझ सो धन्ध' को फ्रायड ने विज्ञान का पद दिया और 'अन्तः संज्ञा' को वासना का अन्तःपुर बताया। वहीं

से उसकी झाँकी लोगो को भरमाती रही। परन्तु उसकी दृष्टि इससे आगे न बढी। परिणाम यह हुआ कि 'परिभोग' और 'परीवाह' के अतिरिक्त उसे कुछ और सूझा भी नही और सूझा भी तो थोडा परिष्कार। हाँ, 'परिष्कार' की ओर उसका साथी एडलर (१८७०-१९३७) अवश्य बढा और साधना वा कविता के क्षेत्र मे ही इसकी झलक सीमित न रही। उसने इसमे आत्मा का विलास और हेठी की भावना का पता लगाया, उधर जुङ्ग (१८७५-१९०४) ने अनुसधान किया और इस निदान मे अतीत की अपेक्षा वर्तमान को महत्व दे काम-वासना की अतिव्याप्ति को दूर किया। फ्रायड, एडलर और जुङ्ग की त्रयी ने इस क्षेत्र में जो कुछ किया उसका सहसा प्रचार हो जाने के कारण यहाँ भी उसकी बयार बही और कविता मे कुछ उसकी भी फूक लगी। कथा-वार्ता मे भी उसका प्रभाव गोचर हुआ परन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है भारत की भारती मे इसकी भी एक स्वतन्त्र परम्परा है, और है इसका भी एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय।

करुण कवि भवभूति का अभिमत है :

पूरोत्पीडे तडागस्य परीवाहः प्रतिक्रिया।
शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेवधार्यते॥

और एक उर्दू कवि का कथन—

रुकाव खूब नहीं तबा की रवानी में।
बू फ़साद की आती है बन्द पानी मे॥

इस परम्परा और इस सम्प्रदाय को लेकर जो रचना बनी है वह 'कामायनी' कही जा सकती है। 'काम' के प्रसंग मे 'प्रसाद' जी का कहना है :

जो कुछ हो, मैं न सम्हालूँगा
इस मधुर भार को जीवन के,
आने दो कितनी आती हैं
बाधाएँ दम संयम बन के॥

चन्द्रबलीजी की सभी स्थापनाओ से सहमत होना संभव नही है, परन्तु 'नवीन' जी की बहुत सी प्रणय विषयक गीत रचना सहसा इस परम्परा का स्मरण अवश्य करा देती है। 'इधर सम्मेलन बना अनुताप जीवन का भयकर' तो ठीक है, परन्तु 'नवीन' जी बार-बार 'आज हुलसे प्राण' (अपलक) जैसी रचनाओ मे :

बाँध लो परिरंभ-रसरी मे सजन इस थकित जन को,
शिथिल बाँहो का बना लो ग्रीव माला एक क्षण को।

आदि प्रयोगो का मुक्त उपयोग करते है, तब रीतिकालीन कविता का और उर्दू शायरी का उनपर प्रभाव स्पष्ट दिखाई देने लगता है।

उर्दू शायरी मे प्रणय की उत्कटता मरण की प्रतिभा के साथ-साथ चलती है (देखिये मेरा 'कवि-स्वभाव' लेख इसी ग्रथ के अन्त मे)। वहाँ गरेबाँ चाक होता है; प्रेम-प्रसंग मे नजर के खजर चलते है और दिल के हजार टुकडे कीमे की तरह होते है पर वीभत्स नही माने जाते। 'नवीन' की रचनाओ मे मृत्यु-पूजा का स्वर तो इतना नही है (जैसे इलाचन्द जोशी की 'विजनवती' मे मरण-सुन्दरी का आह्वान या अर्चन है) परन्तु मरण को महा-मिलन या महा-परिणय मानने की बात जरूर है।

भारतीय सस्कृति मे मृत्यु को बडा महान माना गया है। गीता मे मृत्यु का अर्थ बताया है परिवर्तन। पुराने सत-कवियो ने इसे 'चार कहारो के कधे पर चढ़कर बाबुल के घर जाना' कहा है। यह घट का फूटना ऐसा माना गया है जैसे साधारण घटना हो। यह महाप्रस्थान, यह महायात्रा, यह महानिद्रा, यह अनंत मे स्नान, यह शिखरारोहण, यह चिरतन विस्मरण, यह 'प्राणो मृत्युः', यह माँ की कोख मे मुँह छिपा लेना! इस काव्य के महान स्रोत को सूफी जलालुद्दीन रूमी ने इन शब्दो में व्यक्त किया था :

With thy sweet soul, this soul of mine
Hath mixed as water does with wine.
Who can the wine and water part,
Or me and thee when we combine ?
Thou art become my greater self,
Small bounds no more can we confine
Thou has my being taken on,
And shall not I now take on thine ?
Thy love has pierced me through and through
Its thrill with Bore and Nerve entwine
I rest a Flute laid on thy Lips,
A lute, I on thy breast recline.
Breathe deep in me that I may sigh,
Yet strike my strings, and tears shall shine.

इस कविता का भावार्थ है ससीम का असीम मे एकाकार होना। रवीन्द्रनाथ ने इसी मूड मे गीताजली मे कहा था 'मरण जे दिन आस् बे तोमार दुयारे, की दिव ओहारे !!' मृत्यु के विषय मे एक बहुत मार्मिक लेख मैंने मराठी में पढा है। लेखक का शीर्षक है 'अक्षरवाड-मय के कुछ मृत्यु'। लेखक श्री शरच्चन्द्र चिर-मुले ने हम्लेट के विख्यात स्वगत भाषण, विक्तर यूगो के ले मिजराब्लूस, जीन वालजीन् और जेवर्ट की मृ ु के प्रसंग, डिकेन्स के 'टेल आफ टू सिटीज़' मे 'सिड्नी कार्टन' का मृत्यु और तास्लस्वाय के 'अन्नाकैरोनेना' मे अॅना की मृत्यु का तुलनात्मक अध्ययन किया है। हम्लेट ने कहा था—

"Had I but time—as this fell seargant death
Is stick in his arrest—O, I could tell you
But let it be—"

इस पृष्ठभूमि मे 'नवीन' जी की मरण-विषयक अनेक कविताएँ बहुत पठ-नीय हैं। 'भाई आज बजी शहनाई' तो सबको परिचित ही है। परन्तु 'प्रयाण-बेला' और 'पहेली' यह दो कविताएँ देखिये। कविताएँ पढ़ते समय न ज़ाने क्यो मुझे शाजापुर मे देखी 'नवीन' जी की वृद्धा माँ की याद आ जाती है। उनका कुछ वर्ष पूर्व देहान्त हुआ। वे ही उनके जीवन की नवीन-विवाह पूर्व की एकमात्र परिवार सबल थी। प्रयाण-बेला को कविताएँ अपने-आप मे अपनी कहानी कहती है :

१. कैसा मरण सन्देशा आया ?

कैसा मरण सँदेसा आया ?
किसके कंठाभरण स्वरों ने लय-संगीत सुनाया ?
देह थकी, जर्जरित हो गयी, बिगड़ गया कुछ खटका,
सज्ञा-शून्य शरीर हो गया, लगा मृत्यु का झटका,
देख लुप्त होते जीवन को मन संभ्रम मे अटका;
जीवन का रहस्य यह क्या है ? क्या यह मृण्मय माया ?
कैसा मरण सँदेसा आया ?

दो विभिन्न गतियाँ जगती मे; इक जडमय, इक चेतन,
जड़गति है घूर्णित आंदोलन, चेतन है उद्वेलन;
जब जड कण-समूह बन आया—चेतन का सुनिकेतन,
तब उसमें विकास गति आयी; जड ने जीवन पाया !
अभिनव मरण सँदेसा आया !

जिनने मरकर चिर-जीवन का रुचिर रूप पहचाना,
जिनने निज को खोने ही मे शुचि निजत्व को जाना,
वे बोले कि मरण है जीवन का ही एक बहाना,
है त्रिजत्व का द्वार, मृत्यु तो है जीवन की छाया !
अभिनव मरण सँदेसा आया !

जीवन का अखंड वैश्वानर हहर-हहर कर चमका,
भय भागा संदेह हट गया, छूटा संशय तम का,
अपने 'स्व' को 'स्वधा' सम होमा टूटा फंदा यम का;
अपने मन की हुई मृत्यु तब चिर-जीवन लहराया !
नव तब मरण सँदेसा आया !

२. पहेली

खूब जानता हूँ मृत्यु जीवन की एकता मै
खूब पहचानता हूँ संभ्रम के छल-छद,
खूब जानता हूँ माया-मोहिनी के हाव-भाव
विभ्रम करण मानता हूँ सब भव-बंध,
किंतु अनजान प्राण अपनों को जाते देख
बरबस हाहाकार करते हैं मूढ़ मंद
मोह मैं कहूँ ? या इसे मानव-स्वभाव कहूँ ?
मरण-विछोह से क्यों हो साहित्य खंड-खंड ?

यह जो मरण-भीति मानव के हिय में है
वह क्या है भावी नव जीवनोत्क्रमण-त्रास ?
यह जो विछोह-जन्य वेदना है मानव में
वह क्या है नूतन-जन्म-पीड़ा का ही विलास ?
जीवन-मरण एकरूप हो गये हैं किंतु
फिर भी समाया जग-जीवन में मोह-फाँस;
आँसू हैं, हिचकियाँ हैं, प्राणो का तड़पना है,
हिय में भरा है गहरा-सा एक उच्छ्‌वास ।

अपनों को जाते अवलोक नयनों से जब
अपनों को देखा जब होते यों त्रिजत्व लीन—
मृत्यु-यवनिकाऽक्षेप-अंतर में देखा जब
नट को पट-परिवर्तन-लीला में तल्लीन—

देखा जब पंख तौलते यों प्राण विहंग को
चंचु किये उधर जहाँ है पथ अंतहीन
उस क्षण अपने ही आप आया हिय भर
झर-झर-झर उठे आप ही ये दृग दीन !

अन्त मे 'नवीन' जी के कवि-व्यक्तित्व का यह सम्मानमय स्मरण उनके जीवन के रेखाचित्र के बिना सम्पूर्ण नही होगा। उन्ही के शब्दो मे वह चित्र निम्न प्रकार से है। यह 'नवशक्ति' मे बहुत वर्षो पूर्व छपे उनके स्वयं के लेख का एक अश है। जिस 'माधव कालिज' उज्जैन का इस लेख मे जिक्र है उसमे इन पक्तियो के लेखक ने १६३७ से १६४८ तक अध्यापक-कार्य किया। परन्तु 'नवीन' जी के आरम्भिक स्कूली दिनो मे इन पंक्तियो के लेखक के अग्रज भाई और श्वसुर भी 'नवीन' जी के सहपाठी रह चुके है। 'नवीन' जी स्कूली विद्यार्थी के नाते बड़े नटखट, शरारती और मेधावी व्यक्ति थे, ऐसा मुझे पता चला है। उनके वे आरंभिक सस्मरण यहाॅ देना अप्रासगिक होगा। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के शब्दो मे १६३२ तक उनका जीवन यो बीता :

"मेरा जन्म ग्वालियर राज्य के शुजालपुर नामक परगने के मयाना नामक गाॅव मे हुआ था। मेरी माता कहा करती है कि गायो के बाॅधने का एक बाड़ा मेरे ताऊ जी के घर मे था। उसी मे अपने राम ने जन्म लिया। वहाॅ कई गायो ने बछड़े ब्याये होगे। मेरी जननी ने उसी गोशाला मे मुझे भी जना। मेरे पिता बहुत गरीब थे—निःसाधन, किन्तु भगवद्भक्त ब्राह्मण। अतः जन्म के वक्त सिवा थाली बजने के और कुछ धूमधाम न हुई। गाॅव का सादा जीवन, गरीबी और अर्थाभाव, ये मेरे चिर-परिचित मित्र है। जब मुझे कुछ होश हुआ तो मुझे इतना याद पडता है—मै कोई तीन साढ़े तीन वर्ष का रहा हूॅगा—कि मेरी माता मुझे गोद मे लिटाकर, मीठे-मीठे बिहाग के स्वरो मे अष्टछाप के पदो को गाकर मुझे लोरियाॅ सुनाती और सुलाया करती थी।

इसके बाद मैं कुछ और बड़ा हुआ। गाँव मे लड़को के साथ खेला करता था। मै कुछ बुद्धू-सा था। खेल मे जरा फिसड्डी रहता था।

फिर कुछ दिन गुजरे और चूकि मेरे पिता श्री श्रीमद्वल्लभाचार्य के वैष्णव-सम्प्रदाय के अनुयायी थे और उदयपुर-राज्यान्तर्गत वैष्णवो के प्रधान तीर्थस्थल श्रीनाथद्वारा चले गये थे, अतः मेरी माता मुझे लेकर नाथद्वारे चली गईं। नाथद्वारे मे मैं काफी दिनो रहा। पर वहाॅ पढ़ाई का कोई इन्तजाम नही था। मेरी माता दूरदर्शिनी हैं। उन्होने पिताजी से कहा कि लड़का यहाॅ आवारा हो

जायगा। वे मुझे लेकर ग्वालियर-राज्य के शाजापुर नामक कस्बे मे चली आई। यह स्थान राज्य का एक जिला है। यहाँ हिन्दी-अँग्रेजी मिडिल स्कूल है। यही पर जीवन के कोई ग्यारहवें वर्ष मे मेरी शिक्षा का क्रम प्रारम्भ हुआ।

मेरे परम सौभाग्य से मुझे यहाँ मेरे पिता के पुरातन मित्र सेठ भगवानदास जी झालानी के परिवार का आश्रय मिल गया।

मेरे परिवार के लोग चार आने महीने के मकान मे रहते थे। फिर शायद आठ आने महीने के मकान मे रहने लगे। बरसात मे मकान टपकता था। रात-भर सोना दूभर था। मै खूब खाता था। कुछ दूध की जरूरत भी महसूस होती थी। पर दूध के लिए पैसे कहाँ से आवे ? तब माताराम ने लोगो का अनाज पीसना शुरू किया। इससे जो पैसे मिलते थे, उससे मैं दूध पीता था। पैरो में जूते पहनना एक आराम-तलबी समझी जाती थी। इसलिये बन्दा नगे पैरो रहता था।

कपडो की भी ऐसी कोई इफरात नही रहती थी। पैबन्द लगे कपडे पहनना और साल मे सिर्फ दो धोतियो पर गुजर करना एक मामूली और बिलकुल स्वाभाविक बात थी। किताबे कुछ खरीदी जाती थीं और कुछ माँग ली जाती थी। इसी तरह जीवन के ये बरस बीते।

शाजापुर से अग्रेजी मिडिल पास करने के बाद मैं हाई-स्कूल की शिक्षा के लिये उज्जैन चला आया। यहाँ पर माधव कालेज नामक एक शिक्षा-सस्था मे मेरी शिक्षा होने लगी।

पाठक पूछेंगे कि मै पढने में कैसा था। साफ बात यह है कि पढाई-लिखाई में मै निहायत साधारण और थर्ड क्लास था। स्मरण-शक्ति बहुत मामूली, परिश्रम का माद्दा कम। कुछ सपने देखने का और हवाई किले बनाने का आदी। कम्बख्ती है कि आज तक यह आदत नहीं छूटी। सन् १९१६ ई० में, जब मै दसवे दर्जे मे था, उस साल लखनऊ में काग्रेस होनेवाली थी, जिसमे नरम और गरम, दोनो दल, मिल बैठने का निश्चय कर चुके थे, मैं लखनऊ काँग्रेस मे शामिल हुआ था।

मैट्रिकुलेशन परीक्षा के बाद नतीजा आया और मैं पास हो गया। अब आगे पढने की सूझी। सोचा, चलो, कानपुर चले और पढें; पिता के पास तो कुछ था नही, जो कालेज का खर्चा दे सकते। इसलिये मैंने स्वावलम्बी होकर पढने की ठानी। मैंने अपना बिस्तर बाँधा, ट्रङ्क में कुछ किताबें भरी और कानपुर का टिकट कटाकर चल दिया। आज मैं जब पीछे की ओर घूमकर

देखता हूँ तो यह पाता हूँ कि मेरे जीवन मे लखनऊ काग्रेस की मेरी पहली यात्रा और परीक्षा के बाद कानपुर की यह दूसरी यात्रा बहुत महत्त्वपूर्ण साबित हुई। उन्होने मेरे जीवन का प्रवाह एकदम बदल दिया। पहली यात्रा मे गणेशजी, माखनलाल जी आदि गुरुजनो के दर्शन मिले, उनसे परिचय हुआ। दूसरी यात्रा मे गणेशजी का आश्रय मिला, दुनिया को देखने का अवसर मिला और राजनीति तथा साहित्य मे थोडा-बहुत प्रवेश करने एव कार्य करने की प्रेरणा मिली।

गणेशजी मेरे लिए क्या थे, यह मै क्या बताऊँ? मुझे पन्द्रह वर्षो तक उनके चरणो मे बैठने का, उनके नेतृत्व मे काम करने का, उनकी प्रेरणा से कारागार की ओर अग्रसर होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मै इतना ही कह सकता हूँ कि उनके सदृश मुझे दूसरा आदमी आज तक देखने को नही मिला।

उन दिनो जब कानपुर आया तो मै खाता खूब था। चालीस-चालीस रोटियाँ उडा जाना बायें हाथ का खेल था। छात्रावास के सभी महाराजों के लिए मै जू-जू था। लोग मुझे अपने मेस (रसोईघर) मे लेते हिचकते थे। गणेश-जी ने ही मेरा सब प्रबन्ध किया। लिखने की ओर जो मेरी प्रवृत्ति हुई, उसका श्रेय भी पूज्य-चरण गणेशजी ही को है। यो तो बहुत पहले से लिखने की ओर रुचि थी, पर प्रेरणा गणेशजी की ही थी। अगर मै यो कहूँ कि उन्होने मुझे कलम पकडकर लिखना सिखाया तो अत्युक्ति न होगी।

असहयोग आदोलन मे बी. ए (चतुर्थ वर्ष) से कालेज छोडकर आने के बाद का मेरा जीवन तो बहुत कुछ प्रकट ही है। अतः उसके सम्बन्ध मे मै क्या लिखू? 'प्रताप' से मेरा जो सम्बन्ध है, वह शायद केवल पडित शिवनारायण मिश्र को छोडकर अन्य सभी से प्राचीनतम है।

पहली मर्तबा जब मैं डेढ वर्ष के लिए, सन् १९२१ के दिसम्बर मे, जेल गया, उसी समय मैने जेल मे अपनी 'विस्मृता ऊर्मिला' लिखनी शुरू की थी, जो बाहर आने पर ठप हो गई और जिसे मैने गत १९३२ की ढाई बरस वाली सजा मे पूरा किया।

"सन् १९३० की दो बार की जेल-यात्रा तथा १९३२ के लम्बे कारावास की एक कहानी है। पर अब न कहूँगा।"

बाद की कहानी साहित्य-जगत मे सुविख्यात है। 'नवीन' जी अपने काव्य-गुरु 'एक भारतीय आत्मा' की भॉति काव्य के प्रकाशन से सदा अपने

को बचाते रहे। परिणाम यह है कि बीस वर्ष पूर्व जो रचनाएँ छपनी चाहियें थीं, वे अब छप रही हैं। 'देर आयद, दुरुस्त आयद,' सिर्फ उन्हे ये सब वैज्ञानिक तर्क-चिता बहसवाली भूमिकाएँ कविता-सग्रह मे नही लिखनी चाहिएँ। उनके बिना भी उनकी काव्य रचना के आनन्द मे कमी नही आती। फिर क्यो यह वितण्डा ?

'नवीन' जी की सारी कृतियाँ शीघ्रातिशीघ्र प्रकाश मे आये, इस कामना से लेख समाप्त करता हूँ।

: १४ :

'निराला'

'निराला' का रेखा-चित्र शब्दो के चौखटे मे नही समाता। हिन्दी का यह अभिशप्त सूफी, यह मस्ताना फकीर, यह क्रान्तिकारी सौदर्यदर्शी, यह दार्शनिक सहृदय—सब विशेषणो के बाद भी विशेष्य है। 'अनामिका' का चित्रकार, साहित्यिक सन्निपात का शिकार, 'भारति! जय-विजय करे!' का क्लासिक गायक, व्यग की तीक्ष्ण अतिवास्तववादी चोटो से मर्मातक पीडा पहुँचाने वाला, आहत परन्तु दृप्त कवि, 'निराला'!

'निराला' के समूचे गठन मे एक तिक्त अनासक्तता है। एक अन्तर्करुणा। जैसे :

स्नेह-निर्झर बह गया है,
रेत-सा तन रह गया है।

'निराला' के दर्द की गाँठ कही गहरे मे है। उसका ऐसा ऊपरी-ऊपरी विश्लेषण कि 'निराला' को आर्थिक कष्ट रहे, प्रकाशको ने लूटा, स्त्री का प्यार नही मिला, वे देवियो की उपेक्षा-अपमान से उत्पीडित रहे, एक साथ सब परिवार प्लेग का शिकार हो गया, या कि उन्हे पर्याप्त यश और मान नही मिला, आदि सब व्यर्थ के और बिल्कुल ऊपरी कारण है। वास्तविक कारण कही और गहरे मे है। 'गीतिका' की भूमिका मे निराला जी लिखते हैं—'चूकि मै बाजार का नही बन सका, शायद सरस्वती ने इसीलिए मेरे स्वरो को बाजारू नही बनने दिया।'

निराला जी से मेरी पहली भेट लखनऊ मे हुई। भूसा मण्डी मे 'निराला' का तग, छोटा-सा मकान बडे कष्ट से मिला। अन्दर एक भव्य-वपु व्यक्ति तहमद

पहने सो रहे थे, पढ रहे थे। जगे, बडे प्रेम से स्वागत किया। आले मे एक बोतल रखी थी उसे खोल कर सुरती निकाली, मल कर फाँकते जाते थे, आँखो मे विषाद और ओज का अजब मिश्रण था! गर्दन हिलाते तब लम्बे बाल अभिनेताओं की भाँति हिलते। रवीन्द्रनाथ की 'सूरदास' कविता सुनाई। अपने गद्य के अवतरण भी सुनाते जाते। 'गीतिका' के 'नयन से नयन बँधे' वाले गीत की विशद व्याख्या की और बीच-बीच मे ब्राउनिंग, कालिदास, माईकेल और गालिब के उद्धरण सुनाते जाते। वे उनके कमरे मे बिताये छः घण्टे, एक अविस्मरणीय साहित्यिक दावत थी।

निराला जी से दूसरी भेंट मेरठ साहित्य-परिषद् मे हुई। वे होमवतीजी के यहाँ ठहरे थे। एक साथ दो-दो रसगुल्ले मुँह मे भर कर खाते जाते और कोई नर्म परिहासमयी बात कह कर कहकहा लगाते। बंगाल के कलामय वातावरण की छाया में पले-पनपे, नियति के निर्मम व्यंग के शिकार इस कलाकार मे, लखनऊ की नफ़ासत का भी रंग चढ़ा था। मुझसे सूफ़ी कवियो की महत्ता की बात की। जब मैंने उनका एक स्केच बनाया, तो बोले: "यह तो विक्टोरिया रानी की-सी शक्ल बन गई।" रामविलास शर्मा तब पास ही बैठे थे। बोले—"निराला जी, ओठ तो कुछ वैसे ही है, डील-डौल चाहे हाथी का-सा हो!"

निराला जी से मुक्त छन्द पर भी बहुत विस्तार से चर्चा हुई। वे बंगला के स्वर-आलोडन को खड़ी बोली मे असम्भव बताते थे। इसीलिए उनका कहना था कि केवल घनाक्षरी ही उसके अनुकूल थी। नये कवियो मे वे तब शिवमंगल सिंह 'सुमन' को बहुत प्रेम करते थे, और गिरिजा कुमार माथुर को भी खासा होनहार मानते थे। तब तक 'निराला' पूर्ण स्वस्थ थे, तन से और मन से। तेजयुक्त, दीप्त और संभ्रांत गम्भीर।

सात वर्षो का व्यवधान बड़ा व्यवधान होता है। इस बीच मे एक विश्वव्यापी महायुद्ध घटित हो गया। 'निराला' वह निराला न रहे। मै १६४८ में राहुल जी के साथ शासन शब्दकोष का कार्य कर रहा था। सत्यनारायण कुटीर मे ठहरा था। राहुल जी पहाड़ चले गये थे। एक दिन शाम को वहीं आनन्द जी, श्री कृष्णदास, शमशेर और मै बैठे कुछ विचार कर रहे थे, कि सहसा उधर से 'निराला' आ गये। उनके साथ मे गले मे माला पहने गंगाप्रसाद पांडेय थे, 'निराला' ने जो माला पहनी थी सो उन्हे दे दी थी। वे राहुल जी से मिलने आये थे। सुना—नही हैं, तो आनन्द जी से बातें करने बैठे। अब

बाल छूट गये थे, बदन की कसावट कुछ ढीली-सी हो गई थी। आँखों में वह दर्पोन्नत सिंह का-सा निश्चिन्त आत्मविश्वास मन्द होकर, एक आतंक को अमान्य करके भी, उसकी सत्ता से तंग शरविद्ध हिरण की-सी आर्तता आ गई थी। बोले : "मैंने यूरोप के सब इलिस्टेशन देखे हैं। आल्प्स पर हमारा डेरा था। गेटे से मैंने बातें की थीं। मगर वहाँ का पानी हमें पसन्द नहीं। राहुल जी चले गये। अच्छा फिर मिलूंगा।" किसी ने कहा—"पन्त जी भी परसों जाने वाले हैं।" निराला बोले—हाँ, मैं भी जाता, पर वहाँ का पानी हमें माफिक नहीं आता। हमें यहीं अपना हिसाब-किताब करना है। जनता दुखी है, गोली चल रही है। पर हम तो सन्यासी हैं। अच्छा चलें।" शमशेर और पांडेय को साथ लिये वे चल दिये। वही मस्तानी झूमती चाल, वही उन्नत भाल, परन्तु कपड़े फकीरों-से, बाना कैदियों का-सा। मानो युग की मेधा अब गुर्राती नहीं, परन्तु भुनभुनाती चली जा रही थी।

१९४९ के वर्षाकाल में इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के हाल में खचाखच भीड़ थी। कालेज के छात्र और छात्राएँ 'बच्चन' के प्रणय-गीतों की आतुरता से राह देख रहे थे। और कवि जम नहीं पाते थे। 'निराला' अध्यक्ष थे। वही गेरुआ तहमद और ऊपर एक दुपट्टा। सर्दी में भी नंगे बदन। दाढ़ी कुछ-कुछ रुपहली बेतरतीब बढ़ी हुई। अन्त में उनकी बारी आई तो बोले—"ये यूनिवर्सिटियाँ हमारी बनाई हुई हैं। मैं अभी घाव की चोट खाकर लौटा हूँ। सिर पर यह निशान बाकी है! अब हमारी जवानी नहीं रही, नहीं तो मैं आपका मनोरंजन करता। फिर भी सुनाता हूँ!" कह कर, उन्होंने दो-तीन बहुत मधुर गीत सुनाये। बीच-बीच में व्याख्या करते जाते।

कवि-सम्मेलन समाप्त होने पर विद्यार्थियों को कुछ गद्य में लम्बा-सा सन्देश लिख दिया। चाय पर 'बच्चन', डा० सत्यप्रकाश और मैं उनके साथ थे। मैंने कहा : "निराला जी, सर्दियों में कुछ पहन तो लिया करें।" उसी तरह गर्दन को झटका देते हुए बोले—"आर्थिक प्रश्न रहता है। हमें हिसाब-किताब करना बाकी है। परन्तु कालिदास की उक्ति के सहारे जी रहे हैं।" उन्होंने कई श्लोक सुना डाले। फिर 'बच्चन' की ओर देख कर बोले : "अब दस-बीस बरस आप ही के हैं। आपका बहुत अच्छा रंग जमा है। यूनिवर्सिटी, आपकी है।" तब 'बच्चन' जी बोले—"निराला जी आप तो यूनिवर्सिटी के क्या, 'यूनिवर्स' के कवि हैं!" फिर निराला जी स्वागत भाषण में निमग्न हो गये उसी तरह बुदबुदाते, आँखों में वही नियति आहत पुतलियाँ।

अब की वार सम्मेलन भवन मे निर्मल जी ने जल-पान का आयोजन किया था। निराला जी ने वहीं एक छोटा-सा भाषण दिया : "मेरे सिर मे घाव हो गये है। अभी बहुत लडाई बाकी है। आप सब लोग हिन्दी भारती की जो अभ्यर्थना कर रहे है, वह बहुत गौरवमयी है। अब हम तो मदान से अलग हो गये है। अब वह गीतो का यौवन नही रहा, फिर भी सुनिये। इसमे बगला के अमात्रिक छन्द को मात देने वाला हिन्दी छन्द ढाला गया है। लीजिए!" और निराला जी ने 'जागो फिर एक बार' नामक ओजस्वी रचना सुनाई। सुनाते-सुनाते 'गीता है, गीता है' कहते समय उठ खडे हुए। एक रोमन पुतले की तरह उनका उत्तरीय उनके बॉये कधे से उतर झूल रहा था। हाथो की मुद्राएँ और भगिमाओ से वे कविता के भाव को और भी स्पष्ट करते जाते थे। इतनी बडी कविता एक सॉस मे सुना गये। सम्मेलन भवन मे समा बॅध गया।

१९५० मे, राहुल जी एक दिन निराला जी से मिलने ससद् भवन, रसूला-बाद मे गये। मै भी साथ मे था। निराला जी सन्यासियो की-सी भगवा पोशाक पहने अकेले इधर से उधर घूमते थे। बीच बीच मे अपने-आप हो बोलते जाते। ठिठक कर दूर तक के रजत बालुका विस्तार की ओर देखते, जहाँ आकर जीवन की धारा सूख-सी गई है।

राहुल जी को देख कर बहुत खुश हुए। आतिथ्य के लिए आकुल हो गये, चाय बनवाई। पाडेय जी उधर से आ ही गये थे। बडी पुरानी-पुरानी स्मृतियाँ उन्हे याद आ गयी। उनकी स्मृति बहुत अच्छी है।

फिर एक दिन और ऐसे-ही कुछ काम से ससद मे 'अज्ञेय' के साथ निराला जी से मिलने गया। दो-तीन घण्टे एकान्त मे बिताये। निराला जी अग्रेजी मे बोलते जाते थे। कहने लगे : "टी एस. ईलियट मुझसे मिलने आया था। अच्छा लिखा है। उसकी बात मे रूखापन है। कचोट है।" फिर मुक्त छन्द की चर्चा करने लगे। बोले : "इधर हिन्दी मे क्या लिखा जा रहा है, मुझे पता नही है। परन्तु अब तो हमारे 'रिटायर' होने का समय आ गया। अब तो बस तुम लोगो की ओर आशा से देखते है।"

उस दिन वे बहुत उद्वेलित जान पड़ रहे थे। पैर जोर-जोर से हिलाते जाते थे और बाद मे वे जल्दी ही संसद छोड कर दारागज चले गये। उन्हे माघ मेले के विराट् जन-विस्तार मे अधिक शान्ति मिली। 'निराला' आज कुछ साधारण-जन से भिन्न हो गये हो, फिर भी वे मूलतः जन-जन के कवि है।

६ फरवरी १६५१ को मैं दारागज मे गगा नहाने जा रहा था। राह में अलोपी बाग के मोड पर डाक्टर उदयनारायण तिवारी के घर निराला जी बैठे अखबार पढ रहे थे। वही भगवा तहमद, वही बढ़ी-सी दाढी, बेपरवाह मुद्रा! मैंने ताँगे से उतर कर प्रणाम किया। मेरी भुजा की मछली छुई, बोले : "वजन कितना है?" मैंने पूछा : "यहाँ की गगा अच्छी लगती है या रसूलाबाद की?" न-जाने क्या सोच कर अग्रेजी मे बोल उठे—"माई माइड वाज नॉट ट्रॉक्विल देयर।" (मेरे मन को वहाँ शान्ति नही थी।)

२८ अप्रैल १६५१ की रात को गगा की रेणुका पर ससद भवन के सामने मैथिलीशरण जी गुप्त की अध्यक्षता मे कविवर 'दिनकर' को साहु-पुरस्कार दिया गया। तब निराला जी की इतने साहित्यिको के बीच मे स्वाभिमान भरी भाव-भंगिमा देखी। कोई बीस वर्ष बाद, डा० हेमचन्द्र जोशी से मिल रहे थे। उन्हे अपने हाथो चाय बना कर दी। बीच मे सुरती मलकर फॉकते जाते और अंग्रेजी मे बोलते जाते। भाषण मे आरम्भ बहुत ठिकाने से किया, फिर ए. आई. सी. सी. की बातो मे खो गये। बाद मे उपाहार के वक्त, महादेवी जी के पास बैठे थे। मै पास था। पकौड़ी आई। मैंने कहा : "निराला जी लीजिये।" उत्तर मिला "तेरे लिए छोडी मैंने बामन की बनाई हुई घी की कचौडी।"

'निराला' की कविता

नवीन हिन्दी कविता-धारा के प्रधान उन्नायकों में से एक है निराला। खड़ी बोली की कविता ने, जब इतिवृत्तात्मकता की लोक-लीक छोडी, सदाचार और ब्रह्मचर्य पर पद्यबद्ध निबध लिखने की अपेक्षा जब उसने 'स्वच्छन्दतावाद' (जैसे पं० रामचन्द्र शुक्ल 'रोमांटिसिज़्म' को अनूदित करते है) को अपनाया, तब हिन्दी काव्य की प्रतिभा तीन मुखो से फूट उठी—प्रसाद, पत, निराला। प्रसाद ने हिन्दी काव्य के शिवतत्त्व की रक्षा की, पत ने उसे 'सुन्दर से सुन्दरतर और सुन्दरतर से सुन्दरतम बनाया, निराला ने काव्यगत सत्य की प्रतिष्ठा की। निराला आरम्भ से ही प्रसाद की भाँति अतीत प्रेमी न थे और न उन्हे शाक्तो की 'मधुमती भूमिका' से ही कोई प्रयोजन था (देखिये, विश्वनाथ प्रसाद जी की 'कामायिनी' के दार्शनिक सिद्धातो पर 'वाङ्मय विमर्श' में चर्चा)। ये पत की भाति केवल सौदर्य-लुब्ध विहग शावक, ऑस्कर वाइल्ड की भाषा मे निरे 'एस्थीट' भी नही थे। पत और निराला के अन्तर को उन्होने 'प्रबध-पद्म' के विस्तृत निबध 'पत और पल्लव' मे तथा 'मेरे गीत और मेरी कला' में विशद रूप से

स्पष्ट किया है। प्रसाद के आँसू, झरने की भाँति 'प्रसाद' गुण की रक्षा करते रहे, पत ने माधुर्य को सवारा, 'निराला' ओजगुण की प्रतिष्ठापना नई कविता मे करते रहे। अपने अजब फक्कड़पन के साथ, कबीर का अटपटापन और भूषण की हुँकार मिलाकर 'निराला' ने ललकार दी—'जागो फिर एक बार।' 'ऐ विप्लव के प्लावन.. अट्टालिका नही है रे आतक भवन' 'राजा शिवाजी का पत्र' भी उसी परुष तार-सप्तक मे है, जिसमे रवीन्द्रनाथ का 'बंदा बीर' या नवीनचन्द्र सेन का 'पलाशीर युद्ध' या परावर्ती कवियो मे काजी नजरुल इस्लाम का 'विद्रोही'।

निराला बगला से हिन्दी मे आये। साथ मे रामकृष्ण परमहस का वेदात, रविबाबू की सौदर्य-पूजक दृष्टि (दोनो की सद्यस्नाताए तौलनीय है), विवेकानन्द का स्वस्थ राष्ट्र-प्रेम और बकिमबाबू की चुटीली व्यग-परिहासमयी गद्य शैली भी लेते आये। अब भी कभी-कभी, वे बगला मे पद्य-रचना कर लेते हैं (यथा 'अणिमा' मे, विजयलक्ष्मी पडित के प्रति)—परन्तु, हिन्दी की नई कविता को उन्होने जीवन सौप दिया। बैसवाडे का यह पहलवान जैसे डील-डौल वाला किसान महिषीदल राज्य की काली का पुजारी बनकर, बगाल की सूक्ष्म कला-प्रिय सस्कृति से अस्पृष्ट कैसे रह सकता था ? 'समन्वय' उसकी आरम्भिक जीवन प्रणाली थी। 'दगा की इस सभ्यता ने दगा की' का पाठ तो वह बहुत देर बाद सीखा।

'परिमल' निराला का प्रथम पद विन्यास है। उसकी भूमिका मे, जैसे 'गीतिका' मे बाद मे, मुक्त-छन्द की उन्होने युक्तिपूर्ण हिमायत की है। ग्रथ तीन भागो मे विभक्त है, तुकात, अतुकात और मुक्तवृत्त मे। तुकात कविताओं मे यमुना, विधवा, 'तुम और मै' पर्याप्त लोकप्रियता और आदर प्राप्त कर चुकी हैं। 'तुम और मैं' के उपमानो की झडी पर तो कई पैरोडियाँ भी निकल चुकी। तुम और मैं जैसी शृगार-मिश्रित, दार्शनिक पुट ली हुई रचनाओ मे भी 'निराला' की प्रगतिशील वृत्ति के बीज वर्तमान थे।

तुम अम्बर, मैं दिग्वसना।
तुम चित्रकार घन पटल श्याम,
मैं तडित्तूलिका रचना॥

या 'तुम शिव हो, मै हूँ शक्ति' आदि। द्वितीय भाग मे तथा तृतीयभाग मे उनकी वे अमर रचनाएं है, 'वह आता, दो टूक कलेजे के कर जाता', 'फिर एकबार तू नाच अरी ओ श्यामा,' 'सामान सभी तैयार' 'जुही की कली', 'बादल

राग', पचवटी प्रसंग, जागो फिर एक बार, महाराजा शिवाजी का पत्र आदि। उसी समय निराला की तीनो वृत्तियाँ 'परिमल' में भी स्पष्ट परिलक्षित हो रही थी। (१) दार्शनिक गीत-रचना प्रवृत्ति—'जो जो आये थे, चले गये।' (२) सौंदर्य-लक्ष्मी वर्णन प्रिय प्रवृति—'जुही की कली।' (३) राष्ट्रीय भावो से युक्त ओजमयी शैली जागी 'फिर एक बार।'

'परिमल' का पचवटी प्रसंग मैथिलीशरण गुप्त की पचवटी से तौलनीय है। 'निराला' ने उसी घटना को नाट्य गीतात्मक रूप दिया है, मैथिलीशरण ने केवल प्रसंग वर्णन प्रबन्ध खड की भाति किया है। 'निराला' ने उसे आधुनिकता का आभरण पहिनाने की कोशिश की है। राम, जानकी, लक्ष्मण, शूर्पणखा के मनोभावो में गहरे उतरने की भी। 'निराला' भी राम-भक्त है और गुप्त भी। परन्तु, निराला के मन मे 'राम की शक्ति पूजा' समाई हुई है, तो गुप्त, राम के अपेक्षाकृत मधुर और लोक मगलकारी रूप की ही आराधना करते हैं। 'मगलघट' मे मैथिलीशरण जी की तुलसीदास के प्रति कविता है, वह और निराला के तुलसीदास को तौलने से दोनो के दृष्टिकोण का अन्तर स्पष्ट हो सकता है।

वस्तुतः, 'निराला' की कविता मे, स्वयम् उनके रचे 'मतवाला' पत्र पर अंकित दो पक्तियो के समान, अनेक विवादी-सवादी स्वरो की विमोहिनी 'हार्मनी' है :

अमिय-गरल शशि-सीकर-रविकर
राग-विराग भरा प्याला।
पीते हैं जो साधक उनका
प्यारा है यह मतवाला॥

कभी वे अत्यधिक अनुरक्ति के भावो की व्यजना करते है, कभी उनकी रागात्मिका अनुभूति, निर्वेद से सश्लिष्ट जान पडती है। 'मेरा अन्तर वज्र कठोर, देना तुम जीभर झकझोर' कहकर वे 'वज्रादपि कठोराणि मृदुनि कुसुमादपि' का निर्वाह करते जाते है। एक महाकवि के समान आपकी रचनाओ मे वैविध्य तो है ही, साथ ही, रूढि-प्रियता और प्रयोगशीलता का अभिनव सघर्ष भी है, जिसके कारणवश, आपकी रचानाओ मे 'प्रेषणीयता' की कमी पाठको को खलती है। क्या कारण है कि जो व्यक्ति 'काले-काले बादल छाये, न आये वीर जवाहरलाल' जैसी सुन्दर 'कजरी' लिख सकता है, वह बगाल के अकाल जैसे दुद्धर्ष प्रसग पर 'मिट्टी की डली शकरपारा हुआ' लिखे ? 'पाचक' (बगदर्शन मे प्रकाशित कविता, जिसकी चुटकी 'उग्र' ने पाचक लिखकर ली) ऐसे ही, अनेक मनोभावो

को एक छोटी-सी जगह मे compress कर देने की वृत्ति के कारण दुरूह बनी रचना है। कहीं, कबीरादि की उलटबासियो की भाँति, दुरूहता तो कुछ बुद्धि पुरस्सर, जानबूझकर 'अपनाते से' दीखते है—जैसे राम की शक्तिपूजा के आरम्भिक प्रलंबित सामासिक अश। टी. एस. इलियट ने काव्यगत दुरूहता के सम्बन्ध मे 'कविता के उपयोग' निबन्ध मे कहा है कि, 'कविता मे कठिनता तीन चार कारणो से उत्पन्न हो सकती है। एक तो, स्वयम् स्पष्टतया अपनी बात न कह सके, दूसरे, वैलक्षण्य के मोह से या जैसे 'रसाल'ने उद्धव-शतक की भूमिका मे 'उक्तिचमत्कार' को महत्त्व दिया है, तीसरे, आलोचक अनावश्यक रूप से कवियो को 'कठिन' करार दे देते है, चौथे, कुछ पाठक पूर्वग्रह दूषित होते है कि यह कवि तो दुरूह कविता लिखते ही है। कविता मे बुद्धिगम्यता कोई दोष नहीं। कविता कोई हलुवा नही, जो सीधा-सच्चा बिना आयास आपके हलक मे उतरता जाय। जैसे—बच्चन के या सोहनलाल द्विवेदी के बालसुलभ गीत। प्राचीन कवियो मे, नैषध या रामचद्रिका या ज्ञानेश्वरी या कुछ अशो मे शेक्स्पीयर की रचना भी बुद्धिगम्य है—इस कारण वे उच्चकोटि की काव्य-रचनाए नहीं, ऐसा कौन कहेगा? वैसे अति भावुकता के छायावादी युग मे, यह मान चल पडे कि कविता ऐसी हो, जो अल्प-बुद्धि वाले या बुद्धि को कष्ट न देने वाले के भी सहज पल्ले पड जाय—परन्तु मेरे मत से यह कविता को बहुत घटिया बना देने वाली बात है। उच्च-सगीत जैसे जानकार ही समझ सकते है, उच्च-कोटि की चित्रकला (विशेषतः गोपा, पिकासो आदि आधुनिकों) को समझने के लिए, विशेष प्रकार की दृष्टि आवश्यक है, वैसे ही, कवि-कर्म इतना सुलभ नहीं कि कोई भी मिडिल या मैट्रिक का लडका उठा और अपने-आपको महाकवि समझने लगा, दो-चार गीत इधर-उधर छपाकर। दण्डी ने कवि-कर्म मे भी, इसीलिए, प्रतिभा, अध्ययन, मनन तथा अध्यवसाय की आवश्यकता मानी थी। अस्तु, 'तुलसीदास' काव्य की टिप्पणियाँ या 'गीतिका' के शब्दार्थ हो या न हो, इसके सम्बन्ध मे एकमत्य नहीं हो सकता। औडेन के नवीनतम 'न्यू इयर लेटर' मे कविता छोटी परन्तु, टिप्पणियाँ बहुत बडी दी गई है। जन-काव्य के इस युग मे जहाँ कविता के भाव और भाषा अधिकाधिक जन-सुलभ हो ऐसी माग की जाती है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि कला को व्यवसाय बना दिया जाय, अभिरुचि सस्ती और फूहड और साहित्य को इस प्रकार अपनी इयत्ता से अप्रतिष्ठित। इलियट के 'डिफिकल्ट' पोएट्री निबन्ध के अन्त मे, पद्य और गद्य की मर्यादाए सीमा-रेखाए निश्चित की गई हैं। इलियट के अनुसार, एक भाषा-भाषी जब दूसरी

भाषा मे लिखता है तो उसका अपकार नहीं प्रत्युत अनेक दृष्टियो से उसपर उपकार ही करता है—उस भाषा मे नये-नये शब्द प्रयोग तथा मुहाविरे देखकर, उसी प्रकार से पद्य मे गद्यात्मकता लाने से एक नया रस उत्पन्न होता है। परन्तु अभी तक दोनो बातो को, हिन्दी मे साहित्य के लिए हितकारी समझने वाले थोड़े ही हैं। कविता मे गद्यात्मिकता (जैसे 'निराला' की नये पत्तो की रचनाओं मे) को, कविता के पाठक तो ठीक, आलोचक तक सहन नहीं करते। उन्हे उत्तम उत्तर, केदारनाथ अग्रवाल ने 'पारिजात' के नवीन अक मे, काव्य-चिंतना मे दिया है।

But poetry has as much to learn from prose as from other poetry, and I think that interaction between prose and verse, like the interaction between language and language, is a condition of vitality in literature (T S. Eliot)

'निराला' की कविता पर दुरूहता और गद्यात्मकता का आक्षेप लगाने वाले, उनकी अपेक्षाकृत सरल रचनाए तथा गीत नहीं पढते, या जानबूझकर उन्हे टाल जाते है, ऐसा कहना बुरा जान पडता है। सरलता का अर्थ सहजता नहीं, और न गीत का केवल मधुर शब्द-जाल ही। 'छंद की बाढ, वृष्टि अनुराग भर गये वे भावो के झाग' से छूटने के लिए, निराला प्रखर स्वर मे कहते है—'तोडो-तोडो कारा, पत्थर की, निकले फिर गगा जल धारा।' यह युग की गा रूढियो के बध तोडना चाहती है। 'नव गीत नवलय, ताल-छन्द नव, नवलकंठ, नव जलद मद्रनव, नव नभ के नव विहग वृन्द को नव-पर नव स्वर दे!' यह उनकी कामना है। परन्तु वे केवल नवीनता के लिए नवीनता नहीं लाना चाहते।

प्रत्येक नवीन वस्तु को—साहित्य मे नवीन शैली या रचना प्रयोग को तो विशेष रूप से विरोध-सहन करना ही पडता है। प्रस्तुत लेख के लेखक ने अपनी नई कविताए जब 'विशाल भारत' मे इम्प्रेशनिस्ट' सबोधन से प्रकाशित की, तो रूढ़िवादी अखबार काँव-काँव कर उठे। काव्य का 'क' भी न समझने वाले सपादक, गिद्धा से टूट पडे। 'वीणा' ने मेरी एक कविता पर सम्पादकीय में छः महीने तक मुझे गालियाँ दीं। खैर, यहाँ ब्लैकवुड 'मैगजीन' की टीका से डर जाने वाले कीट्स की-सी नजाकत तो हमने पाई नहीं, मैंने विस्तृत प्रत्यालोचना भेजी। तब के वीणा संपादक ने उसे छापा नहीं। इतना ही नहीं वरन्

अध्ययन पूर्वक लिखा वह लेख हजम कर गये। यह तो है सपादकों का 'काव्य-प्रेम!' निराला पर भी प्रहार हुए। वे डगमगाये नहीं। परिणाम यह है कि निराला का मुक्त छन्द और राम की शक्ति पूजा की शैली (मेरे अपने क्षुद्र नम्र प्रभाववादी प्रयोगों की भॉति) हिन्दी काव्य में रूढ हो गये, उन पूर्व-ग्रह दूषित, व्यक्तिगत आलोचनाओं को साहित्य के जानकार और विद्यार्थी भूल गये। अतः विरोधों से, साहित्य की प्रगतिवादी स्वरधारा डगमगाती नहीं, न रुकती ही है। वह साहित्य के इतिहास की अनिवार्य गति-लय है।

'निराला' के तुलसीदास पर लिखने के लिए विस्तृत अवकाश तथा विशाल कैनवास चाहिए। इस छोटे लेख में वह सभव नहीं। 'हिमालय' के अक मे आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री की, 'तुलसीदास' काव्य पर समीक्षा, रसिक पढे। मै 'गीतिका' और 'अनामिका' पर आता हूॅ। 'गीतिका' मे जुही की कली वाले निराला का निखार है। शब्दों की पच्चीकारी है, सु-वर्ण मयी मीनाकारी, वर्ण चमत्कार—विस्तार को विस्तार दिये जा रहा हूॅ मै' (बेला)। शृगार, शात रस, करुणा सभी भाव-भगिमाए गीतिका मे है। 'अनामिका' मे फिर निराला के विविध स्वर प्रस्फुट है। 'वनबेला' आदि मे तीखी व्यगमयी शैली 'सरोज-स्मृति', 'हिन्दी के सुमनो के प्रति' आदि में आत्मकथात्मकता (आटोबायोग्राफिकल एलिमेंट) 'राम-रावण का अपराजेय समर' मे अभिजात (क्लासिकाल) शैली, 'वे किसान की नई बहू की ऑखे', और 'तोडती पत्थर' आदि मे अस्पष्ट प्रगतिवादी स्वर। 'निराला' की कविता मे राष्ट्रीय भावधारा प्रत्यक्ष 'माइक्रोफोनी' या प्रचारात्मक 'झंडावादी' या 'नारावादी' कविता बनकर नहीं आई। भारत के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक जीवन के, उसकी उथल-पुथल के, बहुत सूक्ष्म और अप्रत्यक्ष प्रभाव सूत्र निराला की रचना मे विद्यमान है, जो 'अनामिका से परावर्ती' कविता मे बहुत स्पष्ट है।

'कुकुरमुत्ता' से निराला की कविता-धारा मुडी। कुछ ठिठकी, अटकी, खिलखिलाई, फिर दौड पडी, किलकारी भर, वन्य उत्स-सी, छलाग भरती हुई! लोग कहने लगे, 'महाकवि निराला पागल हो गया', कविता लिखते है या ऊल-जलूल। उसकी समझने की शक्ति युग के, जीवन की दुराराध्य, क्षिप्र प्रमाथी गतिमानता को नहीं ग्रहण कर सकी। निराला की प्रतिभा आगे निकल गई। लोग वही ठिठके खडे थे। उन्हे चाहिये थे वही समस्यापूर्ति के 'टप्पे' के सिनेमाई तर्जो मे या नक्की सुरो गाये गये सस्ते गीत, या फिर ध्वसवादी कविता की कुश्ती के दावों-सी उखाड-पछाड।

वे यह समझने मे असमर्थ थे कि कवि भी सामाजिक प्राणी है, उसका भी लोक-जीवन मे कुछ दायित्व है। जमीदार के शोषण के विरोध में जब निराला किसानो की जागृति के चित्र खींचते है तो वे व्यर्थ आपको चोकाने के लिए या अपने-आपको राष्ट्रीय कवि कहकर अखबारी वाहवाही लूटने के लिए नहीं लिखते। जो वेदना उन्हें एक विधवा के प्रति चुप नहीं रहने देती थी, वही आज बरबस महगू, हलकू, लुकुआ, झींगुर आदि पात्रो के प्रति फूट उठती है। 'निराला' का प्रगतिवाद अवसरवादिता नहीं, उनके पुराने व्यक्तित्व का ही एक सस्कारी, प्रगतिशील, स्वाभाविक रूप है। जैसा कई महानुभाव (और विशेषकर साहित्य को काट-काटकर देखने वाले अध्यापकगण) सोचते है 'निराला का कवि विकृत नही हुआ है, न गिर रहा है, वह तो उठ रहा है, 'तुलसीदास' काव्य की 'वह जागा' की भाँति।

'बेला' और 'नये पत्ते'

निराला अपनी हर किताब के साथ कुछ 'निरालापन' लेकर आये : 'परिमल' मे मुक्तछद, 'गीतिका' मे नये ताल, 'तुलसीदास' मे रहस्यवादी खडकाव्य; 'अनामिका' मे 'राम की शक्ति-पूजा', 'अणिमा' मे 'विजय लक्ष्मी पंडित के प्रति'; 'बेला' मे गज़ले, 'नये पत्ते' में आधुनिकतम शैली की व्यंग-हास्यभरी रचनाएँ।

'बेला' मे जो छद प्रयुक्त है, उर्दू की बहरो के वजन पर जो 'वर्ण-चमत्कार' निराला ने कर दिखाया है, वह सभी जगह सफल नहीं है। परन्तु मराठी कविता मे जिस प्रकार 'माधव-ज्यूलिन्' (जो कि स्वयम् फारसी के अध्यापक थे) ने उर्दू छद-शास्त्र से 'गज्जलो' के अनेक प्रकार लाकर "गज्ज-लाजली' लिखी, उसी प्रकार निराला का यह प्रयोग है। निराला की संगीत-वृत्ति सूक्ष्म होने से गजल के वे वार्णिक रूप जो हिन्दी मे पहले से ही 'भुजगी' या 'मदारमाला' या 'चामर' छद के रूप मे प्रचलित थे, निराला ने नहीं लिये। रुबाई भी इसीलिए जैसे छोड-सी दी। उर्दू छद गजल, गुजराती कवि 'कलापी' ने भी लिये है—'ज्यो ज्यो नजर मारी ठरे, यादी भरी त्या आपनी !' और उसी छद मे 'माधव ज्यूलियन्' की प्रसिद्ध उक्ति :

येथें स्थिरेना चारुता, बांधू कशाला गेह मी
हुडकीत चारू गभीरता, हिंडेन भूवा नेहमी

और तीन अंतिम मात्रा कम कर निराला का यह छंद (बेला, पृ० ८५)—

संकोच को विस्तार दिये जा रहा हूँ मैं
छन्दों को विनिस्तार दिये जा रहा हूँ मैं।

निराला की छद के मामले मे इस प्रयोगशीलता की तारीफ 'दिनकर' ने अपनी नई किताब 'मिट्टी की ओर' मे पृ० १११ से ११५ तक की है। 'दिनकर' के ही शब्दो मे 'छदोबध से कविता को मुक्त करने वालो मे निराला जी सर्व-वरेण्य है और हिन्दी-साहित्य के इतिहास ने इसका सुयश भी उन्हे ही दिया, जो योग्य भी है। कारण चाहे जो भी हो, किंतु निराला जी ने छन्द के क्षेत्र मे जितना काम किया उतना उनके किसी भी समकालीन कवि से नहीं बन पडा। बदनाम तो निराला जी इसलिए हुए कि उन्होंने छन्दो का बधन तोडकर उसका निरादर किया, लेकिन किसी ने अब तक भी यह नही बताया कि नये भावो की अभिव्यक्ति के लिए छन्दो का अनुसन्धान करते हुए उन्होने कितने पुराने छन्दो का उद्धार तथा कितने नवीन छन्दो की सृष्टि की है। अपनी लय चेतना के बल पर बढते हुए उन्होने तमाम हिन्दी-उर्दू छन्दो को ढढ डाला है, तथा कितने ही ऐसे छन्द रचे है जो नवयुग की भावाभिव्यंजना के लिए बहुत ही समर्थ है। • उर्दू छन्दो का परिष्कृत रूप निराला जी की अनेक कविताओ मे प्रकट हुआ है तथा वह सर्वत्र ही नवीनता, गाम्भीर्य और सगीत की अलौकिकता से पूर्ण है। छाया-वाद-युग मे निराला जी शायद अकेले कवि है, जिन्होने हिन्दी के प्राचीन छद बरवे का प्रयोग सुन्दरता के साथ किया है। निराला जी के मुक्त छदो मे कही-कही हम एक ही स्थल पर रोला, राधिका, ललित, सरसी, बरवै और वीर—सभी प्रकार के छंदो का प्रभाव एकत्र देखते है…।'

यह प्रशसा इसलिए और भी अर्थवती है कि यह 'दिनकर' जैसे समकालीन कवि तथा प्रगतिशीलता को सर्वांशतः सही न मानने वाले आलोचक की कलम से निकले है।

परतु 'बेला' के सब प्रयोगो मे वे सफल नही हैं, जहाँ कान्शस रूप से या सतर्कता से प्रयोग करने वे गये हैं, सिर्फ वहीं। कही उर्दू की बदिश और तर्ज-अदा मे वे बह गये है; कही कलात्मकता मे वे पक्तियाँ ओछी पड गई है, कही एक ही पक्तियो मे बहुत बड़ा अर्थ समा डालने की जल्दबाजी मे पक्तियाँ दुरूह हो गई है। उदाहरणार्थ :

बदली जो उनकी आँखें इरादा बदल गया
गुल जैसे चमचमाया कि बुलबुल मसल गया
सारे दाब पेच खुले पेचीदगी आने पर
यार गिरफ्तार हुआ खून के बहाने पर

ऐसी कई पंक्तियाँ हैं जो सीधी उर्दू मे शुमार हो सकती है, मगर इसी बीच

मे कही शुद्ध हिन्दी का एकाध कठिन शब्द आ जाता है और रचना अटपटी, हिन्दी-उर्दू मेलवाली हो जाती है, जैसे :

इतना ही रहे अयाँ, कहां तक हो और बयां
शाप को भी आना पडा पाप के न जाने पर

यह ऐसे जान पड़ता है जैसे 'जाश' मलिहाबादी सिनेमा के लिए जानबूझ कर हिन्दी गीत लिख रहे हो। हिन्दी और उर्दू कविता की प्रकृति मे ही भिन्नत्व है। जहाँ-जहाँ दोनो की खिचडी बनाने की कोशिश की गई है, कविता की 'हिन्दुस्तानी' हो गई है।

'आवेदन' मे निराला जी ने कहा है, 'भाषा सरल तथा मुहावरेदार है। गद्य करने की आवश्यकता नही। देशभक्ति के गीत भी हैं।...काव्य की कसौटी भी है। पाठको की हिन्दी मार्जित हो जायगी, अगर उन्होने आधे गीत भी कंठाग्र कर लिये; यो आज भी ब्रजभाषा के प्रभाव के कारण अधिकारी-जन तुतलाते है, खडीबोली के गीत खुलकर नही गा पाते।' 'बेला' की कविताओ मे भी ब्रजभाषा की कोमलता तो अवश्य कही-कही है ही, चाहे तुतलाहट न हो।

'काले काले बादल छाये न आये, वीर जवाहरलाल' और 'आ रे गंगा के किनारे!' की धुने स्पष्ट लोकगीतो से प्रभावित है। 'सोहे', 'बौरे', 'पुरवाई', 'छन-छन', 'महावर', 'हिलोरे', 'सरसाई', 'मरोरो', 'संवार', 'सुर धुनी', 'मनसिज', 'अबल', आदि सब ब्रजभाषा की ही तो देन हैं। अवश्य खडीबोली के मुहावरो का निराला जी ने बड़ी खूबी से यह निर्वाह किया है। यह 'निर्वाह' 'चोखे चोपदे' या 'चुभते चौपदे' वाला हरिऔधी जबरदस्ती का निर्वाह नही है। यहाँ भाषा की लचक कविता के रूप मे स्वभावतः समा गई है। मुहावरे का ताना, भावो के बाने से बुन दिया गया है। परन्तु 'बेला' की गजले फारस के कालीन न बन सकी। कुछ खुरदुरी आधी-भारतीय आधी-फ़ारसी दरी ही बन कर रह गई हैं।

इस दोष को छोड, इस किताब की कुछ अच्छाइयाँ बताता हूँ। कहीं-कहीं दो चार पंक्तियो मे निराला ने बडी दूर का और पते का भाव भर दिया है। उदाहरणार्थ :

आँखें वे देखी है जब से,
और नहीं देखा कुछ तब से,

नाथ, तुमने गहा हाथ, वीणा बजी;
विश्व यह हो गया साथ, द्विविधा लजी।

बाते चली सारी रात तुम्हारी,
आँखे नही खुली प्रात तुम्हारी।

जल्द जल्द पैर बढाओ, आओ आओ।
बैंक किसानो का खुलाओ,
सारी संपत्ति देश की हो,
सारी आपत्ति देश की बने…

स्वर विवादी ही लगा, गाना सुनाना हो जहाँ
साथ से हर वक्त का उन्माद तू जब तक न कर।
आँख के आँसू न शोले बन गये तो क्या हुआ?

वेश-रूखे, अधर सूखे,
पेट भूखे आज आये।

मगर यह रचना जिस काल मे की गई, तब युद्ध की विभीषिका विश्व पर छाई हुई थी, 'रुण्डमुण्डो से भी है खेत गोलो से बिछाये।' और :

मैंने कला की पाटी ली है शेर के लिए,
दुनिया के गोलन्दाजों को देखा, दहल गया।

'नये पत्ते' निराला की किताबो मे मुझे अनेक दृष्टियो से श्रेष्ठतर रचना जान पडती हैं, 'बेला' से, 'अणिमा' से भी। 'बेला' और 'अणिमा' मे वे जैसे नई दिशा टटोल रहे है, पूरी तरह नही उतरे है। 'नये पत्ते' मे निराला की नई दिशा का निखार है। कुछ अशो मे यह 'कुकुरमुत्ता' सग्रह की व्यग-हासमयी शैली का परिष्कृत रूप है: अधिक सूक्ष्म, अधिक स-चोट!

दो तीन कविताएँ तो पुराने टाइप की लबी, वर्णनात्मक है, जो बहुत अच्छी नही।—'स्फटिक शिला' 'देवी सरस्वती,' 'युगावतार परम-हस रामकृष्ण देव के प्रति'। परन्तु इन रूढ विषयो मे भी शैलीगत नवीनता का चमत्कारीपन आ ही गया है। जैसे, स्फटिक शिला मे निराला के कल्पना लोक मे बार-बार आने वाली सद्यःस्नाता, जिसका भव्य-कोमल रूप रवीन्द्रनाथ की विजयिनी के अनुवाद मे—देखिए 'तट पर' नामक कविता 'अनामिका' मे, और वीभत्स परिहासमय रूप 'खजोहरा' मे व्यक्त हुआ है। वही सद्यःस्नाता चित्रकूट के दर्शनोपरान्त गंगातट पर उन्हे इस रूप मे दिखाई देती है, अंतिम दो पक्तियो

मे निराला की आराध्या सीता का ध्यान आना बहुत मार्के का है—कुछ भी सकोच नही ढापता :

> वर्तुल उठे हुए उरोजो पर अडी थी निगाह
> चोच जैसे जयन्ती की, नहीं जैसे कोई चाह
> देखने की मुझे और
> कैसे भरे दिव्य, है ये कितने कठोर।
> मेरा मन काँप उठा, याद आई जानकी।
> कहा, तुम रामकी,
> कैसे दिये है दर्शन।

गाडी से ऊँचे-नीचे जाने का बहुत अच्छा वर्णन 'स्फटिक शिला' मे हुआ है, मगर विस्तार अनावश्यक है। 'देवी सरस्वती' मे वसत और शरत् ऋतुओ के खेतो के वर्णन मनोरम है। विवेकानद के अनुवाद और रामकृष्ण परमहस वाली कविताऍ साधारण है क्योकि रूढ शैली मे है। 'कैलाश मे शरत्' एक अभिनव दिवास्वप्न है, जिसमे अपचेतन को काफी स्थान दिया गया है। यहाँ निराला की दूसरी बार-बार आने वाली उपमा मिलती है—'पत्थरो को फोडकर मुक्तधारा बह रही है।'

बची हुई छोटी कविताओ मे प्राय: सभी सामाजिक-राजनीतिक गर्भिताशय लिये हुए है। 'रानी और कानी' मास्को 'डायग्लाज' 'खुश-खबरी' 'दगा की' 'गर्म पकोडी' 'प्रेम सगीत' आदि 'नान-सीरियस' ढग से, 'बैथॉस' और 'ग्राटेस्क' (काव्यगत असुन्दर) का सहारा लेती हुई चलती है, सभी कविताऍ मुझे बहुत ही मार्मिक जान पडी; उनकी विस्तार से अच्छाइयाँ नीचे बताऊँगा। शेष 'थोडो के पेटे मे बहुतो को आना पडा', 'राजे ने अपनी रखवाली की', 'चर्खा चला', 'पॉचक', 'तारे गिनते रहे', 'कुत्ता भौकने लगा', 'तिलॉजली', 'छलॉग मारता चला गया', 'खून की होली जो खेली', 'महगू महगा रहा'—ये सब कविताऍ शुद्ध मार्क्सवादी विवेचना कविता के पुट मे है। इनमे व्यग बहुत तीक्ष्ण और कचोट भरा है। इस टेकनीक के सम्बन्ध मे मान्य आलोचक आई. ए. रिचर्ड्स ने टी. एस. ईलिएट की कविता के बारे मे जो कहा था, वह निश्चय ही कम-अधिक प्रमाण मे निराला के बारे में कहा जा सकता है :

'This poetry has 'music of ideas'. The ideas are of all kinds abstract and concrete, general and particular, and, like the musician, so phrases , they are arranged, not that they may tell us something,

but that their effects in us may combine into a coherent whole of feeling and attitude and produce a peculiar liberation of the will. They are there to be responded to, not to be pondered or worked out.' (Principles of Literary criticism P. 293) ''उनकी कविता मे हमे मिलता है 'विचारो का सगीत'। उसके अन्तर्गत सभी प्रकार के विचार आते है—निगूढ अनपेक्ष और स्थूल; समूहवाची तथा विशेष, व्यक्ति-वादी : स्वरकार की शब्द-योजना के ही समान उनका जो क्रम बंधता है, वह इस प्रकार नही बंधता कि उसके द्वारा कोई बात जानी जाय, बल्कि इस प्रकार कि उनके नाना प्रभाव हमारी चेतना मे भावना और दृष्टिकोण की स्निग्ध सम्पूर्णता के साथ नियोजित हो सके, और उनके द्वारा सकल्प शक्ति को विशेष उन्मुक्ति प्राप्त हो सके। वे इसलिये है कि हम अपने मन पर उनका प्रभाव ग्रहण करे, इसलिए नही कि उन पर अध्ययनात्मक चिन्तन किया जाय या कि हम फैलाकर उनका विश्लेषण करे।" (साहित्यिक समालोचना के सिद्धान्त, पृष्ठ २—३)

प्रगतिशील कविताओ की ये सब कविताएँ बहुत उत्तम उदाहरण हैं, जहाॅ व्यापारिक शोषण का पर्दाफाश किया गया है, जहाॅ अर्थशास्त्र के कठिन सिद्धात 'पाॅचक' की दस पंक्तियो मे 'काग्रेस' कर रख दिये गये है; जहाॅ गतिरोध की भयानकता 'तारे गिनते रहे' मे व्यक्त कर दी गई है; जहाॅ मेढक और कुत्ते की प्रतीकात्मक सहायता लेकर किसानो की असहायता और विषमता पर निर्भय घना-घात है, जहाॅ विशुद्ध नैचुरलिज्म है, जैसे 'डिप्टी साहब आये' या 'महगू महगा रहा' में—जो कि समाजवादी यथार्थवाद से गर्भित हैं; या कि शुद्ध भावनात्मक चीज़े है, जैसे आर. एस. पंडित की प्रेतयात्रा और प्रेतदाह पर 'तिलाॅजली' और 'खून की होली जो खेली' मे विद्यार्थियो की आइ. एन ए. के संबंध मे गोलियाॅ खाने पर भावोन्मेष! इन सब कविताओ मे निराला ने मार्बिड मृत्यु-प्रेम नही दरसाया है, जो अक्सर राष्ट्रीय ध्वसवादी कवि दिखाते है। उनकी स्वस्थ, परूष, कलाकार आत्मा सर्वत्र दहाड़ती है, 'हुइ-हुइ' कर विलाप नही करती।

हाॅ, मै निराला की 'तेल की पकौडी' आदि व्यंग-पूर्ण कविताओ की बात कहने जा रहा था। पहली बात तो यह कि सूक्ष्म और स्वस्थ परिहास-वृत्ति का आधुनिक हिंदी कविता मे—विशेषतः छायावाद-स्कूल में लोप-सा हो गया। 'प्रसाद' का पूरा काव्य उठा लीजिए, एक पक्ति हास्य की नही मिलेगी। 'पंत' के भी वही हाल है; यद्यपि 'ग्राम्या' मे ग्रामवधू आदि एकाध कविताओ मे थोड़ा

बहुत हास्य है। महादेवी वर्मा की एक पक्ति भी हास्यमय नही। गोया जीवन में हँसी जैसी कोई चीज है ही नही, सब ओर, सब कहीं, सब वक्त नीर भरी दुख की बदली ही छाई हुई है। परिहास स्वस्थ मन की देन है; अश्लीलता विकृत मन की, चिर-गम्भीरता 'न्यूरौटिक' और चिर-उदासी निश्चित 'मार्बिडिटी' की।

निराला की हास्यवाली कविताओ मे कितना सुन्दर व्यग है; 'रानी और कानी' और 'खजोहेरा' पढ़कर साहित्य के सुष्ठ शिष्ट पाठक शायद मुँह बिचका लें। मगर दोनो मे यथार्थवाद को निभाया गया है। कविता अब केवल ऊर्वशी के अनिन्द्य यौवन और 'पंत' की अप्सराके इथीरियल गात की ही चर्चा नही करेगी; सामान्य-जन और उनके सामान्य सुख-दुख भी कविता के विषय हैं। सब से अच्छी बात यह है कि निराला के व्यगो के अन्दर हमदर्दी की भी एक छुपी हुई पुट बनी रहती है। अर्थात् जहाँ समाज की स्नावरी (अहमन्यता, व्यर्थ अहन्ता) पर वे चोट करते हैं, वहाँ वे जरा भी नही चूकते, वार बराबर निशाने से और सफाई से करते है। 'मास्को डायलाग्ज' इसका अत्यन्त उत्तम नमूना है।

'खुशखबरी' और 'दगा की' मे निराला की आत्मा सिनेमाई सगीत और नृत्यकी व्यभिचरित कलाके प्रति विद्रोह कर उठी है। कहते हैं—'सत्य सिनेमा की नटी से नाचा! 'दगा की' और भी अधिक सुन्दर रचना है, जिसमें वे आजकल के विकृत अभारतीय संगीत पर कहते हैं :

> **मगर खँजडी न गई।**
> **मृदंग तबला हुआ,**
> **वीणा सुर-बहार हुई।**
> **आज पियानों के गीत सुनते हैं।**

'गर्म-पकौड़ी' और 'प्रेम सगीत' मे वर्ण-व्यवस्था और सस्ते प्रेम के गानो पर करारा व्यग है। ब्राह्मण को इसीलिए जानबूझ कर उन्होने 'बम्हन' लिखा है। गर्म पकौड़ी मे आहार और मैथुन की सामान ऐंद्रियक प्रतिक्रियायो का वर्णन देकर 'दिल लेकर फिर कपडे-सा फीचा' या ' जूस की कौड़ी' की बडी बढ़िया यथार्थवादी उपमाएँ हैं। सेक्स का जो टैबू छायावादयो ने बना रखा था, उसका दुर्ग इस पकोडी-कचौड़ी वाली कविता मे ढह गया है।

'कैलाश मे शरत् मे' भी सूक्ष्म परिहास है जहाँ कि अनमेल चीज़ो को मिलाकर एक विचित्र भास उत्पन्न किया है। विवेकानन्द को लेकर बाबर से मिलने चले; राह मे तातारी वीर मिले, किश्तियो से मानसर पार किया और वहाँ स्वग की अप्सरा स्नान करने के लिए उतरी, यह फ्यूचरिस्ट ढग की कविता है।

मैं ऊपर कह चुका हूँ कि गाँव के किसान और जमींदार वाली रचनाओ मे देहाती मुहावरो का बहुत ओजपूर्ण, प्रसादमय उपयोग निराला ने किया है।

तात्पर्य, निराला के नये दो काव्य-ग्रन्थ टालने की वस्तुएँ नही। नये कवियो को उन्हे पढकर बहुत कुछ सीखने और मनन करने का मसाला मिलेगा। हम चाहते है कि निराला उत्तरोत्तर अपने ही ढग से गाँव वाली तर्ज मे और व्यंग चित्रात्मक चीजें लिखे। वे बहुत सुप्राण रचनाएँ हैं। उनका युग मूल्य है। उनमे परिपक्व कला-प्रतिभा के दर्शन होते है। निराला हिंदी का एक अकेला कवि है जो अपने क्रैफ्ट (कवि कर्म) के प्रति अत्यत सचेतन रूप से प्रामाणिक रहा है और साथ ही जिसने युग के बदलते हुए मूल्यो को भी सहेजा है—किताबो की मारफ़त नही, मगर जीवन के कडुए अनुभव से। उसकी स्याही की बूद, उसके अपने खून और पसीने की है, वह निरे खारे, बेअसर आँसुओ की फीकी-फीकी रोशनाई नही।

४. निराला के व्यंग-काव्य में अति-यथार्थवाद

जबसे मैंने कुछ आधुनिकतम अग्रेजी कविताएँ पढी और पढने से अधिक समझने की कोशिश की—क्योंकि उनमे से बहुत-सी ऐसी होती है जिनका अर्थ पल्ले पडना साधारण बात नहीं; और उन कवियो पर तथा उनके सिद्धान्तो पर टी. एस-ईलियट, डे लुई, लुई मैकनीस, रोजर रफ्टन, फ्रासिस स्कार्फ आदि आलोचको के मंतव्य पढे; तब से निराला जी की नई कविताओ के प्रति मेरी दृष्टि कुछ अधिक उदार और भिन्न हो गई। वैसे तो गद्य मे वर्त्तमान धर्म और पद्य मे 'कुकुरमुत्ता' से ही निराला की कला-दृष्टि मे एक विशेष प्रकार के परिवर्तन के लक्षण दिखाई देते थे, फिर भी मैंने इस लेख की सीमा के लिए केवल 'अणिमा', 'बेला' तथा 'नये पत्ते', इन तीन संग्रहो को ही चुना है। यद्यपि जिन प्रवृत्तियो का उल्लेख आगे होगा, उनकी जड़े 'परिमल' और 'अनामिका' और 'गीतिका' मे से दिखाने की कोशिश मैं करूगा; फिर भी विशेष रूप से इन्ही तीन नये संग्रहो को मैने जानबूझ कर चुना है।

इससे पहले कि उन पर लिखना आरम्भ करूँ, जिस शब्द से यह आरंभ होता है, उसे समझना आवश्यक है। शब्दश: सररियलिज्म का अर्थ होता है अति-वास्तववाद या अति-यथार्थवाद।

फ्यूचरिज्म (भविष्यवाद) की काव्य-क्षेत्र मे अवतारणा सररियलिज्म कहलाती है। भविष्यवादी चित्रकारो के अनुसार न अतीत चित्रण योग्य है, न वर्तमान। यदि कुछ अंकन करने योग्य है तो वह भविष्य ही है। उस भविष्य मे काल-

देश-गत भेद मिट जाँयगे। जब हम भावी का स्वप्न देखते हैं तो उसमें हमारे अवश्चेतन मन का प्रक्षेपण ही तो विशेष रूप से होता है। वासिली कैंडिनस्की नामक पोलिश चित्रकार ने इस पद्धति को आरंभ किया। उसके मतानुसार चित्र-कला भी संगीत की भाति अतींद्रिय, अगोचर, अरूप (एबस्ट्रैक्ट) होनी चाहिए। उसने 'आध्यात्मिक एकरूपता की कला नामक पुस्तक लिखी जिसमे अपने कई चित्र दिये। भारतीय चित्रकारो मे गगनेंद्रनाथ ठाकुर के 'प्रार्थना का समय', 'अप्सरालोक' आदि चित्र क्यूबिस्ट-फ्यूचरिस्ट शैली के उत्तम नमूने कहे जा सकते हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के प्रायः सभी चित्र इसी प्रकार के है। नन्दलाल बोस तथा देवीप्रसादराय चौधरी के कुछ चित्र, अमृतशेरगिल तथा मनीषी दे के अधिकाँश चित्र भी इसी प्रकार के हैं। जर्मन-बौद्ध अनगारिक गोविंद की पुस्तक 'कला और मनन' में ऐसे ही चित्रों की बहुलता है। इटली मे मारिनेत्ती के नेतृत्व में विभिन्न वस्तुओ के विभिन्न रूप प्रमाणो का आंशिक चित्रण (sectional representation of divers aspects of different objects) शुरू हुआ। वे वस्तु के मूल मे पहुँच जाना चाहते थे, उसे तीनों प्रमाणो मे (थ्री डाइमेन्शन्स में) व्यक्त करना चाहते थे। उन पर आइन्स्टाइन की सापेक्षता तथा फ्रायड के अवचेतनवाद का भी प्रभाव था। रंगो मे तो उन्होने नव्य-प्रभाववादियो का रंग-संतुलन मान लिया, परन्तु रेखा मे, रूप मे उन्होने एक नवीन 'गत्यात्मकता' आरंभ की (dynamic composition of matter must be interpreted in its plastic aspects)। कला-समीक्षको का मत है कि इस प्रकार चित्र-कला में गति-तत्त्व को प्रधानता देकर उन्होने चित्र-कला को केवल आयतन तथा आकार की कला की श्रेणी से उठाकर काल तथा शक्ति की कला बना दिया (Futurists converted the art of painting from an art of space to an art of time)। यह शक्ति स्व-केंद्रित तथा स्वयं-प्रेरित थी—जैसे पृथ्वी सूर्य के आस-पास भी घूमती है और स्वय अपने आसपास भी।

चित्रकला मे इन शैलियो ने द्वंद्वात्मक भौतिकवाद या विरोधविकासवाद (डायलेक्टिक्स) की अवतारणा की। इसका परिणाम कविता पर क्या हुआ, विशेषतः अंग्रेजी कविता पर, अब हम यह देखें।

यदि अंग्रेजी कविता के वर्तमान दर्शन के पीछे मार्क्स और फ्रायड, क्रोचे और बर्गसाँ, आइन्स्टाइन और ह्वाइटहेड कम-अधिक परिमाण मे उपस्थित हैं, तो आधुनिक अंग्रेजी समालोचक यथा, रिचर्ड्स और ईलियट भी इनसे निश्चय

प्रभावित हैं। यहाँ स्थान नहीं है कि इन सब की विशद चर्चा की जाय। अतः मैं केवल दो ही तीन प्रभावो की चर्चा करना चाहता हूँ। 'बीसवी सदी के अग्रेजी साहित्य' नामक ग्रथ मे एच. वी. रूथ, फ्रेंच लेखक एदुआर्द दुजार्दिन के १६३१ मे प्रकाशित 'ल मोनोलोग इतीरियर' का प्रभाव जेम्स ज्वायस, वर्जीनिया वुल्फ, एल्डूस हक्स्ले के उपन्यासो पर कैसे पड़ा, इस सम्बध मे कहते है, 'चाहे आप फ्रायड, युङ्ग, एडलर, अर्न्स्ट जोन्स आदि मनोवैज्ञानिको को न जानते हो पर एक बात तो आप जानते है कि हमारे मन की ऐसी विशेषता है कि गति मे ही वह स्थिति प्राप्त करता है। उदाहरणार्थ, चित्रपट मे कुछ सघटित कथानक होता अवश्य है, परन्तु वह कितने भागते, टुकडे—बिखरे चित्रो द्वारा दिखाया जाता है। उसमे स्थान-स्थान पर fade-out, close-up और flash-back होते है। इंप्रेशनिस्ट चित्रो मे भी विषय-वस्तु चाहे स्थिर हो, परन्तु इसका चित्र-प्रभाव आपके मन को अ-स्थिर कर देने वाला होता है। उन चित्रो मे रग और आकार एक प्रकार की योजनाबद्धता मे चलते है। कभी-कभी तो इन चित्रो से ऐसे भाव ध्वनित होते है जिनकी अनुकरणशील वृत्ति होती ही नहीं, वे तो केवल एक संवेदना से दूसरी सहस्मृत सवेदना जगाते चलते है। कविता के क्षेत्र मे भी कुछ ऐसी चीज घुस आई है, जिसका परमोच्च विंदु है सररियलिज्म। इसमे बाह्यतः असबद्ध दिखाई पड़ने वाले स्वप्न यो ही बेतरतीब छोड़ दिये जाते है, पर आप से आप रेखा-बद्ध होते चाले जाते है—कला के नियमानुसार। (surrealism—in which the apparent chaos of dreams are left to collect their outlines according to the morphology of art.)'

यहाँ पर काव्यगत कल्पना-चित्र और दिवा-स्वप्न आदि मनोवैज्ञानिक चर्चा चलाने के लिए पर्याप्त स्थल और अवकाश नहीं तथापि कवि की कल्पनाएँ कैसे बनती हैं, इस सबंध में टी. एस. ईलियट के 'कविता का उपयोग' नामक निवध से एक विचार-सूत्र नीचे देता हूँ : 'एक लेखक के कल्पना-पुञ्ज का बहुत थोड़ा अंश ग्रथो के अध्ययन से आता है। वैसे तो उसके शशव से लेकर अब तक के अभूनुति-जीवन के समूचे सस्कार उसकी रचना मे ढलते है और लेखक या कवि ही क्यो, हम सबके ही जीवन मे जो कुछ हमने सुना, देखा, अनुभव किया है, उस जीवन-गत अनुभूति-पुञ्ज में से क्यो एक या कुछ सवेदना-चित्र विशेष रूप से बार-बार मन में उठते है? किसी पक्षी का गाना, किसी मत्स्य का पानी पर उछ-[illegible], किसी विशेष काल और देश में पुष्प-विशेष की सुरभि, जर्मन पहाड़ी रास्ते

पर एक बुढिया, एक छोटे से फ्रेंच रेलवे स्टेशन पर खुली खिड़की मे से आधी रात के वक्त ताश खेलने मे मशगूल छः शोहदे···इन स्मृतियो का प्रतीकात्मक मूल्य हो सकता है ; साथ-ही-साथ वे ऐसी गहरी अनुभूतियो को व्यक्त करती हैं जहाँ तक हमारी दृष्टि नहीं पहुँच पाती। हम जब अपने ही जीवन के अतीत में झाँकने लगते हैं तब हमारी स्मृति मे जग उठते हैं कुछ तितर-बितर, बिखरे-उखडे 'स्नैपशाट्स', मानो वे हमारे पुराने भाव-जीवन के बचे-खुचे स्मृति-चिह्न हो।···इसी आधार पर ईलियट यह मानता है कि हमारा मन पके हुए सूअर के मास की बू, दाँते की भव्य कविता का पाठ और प्रणय-जाल मे उलझने की मधुर अनुभूति एक साथ कर सकता है। यानी ऐंद्रिय सुखानुभव, भव्यता का अनुबोध और आवेगो की अतिशयता हमारे मन मे एक साथ चल सकती है। उदाहरणार्थ, 'निराला' की नये पत्ते मे 'स्फटिक-शिला' नामक चित्रकूट-यात्रा का प्रसग है। उसके अतिम अश मे देखिये उत्तान शृगार और अनन्य भक्ति का, रति और विरति का कैसा विचित्र मिश्रण है। इन उदाहरणों की चर्चा आगे मै विस्तार से करूँगा। 'कैलाश मे शरत्' भी एक सररियलिस्ट या फ्यूचरिस्ट कविता है जिसमें ऐसे कई चित्र-विचित्र मनोभाव एकत्र सिमट आये है।

अग्रेजी कविता मे सररियलिज्म फ्रास से आया। फ्रास मे ब्रेटान, इलुआर्द, पेइरेत लाजीआमात, त्जारा आदि सररियलिस्ट कवि प्रसिद्ध हुए, जिनकी बहुत-सी रचनाओं को अग्रेजी मे राजर राफ्टन ने अनूदित किया। सन् १९३६ में 'समकालीन गद्य और पद्य' (काटेम्पोरेरी पोएट्री एंड प्रोज) नामक पत्रिका के दस अंक प्रकाशित किये गये, जिनमें लाजीआमात के 'माल्टोडोर के गाने' आदि अत्यन्त नवीन और युगान्त नवीन और युगान्तरकारी रचनाएं प्रकाशित होती रहीं। ब्रेटान पर उसके आलोचको ने आरोप लगाया कि ये कविताएं फ्रायड और उसके मानोविश्लेषण को लाना चाहती हैं। उत्तर मे ब्रेटान को 'ल सररियलिज्मे आ सर्विस द ला रिवोल्यूशन' शीर्षक एक पत्र भेजना पडा। असल में कविता के क्षेत्र मे सररियलिज्म मार्क्स-एगेल्स, फ्रायड, युङ्ग को पचा कर एक नया रास्ता बना रहा था जिससे ऐसे आध्यात्मिक मूल्यो की स्थापना की जाय जो कि बोर्जुआ मनोवृत्ति का ही नाश कर दें, और इस प्रकार सच्ची साम्यवादी समाज-व्यवस्था का मार्ग प्रशस्त और सुकर बने। कठमुल्ला साम्यवादियो ने इन सररियलिस्टो को और इस दावे को पलायनवाद कह दिया, क्योकि भौतिक क्राति को वे अभौतिक साधनो से मूर्त करना चाहते थे। इग्लैंड के कम्यूनिस्ट कवि आडेन के आरभिक कविता-सग्रह मे यह आध्यात्मिक क्राति वाली वृत्ति थी। उसकी अतिम पक्ति हैं :

'New form of architecture ; a change of heart'
(स्थापत्या के नये रूप, हृदय- परिवर्तन !)

परन्तु फ्रास मे भी प्रवृत्ति कहाँ से आई ? इसके लिए दो जर्मन कवि होइल्डेरलिन और रिल्के तथा एक पोलिश गद्य-लेखक काफ्का का उल्लेख करना आवश्यक है। होइल्डे रलिन का उदाहरण यहाँ इस लेख मे इसलिये भी उपयुक्त है कि 'निराला' के मानसिक सतुलन के नाश की या 'मतवाला' बन जाने की जो चर्चा यत्र-तत्र चलती है उसकी तुलना मे यह वात महत्त्व की है। होइल्डेरलिन एक जर्मन कवि था जिसने जीवन के अतिम चालीस वर्ष पागलखाने मे बिताये। उसके सबध मे समाज-मनोवैज्ञानिक, क्रेश्मर अपनी 'शरीर-रचना और चरित्र' मे कहते है, "कवि और पागलो मे जिस स्वकेंद्रित, स्वप्रेरित चिन्ता (autistic thinking) की प्रधानता होती है, उसकी चर्चा हम होइल्डेर-लिन टाइप से शुरू कर सकते हैं। घोर भावुक, असाधारण सुकुमार, निरन्तर उपेक्षित तथा नित्य-पीडित, छुईमुई के-से ये स्वभाव, जिन्हे 'all nerves' कह सकते है, वे एक तरफ—और भयानक ऐंठन से जकडे हुए, मानसिक विमूर्च्छना से विजडित, बैलो की तरह बुद्धिशून्य, Dementia Praecox (मानसिक असंतुलन) के शिकार दूसरी ओर। विभक्त-व्यक्तित्व वाले मनुष्य (शिजोफ्रीन) को यदि ठीक तोर से शिक्षित किया जाय तो अच्छा होने के पहले वह एक अभिनेता या सगीतज्ञ भी हो सकता है। इस अवस्था मे आत्म-विज्ञापन प्रिय विषय है। यह भी संभव है कि वह एक फ्यूचरिस्ट चित्रकार, एक अभि-व्यजनावादी कवि या एक विध्वसक वैज्ञानिक या आविष्कारक, अथवा किसी नई दार्शनिक विचार-धारा का उन्नायक बन जाय।"

इसी होइल्डरलिन की एक सररियलिस्ट कविता का हिन्दी गद्य अनुवाद नीचे दे रहा हूँ। कविता का शीर्षक है 'टेने-ब्राई'।

गिर्जे के प्रार्थनावाले कोने मे पत्थर का पियानो
दिवस के प्रकाश के संगीत से गूँज उठता है,
जिसकी अनुगूञ्ज मेरे रक्त मे गर्जन का ज्वार पैदा करती है;
उस अननुभूत, दूसरी दुनिया के गाने की बाढ से
मस्तिष्क में द्वादश सूर्य उमड कर फूटने लगते हैं
और फिर भी रात है
अंतहीन रात, जिसका एक-एक तारा
मेरी आत्मा में यों जड़ गया है जैसे सबेरे की बर्फ जम जाती है,

ऐसा सबेरा जिसमें ग्रीष्म की रंगीनी
और बहार की हवा और घाटियों में बहने वाली नदियों की
सुरभित ताजगी और प्रफुल्लता हो,
ऐसी नदियाँ जिनमें हँस तैर रहे हों,
स्वप्न के प्रकाश में श्वेतांग,
वे हंस अभी अपने सर पानी में डुबो देंगे।

मदिर के घंटानाद को सुनकर एक आस्तिक के मन मे भी कुछ ऐसे ही भाव उठेंगे न ? यह पागल का प्रलाप नही एक कलाकार के आत्माविष्कार का प्रयत्न है।

होइल्डेरलिन के बाद वह दूसरी जर्मन कवि-प्रतिभा, जिसने योरप की कवियो की नई पीढी को अत्यधिक प्रभावित किया है, रेनर मारिया रिल्के है। रिल्के और निगला की कला, प्रकृति और मृत्यु आदि के सबध मे मत बहुत कुछ मिलते-जुलते है। रिल्के कहते हैं, "कला हमारी कोशिश से दूसरे के काम की वस्तु नही बन सकती। दूसरे की तकलीफो को लेकर हाय-हाय मचाने से कला उच्च-कोटि की नही हो जाती। हम अपनी ही तकलीफो को कितनी गहराई से अनुभव करते हैं; अपनी सहिष्णुता को स्पष्टतर अर्थ कहाँ तक दे पाते हैं और उस वेदना को अपने ही भीतर व्यक्त करने की और उस पर विजय प्राप्त करने की क्षमता हममें कहाँ तक बढती है, इस पर कला की सफलता बहुत कुछ निर्भर है... प्रकृति, हमारे आसपास की और उपयोग की चीजे नाशवान हैं; किंतु जबतक हम इस लोक मे हैं, ये सब हमारी हैं, हमसे मित्रता के सूत्र में बधी चीजें हैं, हमारे पूर्वजो की भी वे विश्वासपात्र रही होंगी।...मगर हमें यहाँ और अब से उन्हे ऊपर उठाना है, उनमे परिवर्तन लाना है।...हमारा जीवन यदि सीधी रेखा, क्षितिज के समान है तो हमारा प्रत्येक परमानन्द का क्षण, कैवल्य या मरण का अनुभव भी खडी रेखा के समान है। परम आनद और मरण-समानार्थक शब्द हैं। मरण की राह से ही हम प्रेम को जान सकेंगे, उसके प्रति न्याय कर सकेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।...कला, जीवन सब का मूलस्रोत वही परम आनद है।

वह आनन्द का स्रोत,
वह मानवमात्र को
बहा ले जानेवाला प्रवाह है।

और मनुष्य की 'नियतिकृतनियमरहितता' और फिर नियतिवाद के नागपाश से बचे रहने की विसगति को रिल्के व्यक्त करता है :

अरे क्यो

मानवी बनना ही पड़ता है, और नियति को ठुकरा कर भी नियति की साथ लगी रहती है ?

अंग्रेजी कविता मे सररियलिज्म के सबध में 'आडेन एड आफ्टर' नामक फ्रासिस स्कार्फ लिखित पुस्तक के तेरहवे और चौदहवे अध्यायो (व्हाट एबाउट सररियलिज्म और द ऍपार्कॅलिप्स) की ओर सकेत फर देना पर्याप्त होगा। स्कार्फ के मतानुसार सन् १९३१ मे योरप मे जो भयानक आर्थिक संकट आया, बीस लाख लोग बेकार हो गये और योरोपीय समाज-व्यवस्था मे जो भयानक दरारें पडी, उस समय तरुण-दिमाग या तो मार्क्सवाद मे या फासिज्म मे रामबाण औषधि देखने लगे, कुछ तरुणो ने भागने का नया रास्ता निकाला-सररियलिज्म। इसमे अ-बुद्धिवाद होते हुए भी बौद्धिकता थी, दादाइज्म जैसी निरी नकारात्मकता नहीं थी। इस सररियलिज्म के विकास की भी सीढियाँ थी—पहली, हिप्नाटिक अवस्था, दूसरी, दिवास्वप्न की, तीसरी, चमत्कार तथा सहज विश्वास की, चौथी, सौंदर्यवादविरोधिनी, पॉचवी, अर्द्ध-वैज्ञानिक।

डेविड गॉस्कॉयनी की पुस्तक 'सररियलिज्म का सक्षिप्त विवरण' इस दृष्टि से उपादेय है। हिन्दी समीक्षा में तो सररियलिज्म पर अब तक एक ही लेख मेरे देखने मे आया और वह प्रो० देवराज उपाध्याय ने 'हस' मे लिखा था।

फ्रासिस स्कार्फ की अपनी पाँच मिन्ट मे लिखी 'बिलेत्-दाउ' नामक कविता है—

> **तुम्हारी आँखों के नीले कुञ्जी के छेद से देखते हुए,**
> **तुम्हारे 'लॉन' मे ऊँचा वृक्ष मेरी ओर चलता आया,**
> **उसने मोटे-मोटे फल मुझ पर फेंके, वह मुझे कीड़ियों से खा गया।**
> **मुझे चीटियाँ, खेत के चूहे, उल्लुओं की घर की याद दिखा गई।**
> **क्योंकि प्रेम को क्षमा करना इतना कठिन है-इतना कठिन।**
> **तुम्हारी आत्मा घास में से, रेंगती हुई मुझ तक आई और**
> **मुझे अपनी डंकों से पकड़ कर, मुझे जिंदा दफन कर गई**
> **तुम्हारे हृदय में आज मै तुम्हारे ही सर्वोत्तम रक्त से लिख रहा हूँ।**

अंग्रेजी कविता-क्षेत्र मे अपेक्षाकृत तरुण और अत्यन्त सुकोमल आयरिश कवि डाइलन टामस की कई रचनाएँ इसी प्रकार की है। उसकी एक पुस्तक, 'मैप आफ लव' मेरे अवलोकन मे आई थी। उसकी अन्तिम कविता (सं० १६) इस प्रकार थी :

२४ वर्ष मुझे अपनी आँखों आँसुओं की याद दिलाते हैं।
(गडे मुर्दों को गडे ही रहने दो, वर्ना कहीं कब्र तक चले आएँ और
मज़दूरी माँगने लगें।)
प्रकृति के दरवाजे की देहली पर मैं एक दर्जी की तरह झुक कर बैठा था,
प्रवास के लिए कंथा सीता हुआ,
मांसाहारी सूर्य के प्रकाश में।
यह चोला पहना ही इसलिये है कि मरना है, इंद्रियतृप्ति की यह
लॅगडाइट भरी सफर शुरू हो गई है,
मेरी लाल-लाल धमनियों में पैसा बह रहा है,
मैं उसी मूल गाँव की अंतिम दिशा मे बढ़ा जा रहा हूँ
मै बढता जाऊँगा जब तक, 'जब तक है' का अस्तित्व हैं।

सिग्मड फ्रायड के एक निबन्ध मे 'कवि का दिवास्वप्न से सम्बध' वर्णित है। (सम्पूर्ण निबन्धावली, चतुर्थ खड, पृ० १७८) उन्होने कवि की मनोदशा की तुलना एक बच्चे से की है। दोनो ही एक सहज-विश्वास (मेक-बिलीफ) की दुनियाँ मे रमते है। कवि ऐसे ही अवास्तव कल्पना-जगत् मे शरण लेता है, जो कि शिशु-क्रीड़ा का ही एक परम्परित रूपमात्र है। कवि और शिशु दोनो में अपने अचेतन मन से सतत उलझने की प्रवृत्ति विद्यमान है। आगे चलकर फ्रायड ने कवि के मन की तुलना बर्बर तथा असतुलित मन वाले मानवो के चित्तविभ्रम से की है। कविता और बर्बर मानवो का जादू मे विश्वास, दोनो का काफी निकट सम्बन्ध है, बल्कि गिल्कस के आधुनिक कविता पर भाषणों में तथा जार्ज टॉमसन की 'मार्क्सवाद और कविता' पुस्तिका मे इस मान्यता को पुष्टि मिलती है। 'सर-सर सिरि सिरि सुरु-सुरु नागाना जब-जब जिवि-जिवि जुवु-जुवु धारणियो के मन्त्रो मे से एक है। अगर इसमे नागाना न होता तो पत के 'सर-सर मर-मर रेशम के स्वर मे' और उसमे कौन-सा रूपात्मक अन्तर है? कविता एक प्रकार का कुछ उच्च-कोटि का जादू या वर्ण-चमत्कार है। फ्रायड कवि तथा प्रमत्त की तुलना मे आगे चलकर कहते है कि कविता कैसे एक प्रकार का 'साहित्यिक सन्निपात' ही है:

'We may say that hysteria is a caricature of an artistic creation, a compulsion neurosis a caricature of a religion, and a paranoiac delusion a caricature of a philosophical system. In the last analysis this

deviation goes back to the fact that neuroses are a-social formations, they seek to accomplish by private means what arose in society through collective labour.'

हम कह सकते हैं कि मूर्च्छा कला-कृति की, बाध्यतोन्माद धर्म की, और शोपित-भाव दार्शनिक प्रणाली की विडबना है। अतिम विश्लेषण में इस विकृति का कारण यह है कि स्नायु-रोग असामाजिक परिणाम है, वे व्यक्तिगत रूप से वह काम करना चाहते है जो सामूहिक श्रम से समाज मे सभव हुआ।

इस सम्बन्ध में थारबर्न की पुस्तक 'कला और अवचेतन' मे 'ड्रीम और ड्रामा' प्रकरण तथा बर्गसॉ की छोटी-सी पुस्तक 'ड्रीम' तथा गेरट्रयूड स्टाइन की 'ड्रीमिंग' उल्लेखनीय हैं : यहाँ विस्तार मे जाने का स्थान नही है तथापि बर्गसॉ का एक उद्धरण देने का मोह मै संवरण नही कर सकता :

'Artists have been defined as adults party in the infantile stage. What has been called their infantilism would be more appropriately designated their primitiveness' कलाकारो के बारे मे यह परिभाषा दी जाती है कि वे ऐसे वयस्क व्यक्ति है जो अशतः शैशवावस्था मे ही हो। जिस बात को हम उनकी शैशवावस्था से अभिहित करते है उसे उनकी आदिम अवस्था कहना ही ठीक होगा। जर्मन दार्शनिक काण्ट ने वस्तु-जात की, विशेषतः प्राकृतिक शक्तियो की निर्धारणा को स्टाफ्फट्राइब, तथा आतरिक सद्सद्विवेक को फार्मट्राइब कहा है और इन दो मानसी शक्तियो के द्वन्द्व के बीच एक प्रकार की कलात्मक क्रीड़ा-वृत्ति अथवा स्पाइल्ट-ट्राइब की सभावना सोचते हैं। कला तथा दिवा स्वप्न में कुछ इस प्रकार की शिशु-सुलभ सहजता, जादुई आभास-निर्मिति या एक काल्पनिक यत्न-सृष्टि निर्मित करने की क्षमता, एक प्रकार का चित्त-विभ्रम या आदिम वेगो की उद्दाम क्रीडा समान रूप से उपस्थित हैं। निराला की कविता मे आरभ से ही इस वृत्ति के कुछ लक्षण विद्यमान थे। वे दो परस्पर-विरोधी रसावलम्बनो को एक ही कविता मे सहज रूप से प्रयुक्त करते थे। यथा :

'परिमल' की 'बादल राग' कविता मे तथा 'दीन', 'धारा' आदि खड दो की प्रायः सभी कविताओ मे इस 'आधुनिकता' के बीज मौजूद हैं। 'सिर्फ एक उन्माद' में वे कहते हैं :

न चंचल शिशुता का अवसाद

किंतु शिशु ही सा था वह चंचल;
अपने लिये घोर उत्पीडन,
किन्तु क्रीडन था लोगों के लिये,
पक्षी का-सा जीवन
हँसमुख किन्तु ममत्वहीन निर्दय बालों के लिये,
निरलंकार कवित्व अनर्गल
किसी महाकवि-कलित-कंठ से
झरता था जैसे अविराम कुसुम-दल।
जन-अपवाद गूँजता था, पर दूर,
क्योंकि उसे कब फुर्सत—सुनता? था वह चूर।

'गीतिका' मे भी कवि के भावकोमल मन के विविध 'मूड्स' की झाँकियाँ है। कही :

सरि, धीरे बह री!
व्याकुल उर, दूर मधुर, तू निष्ठुर, रह री!
तृण थर-थर कृश तन-मन,
दुष्कर गृह के साधन,
ले घट श्लथ लखती, पथ
पिच्छल, तू गहरी!

इन पंक्तियों के साथ यह ओजस्वी स्वर तुलनीय है :

गर्जित-जीवन झरना
उद्देश पार पथ करना।
ऊँचा रे, नीचे आता,
जीवन भर-भर दे जाता,
गाता, वह केवल गाता
"बंधु, तारना, तारना।"

'अनामिका' मे तो आधुनिकता तथा भाव-विभावो के सतरगे तारो को लेकर गुँथे कई पद्य है। यहाँ केवल सुविधा के लिए मैं गीतो के नाम ही पर्याप्त समझता हूँ : मित्र के प्रति, सम्राट् एडवर्ड अष्टम के प्रति, दान, दिल्ली, रेखा, वन-बेला, सरोज-स्मृति, खुला आसमान, ठूठ, वे किसान की नई बहू की आँखें, नर्गिस आदि मे निराला के कल्पना-चित्र अधिक सुस्पष्ट, मांसल, अरूप से रूपमय तथा हलके मगर फिर भी पैने व्यग्य का पुट लिये हुए आगे बढ़ते हैं। विशेषतः

वन-बेला और सरोज-स्मृति ये दो लम्बी कविताएँ आत्म-कथात्मक अंशो को लेकर हैं। उनमे यह आधुनिकता—संक्षिप्त, चोट करने की तथा wit से भरी उक्ति-प्रीति दिखाई देती है।

विशेष रूप से ये गुण, जो बहुत-कुछ सुररियलिज्म के निकट 'निराला' को ले जाते हैं, कुकुरमुत्ता से ही शुरू हो जाते हैं। जहाँ-जहाँ निराला सोद्देश्य रचना नही करते, यानी बौद्धिक काव्य-रचना (यथा प्रसाद या रामचन्द्र शुक्ल या महादेवी वर्मा के प्रति आदि) नही करते वहाँ उनका यह गुण विशेष निखर पड़ता है, यथा, अणिमा के कुछ 'लैंडस्केप्स' ले लीजिए। बादल छाये, 'ये मेरे अपने सपने आँखो से निकले, मँडलाये' या 'अज्ञता' मे मुहावरेसाजी की ओर निराला झुकने लगे है। मुहावरे भाषा की सशक्त रीढ़ के मनके हैं। उन पर अधिकार काव्याभिव्यजना पर अधिकार है। इनका अत्यधिक उपयोग आगे 'बेला' और 'नये पत्ते' मे मिलेगा। इसमे 'तुम और मै', उनके पुराने सुप्रसिद्ध 'तुम और मै' से तुलनीय है। अब 'तुम शिव हो मै हूँ शक्ति' वाला रहस्यवाद बिलम चुका है, अब उसके बदले ऐसी सजीव यथार्थवादिता आ गई है :

जब वह खिलती,
आँखें लड़ा-लडा कर मिलती,
उसे तोड़ कर,
मालिन सुई चलाती है मुँह मोड-मोड़ कर।

यथार्थवादी कला के सब उपकरण अब तैयार हैं। सररियलिस्ट चित्र-कला का वर्णाधार (palette) तैयार है। बस अब तूली की भगिमा की देर है। उसी मे से शली का व्यक्तित्व आ सकेगा। 'रैदास', 'प्रसाद', 'बुद्ध', 'विक्रम १०००' पुनः बौद्धिकता को लिए हुए स-विशेष रचनाएँ हैं। उद्बोधन मे वही स्वर, जो कि 'प्रालितारियत' के सन्निकट है, स्पष्ट है :

साम्य रखते हुए
विश्व के जीवन से,
बदले हुए कुम्हार,
नाई-धोबी-कहार
ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य
पासी-भंगी-चमार,
परिया और कोल-भील,
नहीं आज का यह हिन्दू,

आज का यह मुसलदमान,
नहीं है कल्पना,
सत्य है मनुष्य का
मनुष्यत्व के लिये,
बन्द है जो दल अभी
किरण-सम्पात से
खुल गये वे सभी।

सन् '४१ की इस रचना में निराला के वे ही जाति-सम्बन्धी विचार व्यक्त हैं, जो सन् '३४ मे छपे प्रबन्ध पद्म मे 'मुसलमान और हिदुओ के विचार-साम्य' नामक निबन्ध मे पृ० ४३ पर व्यक्त हैं। इससे भी पहले का, सन् १६३१ का, एक निबंध 'सामाजिक पराधीनता' प्रबध-प्रतिमा मे है; उसमें भी वे ही क्राति-पोषक विचार है। उन्ही का सीधा परिणाम है—'बाम्हन का लडका, मै उसको प्यार करता हूँ। (प्रेम संगीत : नये पत्ते पृ० ३६) और 'अरी तेरे लिए छोड़ी, बम्हन की पकाई मैंने घी की कचौडी' (तेल की कचौडी : नये पत्ते पृ० ३८)। इन रचनाओ मे 'बम्हन' का कैसा तिरस्कार-युक्त प्रयोग हुआ है। उसके साथ कुल्ली भाट और बिल्लेश्वर बकरिहा के जाति-सम्बन्धी विचार तुल्य हैं।

सन् '४२ मे निराला की रचना और जनोन्मुखी हो रही है—'यह है बाजार, सौदा करते हैं सब यार।' पंत का भी 'टोन' बदल गया है। समास-बहुल 'अप्सरा' लिखने वाले पंत भी 'खैर पैर की जूती जोरू' लिखने लगे हैं। निराला मे भी एक नवीन प्रकार की गद्यात्मकता, जो युगानुकूल ही थी, आने लगी। फिर भी पुराने संस्कार 'अणिमा' मे प्रबल है। सौदर्य-लुब्ध आत्मा जीवन के पाश मे छटपटा रही है। साधु अपमान नही करता, सह लेता है, वाली भावना प्रेमानन्द महाराज में मौजूद हैं। इसके आगे पृ० ६८ से अणिमा मे सररियलिज्म के छींटे शुरू होते हैं, जिनमे पृ० १०१ और १०२ अपवाद हैं। 'नाम था प्रभात ज्ञान का साथी', 'मेरे घर के पश्चिम की ओर रहती है', 'सड़क के किनारे दूकान है', 'चूकि यह दाना है', 'जलाशय के किनारे कुहरी थी' और 'यह है बाजार है'—ये 'अणिमा' नामक सग्रह की छः आधुनिकतम शैली की रचनाएँ है, जिनमें 'चूकि यहाँ दाना है' विश्रृंखलित हो गई है। उसके पीछे पुनः बौद्धिक हेतुमत्ता है, जो कविता को खा जाती है। मैंने 'नोकझोक' मे इसी की पैराडी छपाई थी। अन्यो में 'जलाशय के किनारे कुहरी थी' एक इम्प्रेशनिस्ट लैंडस्केप की भाति है। 'सड़क के किनारे दुकान है' और

'यह है बाजार' अच्छे वास्तववादी रेखा-चित्र है। यहाँ से निराला की नवीनतम शैलियों के प्रयोगों का सूत्रपात होता है। 'नाम था प्रभात, ज्ञान का साथी' 'नये पत्ते' की 'खेल' (पृ० ३५) रचना की तरह है—दोनों मे शिशु-मनोविज्ञान का ही सहारा लिया गया है। W. H. Auden की एक कविता है :

'The silly fool, the silly fool
Was sillier in school

(वह मूर्ख, वह बुद्धू जो कि स्कूल मे और भी भी बुद्धू था)

उसकी याद इन कविताओं को पढकर आती है।

'बेला' मे गजले है। सर्वोपरि यह प्रयत्न है कि 'फारसी के छन्दःशास्त्र का निर्वाह' तथा 'मुहावरेदार भाषा' का प्रवाह भी हो। परिणामतः कही-कही बहुत बढिया चुटीली पंक्तियाँ कह गये है, परन्तु समग्र मे कविताओं का कुछ रूप नही बन पाता। उर्दू कविता और हिन्दी कविता का यही मौलिक अंतर है। उर्दू स्फुट मुक्तको मे, 'नजाकते-तखय्युल' और 'खूबिये-बदिश' मे उलझी रह जाती है। हिन्दी की परम्परा और है। वह काफिया-रदीफ से नही चलती। समस्यापूर्ति का युग भी गया। सो 'बेला' मे कुछ अच्छे स्थल है, जो आधुनिक कविता के गुण लिये हुए है, उनके उदाहरण देता हूँ :

१ देह की वीणा वह मान कभी कसने भी दोगे मुझे
२ संध्या को गिरि के पदमूल से देखा भी क्या दबके-दबके
३ खुल गये डाल के फूल, रग गये मुख
विहग के, धूल मग की हुई विमल सुख
४ गध के गले सॅवरे, जादू की ऑख लडी।
क्षीण-उर, अलख-लेखन ऑखे है बडी-बडी।
५. जीवन के हुए और कोष कडे
६. पुटो मे होठो के कलियो का राज दब न सका
सुगध से खुला, सूखे है वे बहार के दिन।
७. वेष-भूखे, अधर सूखे, पेट भूखे आज आये
८. लोगो में प्रसिद्ध वही लापता है थाने पर।

ऐसे अन्य कई उदाहरण खोज कर निकाले जा सकते हैं। परन्तु 'बेला' की अपेक्षा 'नये पत्ते' संग्रह में आधुनिकता का निर्वाह अधिक है।

'नये पत्ते' मे आधुनिक कला का एक प्रधान गुण 'असुन्दर तथा साधारण भी कला के उतने ही प्रिय विषय हो सकते हैं जितने की सुन्दर और असाधारण'

का पूरा विकास है। 'रानी और कानी' इस पहिली कविता में ही कितनी कठोर वास्तविकता है! कितना कटु परन्तु फिर भी सहानुभूति भरा व्यंग्य है! 'खजोहरा' मे भी वही बात है और वही अन्त तक सिलसिला बँधा हुआ है। कुत्ता, झींगुर, मेढक, साँप, बिच्छू, लकड़बग्घे, रीछ, चीते, बिछखोपड़े कोई भी त्याज्य नही है। सक्षेप मे, अब कवि-सकेत बदल गये हैं। अब केवल अशोक-तिलक-नमेरु-कुरबक-मंदार-शेफाली की ही चर्चा नहीं चलती; बल्कि चना, मटर, जौ, गेहूँ, सरसो, चिरौंजी, बहेड़ा, हड, सब कुछ काव्य-विषय हो सकते हैं। अब धीरोदात्त नायक और उसके लोकोत्तर चरित की ही गुण-गाथा काव्य नहीं :

> **गाँव के अधिक जन कुली या किसान हैं**
> **कुछ पुराने परजे जैसे धोबी, तेली, बढ़ई,**
> **नाई, लोहार, बारी, तरकिहार, चुडिहार,**
> **बेहना, कुम्हार, डोम, कुहरी, पासी, चमार—**

ये भी काव्य के विषय ही नहीं, काव्य के निर्माता भी हो सकते हैं। 'फाग हो रहा उठा रहे है धुन धमार की। होली, चैती, लेज गा रहे हैं सँवार की', 'पाँचक' और 'कैलाश मे शरत्' सररियलिस्ट रचनाये कही जा सकती हैं। विवेकानन्द को साथ लेकर घोड़े पर चढकर अफगानिस्तान पार कर, बड़े बकरे पर चढ़कर, वहाँ के शासक पथदर्शक साथ मे हैं। मंगोलिया, अटीला, पार कर, 'कैली' आया। दुर्गा की रूप-रेखा मानो यहाँ से ली गई हो। आगे काश्मीर, फिर मानसर पर किश्तियाँ डालकर नौका-विहार, जहाँ से ब्रह्मपुत्र का उद्गम हुआ है। रात, चाँदनी, मेष-मास का भोजन, गीत-वाद्य आदि। इस नौका-विहार से पंत का नौका-विहार तौल कर देखिये तो पता लग जायगा कि निराला में सररियलिज्म किस हद तक है। पंत का नौका-विहार तुलना मे अधिक सुन्दर परन्तु वर्डस्वर्थियन, उपदेशात्मक, अशक्त (tame) लाता है।

वैसे तो अनामिका की 'वनबेला' और 'सरोज-स्मृति' में राष्ट्रीय कवि और संपादकों पर काफी कटूक्तियाँ या कहे, तिक्तोक्तियाँ हैं। परन्तु 'नये पत्ते' व्यंग्य में सबसे बढकर हैं। 'कुकुरमुत्ता' निराला की व्यंग्य-रचना का एक मास्टरपीस है। अब 'मास्को डायलाग्ज' 'खुशखबरी', 'गर्म पकौडी', 'प्रेम सगीत', 'छलाग मारता चला गया', 'महगू महगा रहा', 'झींगुर डटकर बोला' में व्यग्य का बहुत ही सूक्ष्म, सयत और सुधरा हुआ प्रयोग है। इन कविताओं मे परिहास के लिए परिहास नही है; परिहास के पीछे एक निश्चित, पैनी, सहेतुक अर्थसत्ता है।

शिवनारायण राय ने सन् '२२ से सन् '३८ का विश्लेषण करते हुए बंगला कविता में सररियलिज्म के संबन्ध मे कहा है—

The 30's have also tried to retrieve imagination from moral chaos by a conscious abjuration of all moral responsibility in art. This is the surrealist way. Surrealism implies a conscious and sustained effort to liberate the unconscious from the categories of consiousness and the directives of moral sense. That such an effort is bound to belie itself is fairly apparent for it prima facie implies a definite attitude and is therefore both conscious and moral in origin. However it lends countenence to purposive obscurantism in behaviour; in art, it makes a cult of disjointed expression. Among Bengali surrealists Amiya Chakravarti is decisively the most important.

अर्थात् १९३० से १९४० की अवधि मे इस बात का प्रयत्न हुआ है कि कला में नैतिक दायित्व के सचेष्ट प्रत्याख्यान.द्वारा कल्पना को नैतिक अस्तव्यस्तता से बचाया जाय। अतियथार्थवाद मे यह अतर्निहित है कि सचेष्ट और निरन्तर प्रयास कर अचेतन को चेतन की श्रेणियो और नैतिक भावना की प्रत्यक्षता से मुक्त किया जाय। ऐसा प्रयास अवश्य ही अपनी उद्देश्य-सिद्धि मे असफल होगा क्योकि इसमे स्पष्टतः निश्चित दृष्टिकोण है और इसलिए वह अपने मूल मे ही चेतन भी है और नैतिक भी। फिर भी इतना तो है कि इसके द्वारा आचार सम्बन्धी उद्देश्यपूर्ण अस्पष्टतावाद को बल मिलता है, बंगाली अतियथार्थवादियों मे अमिय चक्रवर्ती निःसंदिग्ध रूप से सर्वाधिक महत्व के अधिकारी हैं।

आगे चलकर अमिय चक्रवर्ती की कविता के सम्बन्ध मे आपने कहा है कि वह बिन्दु और रेखाओ से बनी है। इम्प्रेशन्स के बिन्दु अस्पष्ट भावनाओ की रेखाओ मे बीच-बीच मे उभरते रहते है। बंगला कविता मे भी तीखें व्यंग्य लिखने वाले हैं। 'एक पइशाय एकटि' सीरीज़ में 'राजधानीर तंद्रा' कविता-सग्रह की आरम्भिक कविता देखिए :

एइ फूलिश मून्हमेंट
मिसेस दाशेर साड़िते मेहेकेछे सेंट ।

या 'आदिरस' कविता की यह चुटीली उक्ति देखिये :

ता'र नाम आमि जानिना
आमार ओ नाम जानिना से मेयेटी
इस्टेशनेर मिष्टि बातासे
दू तोनटि गान गेयेछि ।
शून से छिलो इ ताकिये !
भेवेछि आमाके डाकिये
बोलवेकिछुबा ! हठात् आमाय
सिपाइया-रा दिलो हॉंकिये !

व्यग्य-कविता का दारोमदार बहुत कुछ उसके अन्तिम अश पर रहता है। मराठी कविता मे, व्यग्यचित्रो की-सी कविताओ की, अत्रे आदि के साथ केवल बाढ ही नही आई बल्कि एक पूरा सग्रह पैरोडी और अन्य व्यग्य कविताओ का छपा है। नाम है, उपहासिनी। इसके अलावा 'माधव ज्यूलियन' का 'सुधारक' नामक व्यग्य-पूर्ण खड काव्य उच्च-कोटि की रचना है। वैसे 'कालेज चे विश्व' तथा 'तोआणिती' भी दो अन्य व्यंग्य खडकाव्य है। गम्भीर व्यंग्य कविताएँ मुख्यतः अत्रे ने लिखी हैं: उदाहरणार्थ 'प्रेमाचा गुलकद'। जयकृष्ण केशव उपाध्ये की 'चाल-चलाऊ भगवद्गीता' और स्व० गोविंदाग्रज की 'हुकुमे हुकूम' कविता इस ढंग की सुन्दर रचनाएँ हैं।

गुजराती में उमाशंकर जोशी, सुन्दरम्, मेघाणी तथा 'स्वप्नस्थ' आदि ने कुछ सुन्दर व्यंग्यमयी रचनाएँ की है।

उर्दू मे महाकवि अकबर की परंपरा में जोश की व्यग्य-कविता के नमूने मिल जॉयगे।

हिन्दी की आधुनिक कविता में गम्भीरता अत्यधिक है; परिहास का पुट बहुत ही विरल है। कभी-कभी पत की ग्राम्या मे 'जाती ग्रामवधू पति के घर' के दर्शन हो जाते है; या 'दिनकर' की धूपछाँह मे 'कवि के मित्र' के, अन्यथा हास्य का जैसे नितात अभाव है। कटु व्यग्य है अचल की 'हवेली', 'चलचित्र' जैसी कविताओ मे। निराला जी की इस दिशा मे अपने ढंग की एक विशेष देन है। 'मास्को डायलाग्ज़' के अन्तिम अश का निर्वाह जैसा उन्होने किया है, शायद ही कोई दूसरा कवि कर पाता। व्यग्य के ध्वनित रहने में ही उसकी विशेषता है।

: १५ :

सुमित्रानन्दन पन्त

बाईरन ने कहा—'आई लव नाट, मैन दि लेस, बट नेचर मोर !' (मै मनुष्य से कम प्यार नही करता, परन्तु प्रकृति से अधिक प्यार करता हूँ !) 'वीणा, ग्रंथि, पल्लव, गुञ्जन' वाले सुमित्रानन्दन पन्त, कौसानी की घाटी मे पैदा हुए। प्रकृति के सुकुमार गायक पन्त अपने पहले काव्य-विकास मे हमारे शैले और वर्डस्वर्थ रहे हो, युगांत से युगपथ तक के पन्त एक नवीन मानवता-वादी दर्शन के महाकवि है। उनके लेखे ऊपर ही स्वर्ग है : मानव ही देवता है। 'उत्तरा' मे पृष्ठ १३६ पर लिखते हैं 'वह मानव क्या ? जो करे न औरो सग विचरण !'

परन्तु आज रवीन्द्र-गाधी-अरविद दर्शन के सार को हिन्दी कविता मे कोमल-कान्त पदावली मे प्रस्तुत करने वाला यह मधुर कवि आरम्भ से ही क्या ऐसी छाया-शीतल रचनाएँ करता था ? इस कवि के मन की विकास रेखा का अध्ययन मनोरंजक है :

सुन्दर है विहग, सुमन सुन्दर,
मानव ! तुम सबसे सुन्दरतम,

(मानव : युगपथ : अप्रैल' ३५)

जगती मानव में देवोत्तर
मिट्टी की प्रतिमाएँ नश्वर

(मानव : ईश्वर : उत्तरा, पृ० ११८)

मैं नवमानवता का संदेश सुनाता
स्वाधीन देश की गौरव गाथा गाता

('प्रतीक' १०)

ज्येष्ठ कृष्णाष्टमी संवत् १६५७ (अर्थात् २० मई १६००) को अल्मोड़ा से ३२ मील उत्तर मे, समुद्र से साढ़ेसात हजार फीट ऊपर कौसानी की उपत्यका मे चाय के बागीचे मे पन्त का जन्म हुआ। चाय से पन्त का प्रेम अभी तक मौजूद है। और हिमालय की घाटी का असर, उनकी, बचपन मे साधु बनने की इच्छा, और इस चिर-कुमार मे जगी योगी अरविन्द के प्रति पुनः भक्ति आदि अध्यात्मिकता के रूप मे, अभी तक विद्यमान है।

किसी ने ठीक ही कहा है कि पन्तजी आजकल कविताएँ नहीं लिखते, प्रार्थनायें लिखते है। यह बहुत अंशो मे सच है। 'अदिति' आदि पत्रिकाएँ इसकी साक्षिणी हैं। हिमालय की तलहटी का यह मुक्त विहग, जिसने अपना शैशव हिममडित शिखरो को रक्तिम हेमल होते हुए देखने मे बिताया, अब विराट हिरण्य सत्य की टोह मे "स्वर्ण किरण", "स्वर्ण धूलि" मे खो-सा गया है। 'ओ३म् कुतो स्वर कृत कुतोस्वर' उनकी एक नयी कविता है।

पत के जन्म के छः घटे के बाद ही उनकी माता सरस्वती उन्हे छोड़कर चल बसी। इस घटना का प्रभाव उनके चिर-कुमार जीवन पर बहुत गहरा पड़ा है। उनमे एक प्रकार से शिशुत्व चिरंतन होकर जम गया। वे नारी को सदा मातारूप मानते रहे। और उनकी स्वप्न की उच्छ्वास वाली बालिका, जो 'बादल घर' मे रहती थी, उसके चिन्तन से उनकी 'भावी पत्नी के प्रति' आदि कविताओं में से होते हुए उनकी नवीनतम रचना 'स्वप्न-गीत' (गर्भस्थ के प्रति) तक वही बाल-भाव 'वही नारी के प्रति चिरतन जिज्ञासा विद्यमान है! इस भाग्यवान गर्भस्थ बालक (युगधर्म पृ० १५३-१५४) को स्वप्न-गीत में पत कहते हैं :

> **आओ प्यारे मुन्ना आओ,**
> **नन्हें आओ!**
> **आओ तुम देखोगे गांधी**
> **जिनसे हमें मिली आजादी**
> **स्याम तुम्हे पहनावे खादी,**
> **आओ, अब न अधिक बिलमाओ।**
> **बाबू को पाओगे बन्दर,**
> **माँ को चित्र लिखी-सी सुन्दर,**
> **आओ तुम विकसित नर बनकर,**
> **कुल दीपक, कुल रत्न कहाओ!**

गांधी भवन, मुबारक वादी
कल की सी घटना शादी !
खुश होंगी पर सुनकर दादी !
तुम पोते को गोद खिलाओ !
मुन्ने आओ !

जो लोग पन्त जी को बहुत जटिल, कठिन, क्लिष्ट संस्कृतमयी भाषा लिखने वाला कवि कहते है वे ये कविता पढ जाँय ! 'नया समाज' (फरवरी १६५०) के अंक मे 'पंत काव्य मे नारी' पर शातप्रियजी द्विवेदी लिखते है : 'पत नारी को रूपसी ही नही, प्रेयसी, श्रेयसी, यूयसी देखना चाहते हैं। (पृ० १२१) 'पल्लव' में पन्त जी को प्रेयसी के छूने मे प्राण और 'सग मे पावन गगा स्नान' का अनुभव होता था, उस नारी के 'विचारो मे वच्चो की सांस थी।' 'युगवाणी मे आकर पंत ने अनुभव किया कि "क्षुधा-काम-वश गत मुझे पशुबल से कर जन शासित ! जीवन के उपकरण सदृश नारी भी कर ली अधिकृत !" और "अग-अग उसका नर का वासना-चिह्न से मुद्रित। वह नर की छाया, इगित सचालित चिर पदलुण्ठित !" इसलिए नर-नारियो को वासना के वसन खोलने को और स्वच्छ-स्वस्थ निश्छल 'चुम्बन' प्रिया के अधरो पर अकित करने को पत कहते है। 'ग्राम्या' मे वे नारी के प्रति उनकी 'काया नैकट्य हीन प्रेम' (प्लैटॉनिक लव के लिए रवीन्द्रनाथ ठाकुर के आलोचक डा० अमिय चक्रवर्ती का शब्द) वे व्यक्त करते है :

नारी की सुन्दरता पर मै होता नहीं विमोहित ?
शोभा का ऐश्वर्य मुझे करता अवश्य आनन्दित ?
विशद स्त्रीत्व का ही मन मे नित करता हूँ पूजन।

पत बचपन से ही एकान्तप्रिय रहे है। उनकी शिक्षा-दीक्षा और बाल्य संस्कार ही ऐसे रहे है कि उन्हे वाहरी टीम-टाम और साहबीयत से अधिक प्रेम नही। 'स्वर्णधूलि' की कविता मे वे लिखते है :

सूट-बूट में सजे-धजे तुम
डाल गले फांसी का फंदा,
तुम्हे कहे जो भारतीय, वह
है दो आँखों वाला अन्धा !

बचपन मे पत को बर्फ की परियो की कहानियाँ सुनने का बडा शौक था। उन्होने कसूरी भाषा के पहाडी ग्रामगीत भी खूब सुने, साधुओ की भी सोहबत

की। उनके बालपन के प्रिय ग्रथ थे मेघदूत, रामायण, महाभारत, वैराग्य शतक। मनिराम, सेनापति, मैथिलीशरण गुप्त, रवीन्द्रनाथ और सरोजिनी नायडू की कविताओ से भी वे प्रभावित हुए। 'हरिऔध' के प्रियप्रवास मे राधारुदन पढ कर रो देते थे। वैसे तो ७ बरस की उम्र मे ही पहिली तुकबदी गजल के रूप में त ने लिखी, १९१६ में उनकी पहली कविताएँ—तम्बाकू का धुँआ और कागज का फूल 'मर्यादा' मे छपी। तब पत को 'हरिगीतिका' छद वहुत प्रिय था। उस पहली प्रकाशित कविता में पत लिखते है, तम्बाकू के प्रति :

सप्रेम पान करके मानव तुझे हृदय में
रखता जहाँ बसे हैं भगवान विश्व स्वामी !

१९१७ मे जब पत ने मिडिल पास किया तभी एक उपन्यास भी लिखा, जिसका नाम था 'हार'। १९१९ मे जयनारायण स्कूल बनारस से मैट्रिक करके पत १९२१ के जुलाई २१ को म्योर कालेज इलाहाबाद में दाखिल हो गये। इन्टर मे उनके विषय थे सस्कृत, इतिहास और तर्कशास्त्र।

१९२१ मे गाधीजी प्रयाग आये। पन्त ने असहयोग आदोलन के प्रभाव मे कालेज की पढाई छोड दी और कविता मे डूब गये। तभी उन्होने 'परिवर्तन' लिखा—जो हिन्दी भाषा या भारतीय साहित्य ही नहीं अपितु विश्व साहित्य की एक अमूल्य निधि है। १९२४ मे पतजी का साम्यवादी पूर्णचन्द्र जोशी से सख्य हुआ। 'पल्लव' का प्रकाशन खडी बोली के काव्येतिहास मे एक युगातर-कारी घटना थी। 'पल्लव' की भूमिका हिंदी कविता के इतिहास में वैसी ही महा-घटना है जैसे कॉलरिज और वर्ड्स्वर्थ का 'लिरिकल वैलेडस' की भूमिका का प्रकाशन, जिससे अग्रेजी साहित्य मे रोमाटिक कविता चल पड़ी।

परन्तु 'गुञ्जन' (१९३०) तक आते-आते पन्त गहरे आध्यात्मिक आत्म-मथन मे और विचित्र कल्पनाकाल मे फँसे से जान पडते हैं। 'तप रे मधुर-मधुर मन !' परन्तु क्यो ? 'जीवन के उच्चादर्शों मे···नित बूड-बूड रे नाविक !' परन्तु क्यो ? ये वे दिन थे जब वे उमर खय्याम का अनुवाद करने लू में घर से बाहर निकले और बीमार पड़े। १९२९ वाला अनुवाद बीस साल बाद 'मधु-ज्वाल' नाम से अभी हाल में छपा है। पत अपने को गाधीवाद और मार्क्सवाद के बीच मे खडित पाते थे। कुछ समन्वय का प्रयत्न 'ज्योत्स्ना' नाटक मे किया। परन्तु फिर 'युगात', 'ग्राम्या'—'युगवाणी' मे वे मार्क्सवाद की ओर अधिक आकृष्ट हुए। 'रूपार्थ' के प्रकाशन काल के स्थल समय वे पूर्णतः भौतिकवाद की ओर झुके थे। 'रूप को मन' देने की उन्हे चिन्ता थी। परन्तु यह स्थिति

अधिक काल नही टिकी। १९३० में 'गुञ्जन' से १९३५ 'युगात' तक यह मंथन उन्हे 'ग्राम्या' (१९४०) तक ले आया। जब गाधी पर उन्होने 'कर्मयोगी' मे कविता लिखी, आः यह सब कुछ तुम नही! चर्खा हरिजनोद्धार! और 'दो पेड' जैसे सुन्दर गीत रचे।

फिर विश्व-युद्ध सामने आ गया। पत जैसे सौदर्यदर्शी, •व्यक्ति वाद प्रधान कवि भौचके रह गये। जैसे एक धक्का लगा, चेतना को ठेस पहुँची। भौतिकवाद का ऊपरी-ऊपरी विचार ढह गया। पत फिर अन्तरोन्मुख हो गये। ७ वर्ष तक उन्होंने कुछ नहीं प्रकाशित किया। फिर निकली 'स्वर्णधूलि' 'स्वर्ण-चेतना', 'खादी के फूल', 'उत्तरा', 'युगपथ'—उत्तरोत्तर आध्यात्मिक विकास वाले कविता सग्रह।

जिन प्रगतिवादी आलोचको ने पहले उन्हे ऊपर चढाकर क्रातिकारी प्रगतिशील कवि बनाया, वे अब उनका यह गहन दार्शनिक रूप देख कर घबडा उठे। कहने लगे पतजी की कविता मे स्वर्ण शब्द का बार-बार आना इस बात का द्योतक है कि वे स्वर्ण के प्रेमी हो गये है।

स्वर्ण का सिक्का दुर्भाग्य से भारत मे नही चलता। अतः इन प्रगतिवादी आलोचको की दृष्टि डाल पर गयी और भारत को स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद स्वर्ण भविष्य की प्रतीक कल्पना करने वाले पत को, अमरीका का प्रचारक कहने से भी ये हमारे तथाकथित मार्क्सवादी बाज न आये।

असल मे पत चाहते है समन्वय। 'उत्तरा' की भूमिका मे उन्होने स्पष्ट लिखा है (पृष्ठ २१ पर)—'मै मार्क्सवादी (आर्थिक दृष्टि मे वर्ग सतुलित) जनतत्र तथा भारतीय जीवन दर्शन को विश्व-शान्ति तथा लोक-कल्याण के लिए आदर्श संयोग मानता हूँ, जैसा कि मैं अपनी रचनाओ मे भी सकेत कर चुका हूँ:

> **अंतर्मुख अद्वैत पड़ा था युग-युग से**
> **निष्प्राण उसे प्रतिष्ठित करने जग में**
> **दिया साम्य ने वस्तु विधान।**

(युगवाणी-कार्लमार्क्स के प्रति)

> **पश्चिम का जीवन सौष्ठव हो,**
> **विकसित विविध-तंत्र में वितरित,**
> **प्राची के नव अरुणोदय से,**
> **स्वर्ण द्रवित भू तमस तिरोहित।**

(स्वर्ण-किरण)

"ऐसा कह कर मैं स्वामी विवेकानन्द के सार-गर्भित कथन—मैं यूरोप का जीवन सौष्ठव तथा भारत का जीवन दर्शन चाहता हूँ," की ही अपने युग के अनुरूप पुनरावृत्ति कर रहा हूँ। मेरी दृष्टि में पृथ्वी पर ऐसी कोई भी सामाजिकता या सभ्यता स्थापित नही की जा सकती जो मार्ग सामाजिक होकर वर्गहीन हो सके। क्योकि ऊर्ध्व सचरण ही वर्गहीन संचरण हो सकता है।

दर्शन के क्षेत्र में समन्वयवाद और नवमानवतावाद की स्थापना के साथ पंत ने भारतीय स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद हिंदी को कई राष्ट्रीय गाने दिये हैं! 'भारतमाता ग्रामवासिनी!' 'जनभारत हे जाग्रत भारत हे!' के गायक पत ने अनेक रूपो मे गाधी युग के अवतरण, अवाहन और अभिवादन किया है। गाधी जी की मृत्यु पर 'बच्चन' के साथ उन्होने अनेक चतुदर्शक लिखे जो 'खादी के फूल' मे संग्रहीत है।

एक छोटे से लेख मे इस महाकवि के समूचे विचार विकास को दे पाना सम्भव नही। फिर भी कवि ने स्वयम् 'प्रतीक' द्वैमासिक में 'युगवाणी पर एक दृष्टि' (प्रतीक संख्या ३) और 'मेरा रचनाकाल' (प्रतीक सख्या ४) में जो कहा है, वह 'आधुनिक कवि' की भूमिका और 'उत्तरा' की भूमिका के साथ पढ़ने से और स्पष्ट हो जाता है।

वस्तुत: किसी उत्तम प्रकाशक को चाहिए कि वह पन्त जी की 'पल्लव', 'युगान्त', 'ग्राम्या', 'आधुनिक कवि', 'उत्तरा', 'ज्योतिष्मती' (अप्रकाशित) इत्यादि भूमिकाएँ एकत्र कर दो 'प्रतीक' वाले लेखो के साथ-साथ प्रकाशित करे।

हिन्दी में पन्त जी की कोई जीवनी भी पूर्णत नही मिलती सिवा 'युगात' की भूमिका, राहुल जी के 'हंस' में प्रकाशित लेख और बच्चन के प्रतीक ६ वाले लेख के।

हम अपने ही कवियो की उपेक्षा कब तक करेंगे! 'प्रसाद' जी की मृत्यु हो गयी—उनकी एक भी प्रामाणिक जीवनी उपलब्ध नही। 'निराला' जी प्रायः निर्वेद प्राप्त है। उनकी एक भी प्रामाणिक सम्पूर्ण जीवनी नही।

पत जी इस शताब्दी का आधा पद-क्रमण कर चुके हैं—उनके साथ भी वही व्यवहार! वही मैथिलीशरण जी, माखनलाल जी और अन्य कविवरों की बात है। हिन्दी राष्ट्रभाषा हो जाने पर भी हमारी जडता की यह नीद कब टूटेगी।

जो दशा जीवनियो की है, वही आलोचना ग्रन्थो की भी है। तिस पर भी पंत जी पर नगेन्द्रजी, श्री शची रानी और श्री विश्वम्भर मानव के विभिन्न आलोचना-ग्रथ उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त 'हमारे साहित्य निर्माता' पुस्तक में

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी के कुछ लेख भी है, यह क्या बतलाता है ? हमारा औदासीन्य या हमारी सस्कृति शून्यता या हमारी साहित्य-कला के प्रति अकर्मण्यतापूर्ण वृत्ति ? आदि।

कविता, पंत के लिए प्रयत्नसाध्य नही। कीट्स के शब्दो मे बेल पर जैसे फूल वैसे कवि में कविता फूटती है। इसी से :

संध्या का लुटपुट,
बांसों का झुरमुट,
चिड़िया चहक रही है टी पी टुट्-टुट् !'

जैसे ध्वनि शब्दो का गायक, 'एक तारा'—'नौका बिहार'—'ज्योत्सना' जैसी मधुर चित्र-पटियो का अकनकार, 'परिवर्तन' और 'युगवाणी' की कविताओ का चित्रक मनीषी, 'ग्राम्य' मे अहीरो, कहारो, चमारो, धोबियो के नृत्यो को वाणी देने वाला लोक-जीवन का छवि ग्राहक 'हे ग्रामदेवता राम-राम' कह कर भारत की जन-जन की संस्कृत मे गए हुआ यह अभिनव भारतीय का कठाभरण और लोक-चेतना और अन्तर्चेतना का समन्वयकार, पत चिरजीवी हो, यही कामना है।

: १६ :

महादेवी वर्मा

"*Now voglio quello che esce da te. ma sol voglio te, Odolce a mote*"

(मै तुमसे मिलने वाली चीज नही चाहती, परन्तु मै तुझे ही चाहती हूँ, ओ मधुरतम प्रिय !) —संत अगस्तीना

देह भाव सर्व जाय ॥ तेव्हाँ विदेहीं सुख होय ॥१॥
तया निद्रें जे पहुडले ॥ भव जागृति नाहीं आले ॥२॥
ऐसी विश्रांति साधल्ली ॥ आनन्द-कला संचरल्ली ॥३॥
त्या एकीं एक होतां ॥ दासी जन्मी कैंची आतां ॥४॥

(देह-भाव सब विलम जाता है। तभी विदेह दशा मे सुख होता है। उस निद्रा मे जो एक बार सो गये वे इस भावजागृति मे नही आये। उन्हे ऐसी विश्राति मिली कि आनन्दकला संचरित हो गयी। उस एक के साथ एक हो जाने पर अब जनाबाई दासी कहाँ रह गयी ?)

नामदेव की दासी जनाबाई के आर्त्त अभगो का मराठी में वही स्थान है जो हिन्दी में और गुजराती मे मीरा के पदो का। वैसे तो विश्व-साहित्य मे ही संख्या और गुण के परिमाण मे लेखिकाएँ और कवयित्रियाँ कम ही हुई हैं, परन्तु जो भी हुई उन्होने सदा मुक्तक गीति-काव्य को ही अपनाया। गार्गी वाचक्नवी हो या स्ट्रावो, मुक्ताबाई हो या हला, घोषा हो या शीला-भट्टारिका, दयाबाई हो या ताज, सुभद्राकुमारी चौहान हो या सरोजिनी नायडू, क्रिस्चिना रोजेटी हो या एला बीलर विलकाक्स, एलिजबेथ ब्राउनिंग हो या

तोरूदत्त किसी कवयित्री ने कोई महाकाव्य लिखा हो, ऐसा उल्लेख साहित्य के इतिहास मे नही मिलता। यानी नारी की काव्य-प्रतिभा ही गीत-काव्य-परक है यह स्पष्ट है।

महादेवी के गीति-काव्य के कला-पक्ष की समीक्षा से पहले महादेवी सम्बन्धी दो-तीन भ्रातियो का निराकरण अत्यन्त आवश्यक है :

१. महादेवी इस युग की मीरा हैं।

२ महादेवी रहस्यवादिनी हैं।

३. महादेवी बौद्ध-दर्शनानुयायिनी अर्थात् 'दुःखवाद या शून्यवाद' की समर्थिका है।

समीक्षक-गण कुछ भी कहते रहे हों, अभी मुझे 'साहित्य-सदेश' मे एक अनेक उपाधि विभूपिता भद्र महिला का लेख पढने को मिला, जिसका शीर्षक भी उतना ही विचित्र था 'श्री महादेवी जी की आरती और मन-मन्दिर की भावना' (देखिये, सख्या १२, अक ८)। उस लेख का आरम्भ और अन्त इस प्रकार से है :

'श्री महादेवी जी आधुनिक युग की मीरा हैं, इसमे कुछ अत्युक्ति नही है। उनका छायावादी दृष्टिकोण रहस्यात्मक है। वे ब्रह्मपूजन को मानती है, लेकिन उनकी भावना और पूजन एक अनूठे ढंग का है। प्रस्तुत काव्य उनकी पूजन की भावना व्यक्त करता है।......

इस प्रकार आरती और मन-मन्दिर की भावना को लेकर श्रीमहादेवीजी ने जीव और ब्रह्म की ऐक्यता को स्थापित करने का कौशल बतलाया है। साधनावस्था मे साधक के हृदय मे, जगत की रागात्मक वृत्तियो का प्रलोभन, और ब्रह्मप्राप्ति की निर्मोह वृत्ति के बीच मे एक बड़ा सघर्ष उत्पन्न होता है, जिसका सुन्दर वर्णन गूढ़ भावो मे किया गया है।"

साहित्य-समीक्षा के लिए परीक्षार्थियो मे प्रमाण माने जाने वाली एक प्रतिष्ठित पत्रिका के बीसवी सदी के मध्य भाग मे छपे इस लेख मे महादेवीजी की आरती उतारने की लेखिका-बहन की भावना का पूरा मूल्य जानते हुए भी मुझे कहने दीजिये कि इस भ्राति का पोषण हिन्दी के अच्छे-अच्छे मान्य समीक्षको ने भी किया है।

'महादेवी का दुःखवाद उन्हे वैयक्तिक सुख-दुःख से आगे बढाकर लोक की ओर उन्मुख करता है। लेकिन भोली-भाली मीरा अपनी प्रणय-भावना को महादेवी की तरह बौद्धिक समय से नहीं बाँध सकती थी।'

कुछ उदाहरण लीजिए :

बरसै बदरिया सावन की,
सावन की मनभावन की।
सावन में उमग्यौ मेरो मनवा,
भनक सुनी हरि आवन की ॥ —मीरा

मुस्कराता संकेत भरा नभ
अलि क्या प्रिय आने वाले हैं?
नयन श्रवणमय श्रवण नयनमय
आज हो रही कैसी उलझन।
रोम रोम में होता री सखि
एक नया उर का सा स्पन्दन।
पुलकों से बन फूल बन गये
जितने प्राणों के छाले हैं। —महादेवी

सुनी हो मैं हरि आवन की आवाज।
म्हेल चढि-चढ़ि जोऊँ मेरी सजनी
कब आवैं महाराज।
दादुर मोर पपइया बोले
कोइल मधुरे साज।
उमग्यौ इन्द्र चहूँ दिसि बरसै
दामिण छोड़ी लाज।
धरती रूप नवा नवा धरिया
इन्द्र मिलण के काज।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर
बेगि मिलो महाराज। —मीरा

लाये कौन सन्देश नये घन
अम्बर गर्वित
हो आया नत
चिर निस्पन्द हृदय में उसके
उमड़े री पुलकों के सावन!
जीवन जलकण से निर्मित सा
चाह इन्द्र धनु से चित्रित सा

सजल मेघ सा धूमिल है जग
चिर नूतन सकरुण पुलकित सा
तुम विद्युत् बन आओ पाहुन
मेरी पलको पर पग धर धर। —महादेवी

सखी मेरी नींद नसानी हो।
पिय को पन्थ निहारत सिगरीरैण बिहानी हो। —मीरा

पथ देख बितादी रैन मै प्रिय पहचानी नहीं। —महादेवी

पपइया रे पिय की वाणी न बोल। —मीरा
मुखर-पिक हौले हौले बोल। —महादेवी

पतियाँ मै कैसे लिखूँ लिखियो न जाय।
कलम धरत मेरो कर काँपत है नैनन है झर लाय॥ —मीरा

कैसे सन्देश प्रिय पहुँचाती।
दृग जल की सित मसि है अक्षय
मसि प्याली झरते तारक द्वय
पल पल के उडते पृष्ठो पर
सुधि से लिख साँसो के अक्षर
मैं अपने ही बेसुधपन मे
लिखती हूँ कुछ कुछ लिख जाती। —महादेवी

असल मे ऐसी तुलनाओ के भूल मे सब से बडी भूल यह है कि जो दो कवयित्रियाँ या साहित्यकार बहुत अलग-अलग देशकाल-परिस्थितियो के परिपार्श्व मे पनपे है, उनमे समता-विषमता खोजना ही व्यर्थ है; क्योकि बहुत-सी बातें तो उनके युग के प्रभावरूप मे रहती हैं। मीरा आज पुनः जीवित होती तो वे महादेवी ही बनती या और कुछ यह कहना उतना ही कठिन है जितना महादेवी-जी के काव्य मे उपनिषद् और वेदान्त के ब्रह्म-तत्त्व को खोजने का निरर्थक यत्न करना।

इसी चर्चा से स्पष्ट हो गया कि महादेवी की रचनाओ के विषय में जो दूसरी और तीसरी बड़ी मान्यताएँ हैं कि वे रहस्यवादिनी है (अतः निर्गुण सतो की या बौद्ध-विज्ञानवादियो की निकटवर्तिनी हैं) और बौद्ध-दर्शन के प्रभाव से दुःखवाद की विवृति करने वाली कवयित्री हैं—यह दोनो भी उतनी ही अयथार्थ हैं, जितनी कुछ आलोचको द्वारा महादेवी मे फ्रायड के मानदंड से कुण्ठित वर्जनाओ और इच्छा-पूर्ति का सरंजाम खोज निकालना।

काव्य मे रहस्यवाद की स्थिति को समझने के लिए आवश्यक है कि कुछ भूलभूत तत्त्वो से परिचित हो जायँ । केवल कुछ वाह्य भाव-साम्य तो सभी रहस्योन्मुखी कवियो में मिल जाता है, पर क्या वह पर्याप्त है ?

जैसे, महादेवी ने कहा है :

मेरे प्रिय को भाता है
तम के पर्दे में आना
ओ नभ की दीपावलियो
तुम चुपके से बुझ जाना।

इस भाव मे और 'शबे-विसाल मे क्या काम है जलने वालो का' कह कर सितारो को गुल करने वाले उर्दू कवि मे या अंग्रेजी के 'मेटाफिजिकल पोएट' (आध्यात्मिक कवि) वागैन का :

O for that Night ! where I in him
Might live invisilbe and dim.

समान हैं तो इससे क्या ? या रवीन्द्रनाथ ने गीताजली के आरम्भिक गीत मे कहा है कि 'मै तुम्हारे हाथो मे की वह वशी हूँ जिसे भर-भर कर तुम बार-बार रिक्त कर देते थे।' या महादेवी ने भी अपने एक गीत में 'दीपशिखा' में यह वंशरी का रूपक सार्थक बनाया है, तो क्या हम यह कहे कि दोनो ने मूलतः जलालुद्दीन रूमी नामक ईरानी सूफी से यह कल्पना ली है, जिसने लिखा था :

I rest a flute laid on thy lips,
A lute, I on the breast recline
Breathe deep in me that I may sigh;
Yet strike my strings, and tears shall shine.

और इस प्रकार बहुत सा समान प्रतीक-सयोजन या सकेत-विधान प्रायः सभी रहस्यवादियों मे मिल जाता है। परन्तु क्या केवल उस प्रकार की शब्दावली से कोई भी कवि रहस्यवादी हो जा सकता है ?

'साध्यगीत' मे महादेवी जी ने लिखा है : 'शलभ ! मैं शापमय वर हूँ !' और दीपशिखा मे 'अग्नि पथी मैं तुझे दूँ कौन-सा वरदान !' तो इस प्रकार के शमा-परवाने या दीप-पतंग के उल्लेख अन्य कवयित्रियो मे भी मिलते हैं :

१७६५ ई० की उर्दू-कवयित्री 'शोख़' ने भी लिखा था :

शमा की तरह कौन ऐ जाने !
जिसके दिल की लगी हो, सो जाने

या

अब छाया है, मेह बरसता है,
जल्द आजा कि जी तरसता है !

(उर्दू कवयित्रियाँ, दोआब : शमशेर बहादुरसिंह पृ० १५६) और मराठी की नामदेव की समकालीन जनी ने भी कहा :

नाद पड़े कानीं ॥ मृग पैज घाली प्राणी ॥
आवडी अन्तरीं ॥ गज मेला पडे गारीं ॥
चोख पाहे अंग ॥ दीपें नाडला पतग ॥
गोडी रसग का ॥ मच्छ अड़कून गला ॥
गंधे अली नेला ॥ मूखे जनी तोचि मेला ॥

अर्थात्—नाद कानो पर आया, मृग ने अपने प्राणो की बाजी लगा दी। प्रेम से गज कर्दम मे धॅसता गया, अपनी रुचि से भर गया। सुन्दर अग देखा और दीपक मे पतंग जाकर अटक गया। मीठा काँटे के किनारे देखकर मछली बंसी मे फॅस गयी। गध अलि को ले गया। जनी कहती है वही भाग।

परन्तु कुछ कवियो के सकेत-विधान मे रहस्यवादियो की प्रिय शब्दावली आ जाने मात्र से क्या वे रहस्यवादी हो जाते है ?

रहस्यवाद की भारतीय-स्थिति को समझाने का न तो यह स्थल है, न अवसर। परन्तु मै एलबर्ट श्वाइट्जर के 'इडियन थॉट एन्ड इट्स डेवलपमेंट' मे पृष्ठ २६३ से आगे भारतीय रहस्यवाद की विकासावस्थाओ का स्पष्टीकरण कर देना चाहता हूँ। आरंभिक कुतूहलमय रहस्यवाद प्रकृति की विराट्-शक्तियो के प्रति भय-विस्मयपूर्ण (वैदिक-औपनिषदिक); मध्ययुगीन नैतिक रहस्यवाद और उसकी तान्त्रिक अराजकता तथा उच्छृखल सर्व-नियम-नकार में परिणति, राम-मोहनराय के 'प्रकृति मे परमात्म-तत्त्व' देखने के नये दर्शन के पश्चात् रवीन्द्रादि का सर्वास्तिवादी रहस्यवाद—इस विकास-रेखा में बहुत से रहस्य खिले हैं। दर्शन की मोटी-मोटी बातें जिन्हे ज्ञात हो, वे जानते हैं कि परमतत्त्व, ईश्वर, जीवात्मा और जड-जगत् के विषय मे भारतीय दार्शनिक चिंताधाराओ का विभिन्न दृष्टिकोण रहा है।

इस मत मतातर के झमेले मे रहस्यवाद का इतना आसानी से निरूपण करना कि महादेवीजी ब्रह्म की उपासिका हैं, मुझसे यह कहने की हिम्मत नही होती। उन्ही के शब्दों में कला के विषय में उनके विचार जानने से यही प्रतीत

होता है कि वे छायावादी (यानी रोमॉटिक) कवयित्री हैं। परन्तु अन्य छाया-वादियो की भॉति निरे सौदर्य-शोध (यथा पंत) या आनंद-बोध (यथा प्रसाद) में वह खो नही गयी परंतु आदर्शवाद की सूक्ष्म-छटा उन्हे प्रतीक-विधान में अटकाये रखती है ।

उनके सर्वोत्तम ग्रंथ 'दीपशिखा' के 'चिंतन के क्षण से' नामक भूमिका में उन्होने स्पष्टतः कहा है : 'बहिर्जगत से अतर्जगत तक फैले और ज्ञान तथा भाव-क्षेत्र मे समान रूप से व्याप्त सत्य की सहज अभिव्यक्ति के लिए माध्यम खोजते-खोजते ही मनुष्य ने काव्य और कलाओ का आविष्कार कर लिया होगा। कला सत्य को ज्ञान के सिकता-विस्तार मे नही खोजती, अनुभूति की सरिता के तट से एक विशेषबिंदु पर ग्रहण करती है।' (पृष्ठ २)

और 'जहॉ तक काव्य तथा अन्य ललित-कलाओ का सम्बन्ध है, वे उपयोग की उस उन्नत-भूमि पर स्थायी हो जाती है जहॉ उपयोग सामान्य रह सके।··· वास्तव में कलाकार तो जीवन का ऐसा सगी है जो अपनी आत्म-कहानी में हृदय-हृदय की कथा कहता है और स्वय चल कर पग-पग के लिए पथ प्रशस्त करता है। काटा चुभाकर काटे का ज्ञान तो संसार दे ही देगा, परन्तु कलाकार बिना कॉटा चुभने की पीड़ा दिये हुए ही उसकी कसक की तीव्र मधुर अनुभूति दूसरे तक पहुँचाने मे समर्थ है।' (पृष्ठ छः) और 'कवि का दर्शन' जीवन के प्रति उसकी आस्था का दूसरा नाम है। दर्शन में, चेतना के प्रति नास्तिक की स्थिति भी संभव है, परन्तु काव्य मे अनुभूति के प्रति अविश्वासी कवि की स्थिति असभव ही रहेगी।' (पृष्ठ ६)

पृष्ठ आठ पर वे लिखती हैं : 'चरम सीमा पर जैसे यथार्थ विक्षिप्त गति-शील है वैसे ही आदर्श निष्क्रियता में स्थिर हो जाता है। एक विविध उपकरणो का बवंडर है और पूर्ण निमित पर अचल मूर्ति। साधारणतः जीवन मे एक ही व्यक्ति यथार्थदर्शी भी है और आदर्शस्रष्टा भी, चाहे उसका यथार्थ कितना ही अपूर्ण हो और आदर्श कितना ही संकीर्ण।'

'नास्तिकता उसी दशा में सृजनात्मक विकास दे सकती है जब ईश्वरता से अधिक सजीव और सामंजस्यपूर्ण आदर्श जीवन के साथ चलता रहे। जहॉ केवल अविश्वासी ही उसका संबल है वहॉ वह जीवन के प्रति भी आस्था उत्पन्न किये बिना नही रहती। और जीवन के प्रति अविश्वासी व्यक्ति का सृजन के प्रति भी आस्थावान हो जाना अनिवार्य है। ऐसी स्थिति का अन्तिम और अवश्यम्भावी परिणाम, जीवन के प्रति व्यर्थता की भावना और निराशा ही होती है।

इसी से सच्चा कवि या कलाकार किसी न किसी आदर्श के प्रति आस्थावान रहेगा ही।' (पृष्ठ १३)

इसीलिए सच्चे रहस्यवाद और निराशावाद का कोई जोड नहीं है। नीत्शे ने अपने 'गे साइलेंस' (आनन्द-मौन) में गरज कर कहा था :

"Where is God ? he cried, well, I will tell You We have murdered him—you and I....But how did we do this deed ?...whither are we moving ?...Are we not falling incessantly ?...Are we not staggering through infinite nothingness ?...Is night not approaching, more and more night...?"

इसी भावना से, खण्डित जनमत के भाव से महादेवी ने कहा :

'आज जीवन के निकट परिचय के साथ कवि मे उस अखंडता का भावन भी अपेक्षित है जो मनुष्य-मनुष्य को एक ही धरातल पर समानता दे सके।' (पृष्ठ सत्रह)

'छायावाद को तो शैशव में कोई सहृदय आलोचक ही नहीं मिल सका।···· छायावाद एक प्रकार से अज्ञात-कुलशील बालक रहा, जिसे सामाजिकता का अधिकार ही नहीं मिल सका।···

'कवियों में एक दो अपवाद छोड़कर शेष ऐसी अनिश्चित स्थिति मे रहे और रहते आ रहे हैं जिसमे न लिखने का अनिवार्य परिणाम, उपवास चिकित्सा है।···नया कवि अपने अनेक वाणी मे बोलने वाले नये आलोचक से उतना आतंकित है जितना दरबारी कवि राजा के षड्यंत्रकारी मंत्री से हो सकता था।' (पृष्ठ उन्नीस)

छायावाद की, मेरे मत से, सबसे बडी कमजोरी यह थी कि वह उत्तरोत्तर आत्माभिव्यजन की अपेक्षा आत्म-गोपन मे, आत्म-संकोचन में विश्वास करने लगा। स्वभावतः वह आत्म-हनन मे जाकर रुका। इसकी विस्तृत समीक्षा मैंने सन् १६३८ मे 'अरमानो की चिता' नामक कविता-पुस्तक की लंबी भूमिका मे की थी। डायलैन टॉमस नामक वेल्स कवि का कथन है कि :

"Poetry is the rhythmic inevitably narrative movement from our clothed blindness towards a naked vision."

संक्षेप में महादेवी की कविता की समीक्षा के भूमिका रूप में इतनी बातें

कहने के बाद मे उनकी कविता और चित्रकला की कुछ प्रमुख विशेषताओ का उल्लेख करना चाहता हूँ।

१. उनमे आत्मार्पण तथा आत्म-पीडन अत्यधिक है। यानी कहीं भी उन्होने अपने-आपको उभार कर नही रखा है। और वैसे उन्होने अपने सिवा ओर किसी के भावो की बात भी कहाँ की है?

२. उन्होने अपनी उपमाओ, उत्प्रेक्षाओ, रूपको और भ्रातिमान, अन्योक्ति तथा साग-रूपको की भी एक परिधि बाँध ली है। उसी मे उनकी कल्पनाएँ उड़ान भरती हैं, या चक्कर काटती हैं।

३. उनकी भाषा, चाहे गद्य हो या पद्य, साफ-सुथरी, सुघर, शिल्पित (Chiselled) है। कहीं खोजकर ही कोई शब्द-दोष मिले।

४. छदो मे विविधता का अभाव है, एकरसता जैसे उनकी रचनाओ मे सर्वत्र सव्याप्त है।

५. उन्होने गीत थोडे ही लिखे है। परन्तु उनमे रचना का मँजाव-निखार वहुत ही सयत है। भावनाओ पर आत्म-सयम का आदर्श नियंत्रण है।

६. कहीं भी उनकी कल्पना मे यान्त्रिकता अथवा हठाकृष्टता नहीं। अतः दूरान्वय या शब्द-अर्थ-दुरूहता की भी बाधा नहीं। ऋजु, प्रसाद-गुणमयी **शैली है।**

७. उनकी कविता गेय है।

कुमारी हेमलता जनस्वामी ने अपने प्रबन्ध 'महादेवी वर्मा का काव्य' मे लिखा है: "भाषा मे सगीतात्मकता अपनी विशेषता रखती है। इसके लिए वर्ण-मैत्री, शब्दमैत्री, पदमैत्री, कोमलता तथा उपनागरिका वृत्ति इन गुणो की आवश्यकता होती है। महादेवी जी के शब्द-प्रयोग मे 'ट' वर्ग के वर्णों तथा कठोर वर्णों का बहुधा अभाव मिलता है। 'प' वर्ग तथा 'त' वर्ग के वर्ण म, र, ल, ण, न, तथा अनुस्वारयुक्त वर्णों का प्रयोग बहुलता से मिलता है। उनकी रचना मे प्रचुर मात्रा मे प्रयुक्त होने वाले कुछ शब्दो को देखिये :

"मधु, मदिरा, मदिर, मादक, मादकता, विधु, मुसकान, सुरभि, सुरभित, समीर, स्पन्दन, पथिक, वेदना, पाहुन, तारक, लघु, सुधि, सुधि-सम्बल, पथ, लहर, लास, लोल, झीना, करुणा की कोर, तुहिन-कण, अश्रुकण, करुणेश, तरिणी, नाविक, सुधि-वसत, सुमनतीर, नवल, नेह-राग, स्मितपराग, मधुकन, अनजानी, बोझिल, तड़ित, इसमें म, र, ल, ण, न, अनुस्वारयुक्त, स्वर जैसे

संदेश, संकेत, आदि शब्दो के प्रयोग, उपनागरिक वृत्ति हमें मिलती है। 'त' वर्ग, 'प' वर्ग, 'च' वर्ग के वर्णों मे स्वाभाविक कोमलता होती है। जैसे—तारक, नवल, पथ, पथिक, बोझिल, चरण, चंचल आदि।"

यह दुहराना उनके 'नीरजा' के उपरान्त के गीतो मे अधिक हुआ है। परन्तु आरम्भिक गीतो मे विशेषतः 'रश्मि' के 'अतृप्ति' 'आत्म-परिचय' आदि गीतो मे विलक्षण मौलिकता और सहज नवीनता के दर्शन होते है। बाद मे धीरे-धीरे जैसे उनकी कविता एक काट मे बँधने लगती है। और 'सान्ध्यगीत' तथा 'दीपशिखा' मे आकर तो इतना स्वयम् को पुनः-पुनः विभिन्न रूपो से उद्धृत करने की वृत्ति बढती है कि उनका कविता के रूप के प्रति आग्रह एक स्वय-निर्मित बन्धन बन जाता है।

ऐसे समय हमारे समीक्षक-गण यह नही विचार करते कि उनकी कविता की रसात्मकता कम होती जा रही है या बढती जा रही है? 'पौनः पुन्य' के कारण क्या वस्तुतः रसनिष्पत्ति मे बाधा पडती है, यह एक विचारणीय प्रश्न है। ऐसी दशा मे कल्पना के आवर्त्तन में आनन्द-लाभ और रस का भावन उनकी रचना मे कैसे होता है?

'शम' को भावाभाव मान कर चले तो बचे उन्चास भावो को ही ले, जिनके बारे मे भरत ने नाट्य-शास्त्र मे पृष्ठ ७३ पर 'रसाना भावना च नाठ्याश्रिताना चार्थानाम् आचारोत्पन्नानि आप्तोपदेशसिद्धानि नामानि भवन्ति' कहा है। रति, उत्साह, जुगुप्सा, क्रोध, हास, विस्मय, शोक, भय और (शम) यह नव रसातर्गत स्थायी भाव है। सात्विक भाव है आठ। इनमें से रोमाच, स्वर-भेद और कंप तो सभी भावो के साथ चलते है, स्तम्भ भय और विस्मय के साथ रहता है, स्वेद, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय भय-शोक के साथ रह सकते है।

तैतीस व्यभिचारी भावो मे से मरण, व्याधि, ग्लानि, श्रम, आलस्य, निद्रा, स्वप्न, अपस्मार, उन्माद, मद, मोह, जडता, चपलता यह चौदह भाव तो शारीरिक अवस्थाओ के समान है।

स्मृति, मति, वितर्क है ज्ञानात्मक मनोअवस्थाओ से समानान्तर।

और हर्ष, अमर्ष, धृति, उग्रता, आवेग, विषाद, निर्वेद, औत्सुक्य, चिंता, शंका, असूया, त्रास, गर्व, दैन्य, अवहित्थ, और व्रीडा भावनात्मक मनोऽव-स्थाओ से समतुल्य है।

महादेवी की कविता मे रति, विस्मय शोक और शम इन स्थायी भावो की और रोमॉच, कप, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय इन सात्विक भावो की प्रधानता

है। व्यभिचारियो मे से मरण, ग्लानि, निद्रा, स्वप्न, उन्माद, भय, मोह, चपलता, स्मृति, वितर्क, आवेग, विषाद, निर्वेद औत्सुक्य, चिन्ता, शका, त्रास, गर्व और व्रीडा—इस प्रकार से पचास में से सत्ताईस भावो का ही विशेष प्रयोग किया गया है।

स्पष्ट है कि इस कारण उनके चित्रो में और गीतो मे एकागीपन आ गया है। एकागिता उनकी रचनाओ में कहीं भी विरोधी रग (काट्रास्ट) नही उपस्थित करती। जैसे विरह के अनंत चित्र हैं, मिलन के चित्र अत्यत विरल हैं। दुःख, करुणा, वेदना, व्यथा का प्राधान्य है, सुख, हर्ष, आह्लाद, आनन्द का उस मात्रा मे बहुत ही अभाव है। जैसे उनके काव्य-व्योम मे उदासी की धु धली बदली सदा, सर्वकाल छाई रहती है।

रस की निर्मिति के लिए कलाकृति के मूल मे 'द्वन्द्व' बहुत आवश्यक है। महादेवी की कविता मे सर्वत्र एकस्वरता, एकरसता मिलती है, जो कला की दृष्टि से रस-हानि-परक है। भामह ने तो कहा था कि काव्य के लिए कुछ भी वर्ज्य नहीं, पर महादेवी जी 'टीस' शब्द पसन्द नही करती। भामह की उक्ति है :

न स शब्दो न तद्वाच्य न सन्यायो न सा कला।
जायते यत्र काव्यांगमहो भारो महान् कवेः।

इस एकरसता के कारण महादेवीजी की भावुकता मे एक प्रकार की कुण्ठा, आत्मावरोध अतः विजडीकरण निर्माण हो गया है, जिसका मनोवैज्ञानिक फल है सतत प्रतीक्षा और निरन्तर शाश्वत टोह की भावना। फ्रायड की शब्दावली मे इसी को 'वेरड्रानङ्गुग' (Verdrangung) से 'वेरडिकटुङ' (verdichtung) और उसी से 'वोलेन उण्ड स्ट्रैवेन' (Wollen und streben) कहा गया है।

अब वर्षा की प्रतिमाओ को ही ले लीजिए। अमरुक ने भी शृगारपरक उसका प्रयोग किया है, पर गाथासतशती का कैसा नागर सस्करण है, देखिये :

धीरं वारिधरस्य वारिकिरतः श्रुत्वा निशीथे ध्वनिम्।
दीर्घोच्छ्वासमुदश्रुणा विरहर्णी बालां चिरं ध्यायता॥
अध्वन्येन विमुक्तकंठमखिलां रात्रिं तथा क्रंदितम्।
ग्रामीणैः पुनरध्वगास्य वसतिर्ग्रामे निषद्धा यथा॥

जॉन डिवी ने 'आर्ट एण्ड एक्पीरिअस' ग्रन्थ मे चतुर्थ अध्याय में अभिव्यंजना मे कला तथा सहजता की विशद चर्चा की है। कलाकार की भावानुभूति अपने विषय के आसपास मे यों आकृष्ट हो जाती है जैसे चुम्बक से लौह-

चूर्ण। परन्तु इस अनुभूति के प्रकटीकरण मे भी एक प्रकार की अनिवार्यता, अपरिहार्यता, अनिर्बंध, अनवरतता होती है, जिसका प्रत्यय क्रमशः श्लथ होने वाली छायावादियो की कला-शैली मे स्पष्ट है। महादेवी वर्मा इस नियम की अपवाद नही है। उनका वेदनावाद उत्तरोत्तर उनकी कला की सीमा बन गया है।

मेरी बात का प्रमाण उनकी आत्मकथात्मक कविता 'बीन हूँ मै तुम्हारी रागिनी भी हूँ!' मे अन्तिम छद देखिये :

दूर तुमसे हूँ अखंड सुहागिनी भी हूँ!
आग हूँ जिसके ढुलकते बिन्दु हिमजल के,
शून्य हूँ जिसको बिछे हैं पाँवडे पल के;
पुलक हूँ जो वह पला है कठिन प्रस्तर मे,
हूँ वही प्रतिबिंब जो आधार के उर में;
नील घन भी हूँ सुनहली दामिनी भी हूँ!
नाश भी हूँ मै अनन्त विकास का क्रम भी,
त्याग का दिन भी, चरम आसक्ति का तम भी.
तार भी, आघात भी, झंकार की गति भी,
पात्र भी, मधु भी, मधुप भी, मधुर विस्मृति भी;
अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ!

इसमे उन्होने जीवन के भद्र और रुद्र दोनो सत्य पक्षो का वैसा ही एक साथ उल्लेख करने का यत्न किया है जैसे शिवमगलसिंह 'सुमन' ने बाद में अपने एक गीत मे—'मै सुन्दर और असुन्दर दोनो साथ-साथ'। पर जीवन मे मिट्टी और फूल, प्रलय और सृजन, नाश और निर्माण दोनो पक्ष होने पर भी महादेवीजी ने एक ही पक्ष पर क्यो जोर दिया है? इसका कारण उनकी 'रश्मि' की भूमिका मे दुःखवाद के समर्थन पर उनकी उक्तियो में मिलेगा। देश परतन्त्र, दीन, दुःखी था, अतः महादेवी ने वेदनावाद अपनाया। 'दीपशिखा' के ५१ गीतों में प्रत्येक गीत में अश्रु का उल्लेख है।

महादेवी के चित्रो मे करुण मुद्राओ का आधिक्य है। काँटो से बँधे हाथ, मृतप्राय शिशु, अँधेरा और टिमटिमाते दीप अधिक हैं। वे लिखती है :

'व्यक्तिगत रूप से मुझे मूर्त्तिकला विशेष आकर्षित करती है, क्योकि उसमें कलाकार के अंतर्जगत का वैभव ही नही, बाह्य आभास भी अपेक्षित रहता है।'...

…'चित्रकला मे भी बहुत छोटे से ज्ञान-बीज पर मैंने रग-रेखा की शाखाएँ फैला दी हैं।' दीपशिखा (पृ० इक्कीस)

'कुछ अजन्ता के चित्रो पर विशेष अनुराग के कारण और कुछ मूर्तिकला के आकर्षण से चित्रो मे यत्र-तत्र मूर्ति की छाया आ गई है। यह गुण है या दोष, यह तो मै नही बता सकती, पर इस चित्र-मूर्ति सम्मिश्रण ने मेरे गीत को भार से नहीं दबा डाला है, ऐसा मेरा विश्वास है।' (पृ० बाईस)

'मेरा चित्र गीत को एक मूर्त्त पीठिका मात्र दे सकता है, उसकी सपूर्णता बॉध लेने की क्षमता नहीं रखता।' (पृ० बाईस)

यो उनके चित्र कविताओ के 'इलस्ट्रेशन्स' मात्र है। उनकी शैली पर अजंता का तो उतना नहीं जितना रोरिक, चुगताई और कनु देसाई का प्रभाव दिखायी देता है। वैसे ही शैलशृंग, लबी-लंबी रेखाएँ और सिलहुट।

वे लिखती हैं :

'काव्य इतना मूल्यवान क्यो हो कि सब तक न पहुँच सके यह भी समस्या है।' (पृ० बाईस)

परन्तु केवल ५१ चित्र गीतो की पुस्तक 'दीपशिखा' के दाम बाईस रुपये है। इस ग्रथ की जनता से दूरी पूरी करने के लिए शायद महादेवी जी ने ४३ में 'बगदर्शन' भी प्रकाशित किया।

महादेवीजी की कविता के समान चित्र-कला की अपनी एक विशेषता है, व्यक्तिगत शैली है। कवि-चित्रकार रहस्यवादी विलियम ब्लेक ने लिखा था कि : 'Painting as well as music and poetry exist and exult in immortal thoughts'.

ऐसी ही अमर विचार-सपदा के कारण महादेवी की प्रतिभा ने ललितकला के इन रूपो को—स्थूल चक्षुरेन्द्रिय को आनन्द देने वाली चित्रकला तथा सूक्ष्म भाव-जगत् को छूने वाली कविता को एकाकार कर दिया है। वर्ण-वर्ण में पक्ति बन गयी है। रग रेखाकार हो उठे हैं। उनकी लगन और निष्ठा का वह अन्तर है कि जैसे कभी बहुत पहले सत-काव्य की परम्परा की कवयित्रि सहजोबाई ने कह दिया था कि :

> उलटा सुलटा बीज गिरै ज्यों,
> धरती माहीं कैसे।
> उपजि रहै निहचै करि जानौ,
> हरि-सुमरन है ऐसे॥

वैसे ही किसी नियमित चित्रकला-शिक्षण, अथवा 'पर्स्पेक्टिव' के गणित और टेकनीक की बारीकियो के ज्ञान के अभाव मे भी, उनके ये चित्र अपने-आप उद्गार हैं। उन्हे किसी परिचय की आवश्यकता नही।

महादेवी के व्यक्तित्व मे अपार करुणा है, जिसका सदुपयोग वे साहित्यकार ससद् जैसी लोकोपयोगी सस्थाओ मे कर रही है। हमे आशा है कि आज की युद्ध की आशका से पीडित, संत्रस्त मानवता को 'बंग दर्शन' की भॉति उनकी वाणी पुनः शाति का संजीवक हिम-सेक देगी। कविता और चित्रकला का जैसा सुन्दर उपयोग उन्होने अपनी 'स्व' की भाव-व्यजना मे किया, वैसे ही लोक-मगल की मर्यादा की रक्षा करते हुए हिंदी-कवियों की श्रेष्ठ परम्परा के अनुसरण मे वे देश और ससार के शान्ति का मार्ग प्रशस्त करने वाली रचनाएँ अपनी तूलिका और लेखनी से देगी।

यद्यपि समीक्षक की बौद्धिकता से कुछ विश्लेषण मैंने ऊपर किया है, उनकी कला साधना के प्रति मुझे बडी श्रद्धा है। अतः आज की विषमता और अन्याय से पीडित मानवता मे मै उनसे अलेक्सी सुरकोव नामक तरुण सोवियत-कवि की इस शब्दावली मे अन्त मे अपील करना चाहता हूँ :

Speak up !
The hour has struck when stern, severe
Truth's rights by truth must be seized.

बोलो! घंटा बज उठा है। कठोर, कठिन, जब सत्य से सत्य का अधिकार छीनना है।

: १६ :

दिनकर

'कुरुक्षेत्र' के निवेदन मे कविवर कहते हैं : 'कलिंग विजय' नामक कविता लिखते-लिखते मुझे ऐसा लगा, मानो युद्ध की समस्या मनुष्य की सारी समस्याओं की जड हो। आत्मा का सग्राम आत्मा से और देह का सग्राम देह से जीता जाता है। ...युद्ध एक निंदित और क्रूर कर्म है, किन्तु इसका दायित्व किस पर होना चाहिए ? उस पर जो अनीतियो का जाल बिछाकर प्रतिकार को आमंत्रण देता है ? या उस पर, जो इस जाल का छिन्न-भिन्न कर देने के लिए आतुर है ..मैं जरा भी दावा नही करना कि 'कुरुक्षेत्र' के भीष्म और युधिष्ठिर ठीक-ठीक महाभारत के ही युधिष्ठिर और भीष्म है। यद्यपि मैने सर्वत्र ही इस बात का ध्यान रखा है कि भीष्म अथवा युधिष्ठिर के मुख से कोई ऐसी बात नही निकल जाय जो द्वापर के लिए सर्वथा अस्वाभाविक हो। हाँ, इतनी स्वतन्त्रता जरूर ली गई है कि जहाँ भीष्म किसी ऐसी बात का वर्णन कर रहे हो जो हमारे युग के अनुकूल पडती है, उसका वर्णन नये और विशद रूप से कर दिया जाय। ..दर असल, इस पुस्तक मे मै, प्रायः सोचता ही रहा हूँ। भीष्म के सामने पहुँचकर कविता जैसे भूल-सी गई हो। फिर भी, कुरुक्षेत्र न तो दर्शन है और न किसी ज्ञानी के प्रौढ़ मस्तिष्क का चमत्कार। यह तो अन्ततः, एक साधारण मनुष्य का शकाकुल हृदय ही है, जो मस्तिष्क के स्तर पर चढकर बोल रहा है।"

मैने 'दिनकर' के निवेदन के अंश को विस्तार से इसलिए दिया कि कवि के दृष्टिकोण को समझने मे इस प्रकार सुविधा होगी। शायद दिनकर का प्रबध-काव्य की ओर यह पहला ही कदम है। वैसी लम्बी वस्तुनिष्ठ कविताएं वे पहले

लिख चुके हैं। परन्तु ख्याति है उनकी राष्ट्रीय और 'मेघरध्र में बजी रागिणी' जैसी प्रगतिशील कविताओ के कारण। यद्यपि 'रसवती' के बाद कवि कुछ कलावाद में खोते से जान पड़े, उदयपुर कवि-सम्मेलन के भाषण मे उन्होने कलाकारो की स्वतत्र चिन्ता को पुनः ललकारा।

एक आलोचक के लिए दोनो प्रश्न विवाद्य हो सकते है : एक, क्या युद्ध काव्य का उपयुक्त विषय है ? दो, क्या इतिहास पर समकालीन घटनाओ का प्रत्यारोप किया जाय ? हाल मे इग्लैड के एक समकालीन कवि लुई मैकनीस की एक बढिया किताब 'येट्स की कविता' मैने पढी है। उसकी शुरुआत मे ही वे कहते है : 'मैने यह पुस्तक लिखनी शुरू ही की थी कि जर्मनी ने पोलैड पर धावा बोल दिया। उस दिन मैं गैलवे नामक स्थान पर था। मैने रेडियो पर यह खबर सुनी। गैलवे मेरे लिए एक अयथार्थ वस्तु बन गया, येट्स की कविता भी अयथार्थ लगने लगी। यह नही कि गैलवे और येट्स दोनो अतीत की बाते हो; मगर यह कि शनैः-शनैः मुझे आधुनिक लन्डन, आधुनिकतम कला, वामपक्षीय राजनीति सब शून्य जान पडने लगा। मुझे जान पडा कि अगर युद्ध येट्स या और ऐसे 'पलायनवादी' कहलाने वाले कवियो को व्यर्थ सिद्ध करता है, तो 'यथार्थवादी' कहलाने वाले कवि भी उसकी चपेट से कहा बचेंगे ? युद्ध तो दोनो तरह की कविताओ के लिए एक-सा हानिकारक है, चाहे वह 'अप्सरा द्वीप' की कविता हो, चाहे मजदूर और कारखाने की। ज्यो-ज्यो युद्ध के आघात से मै कुछ सॅभला, मैने निष्कर्ष पाया कि दोनो प्रकार की कविता या तो साथ-साथ जीती है या साथ-साथ मरती है। युद्ध से यह नही सिद्ध होता कि अमुक प्रकार की कविता अधिक अच्छी है या बुरी; वह तो सभी प्रकार की कविताओ को प्रसिद्ध कर डालता है। और कविता प्रसिद्ध नहीं होनी चाहिये। यदि युद्ध यथार्थता की कसौटी है तो समस्त कविता अयथार्थ हैं—और यह अयथार्थता गुण है। यदि युद्ध यथार्थता का शत्रु है; यद्यपि वह स्वयं घोर तथ्य है; तो यथार्थता कुछ ऐसी चीज है जो तथ्यो से नही आकी जा सकती।' अतः दिनकर ने भारत को विषय बनाया, इसमे कोई दोष नहीं; परन्तु उस पर समसामयिक समस्याओ का आरोप किया, इसमे मेरी अल्पमति मे भीष्मादि पात्रो के साथ 'कुरुक्षेत्र' मे अन्याय हो गया।

परन्तु यह प्रवृत्ति आधुनिक साहित्य मे अत्यधिक है। इतिहास को इतिहास की भाति देखना हम सीखे। हमारे उपन्यासकार, राहुल के 'जय यौधेय' और यशपाल की 'दिव्या' मे इतिहास का उपयोग, अपने मतवादो की उन घटनाओ

पर आरोप ही नही, बल्कि प्रचार करने के लिए करते हैं। काव्य में भी यह प्रकार शुरू हो गया है—फिल्मो में 'जय हिंद' कहते हुए राणाप्रताप और 'अकाल पीड़ितो की सेवा' करने वाला उमर खैयाम देखने को तो मिल ही जाता है। अगर कला इसी रफ्तार से चली तो आज '४२ की भूतिगत क्रान्ति-कारिणी-सी महिला को छिपाने वाले कालिदास (विक्रमादित्य फिल्म) हम देख रहे है; कल मीरा किसी अस्पताल की नर्स बतलाई जायगी और परसो कबीर साम्राज्यवादियों की अतर-सास्कृतिक हिंदू-मुस्लिम-ऐक्य परिषद् के सभापति बने लाउड-स्पीकर पर बोलते हुए। 'दिनकर' ने इतिहास का इतना आधुनिकीकरण नहीं किया है, परन्तु वे अपने समय मे साथ ले रहे है, गो बीच-बीच में भरत-काल मे भी मुड़कर देख लेते है। १६४३ का बगाल का अकाल अवश्चेतन मे है। सप्तम सर्ग मे भीष्म पितामह कहते हैं : "पड़ा कभी दुष्काल, मर नर, जीवित का मन डोला। उसके किसी निभृत कोने से, लोभ मनुज का डोला।" (पृष्ठ ११२) और राजा-प्रजा, श्रमीजन आदि के संबध के वाक्य तो भीष्म यों बोलते जाते हैं मानो क्रोपाटकिन या बाकुनिन (अराजकवाद के प्रणेता) बोल रहे हों।

दलील दी जायगी कि कवि जिस युग में लिख रहा है, उसकी छाप उसकी वाणी पर पडेगी ही। बेशक, मगर फिर उसके लिए ऐतिहासिक पार्श्व-भूमि क्यों? क्या वह केवल कलात्मक सहारा है? चिंतनके लिए प्रतीक हम वर्तमान से ही ले सकते थे। महाभारतकालीन समाज व्यवस्था का भी तो कुछ खयाल रखना पडेगा। तब के प्रश्न निश्चित आज के प्रश्न नही हो सकते। यह सब प्रश्न मैंने इसलिये उठाये कि कवि ने इस काव्य को चिंतन-प्रधान कहा है। और वसा यह है भी। अब तक दिनकर की 'हुंकार' और रूप की थी; अब भावुक कवि सिर्फ 'गीत-अगीत कौन सुन्दर है?' के फेर मे नहीं—कुछ बुद्धिवादी भी बन रहा है। परन्तु यह कवि का स्वभावगत विशेष नहीं। अतः यह काव्य उतना निखरा नहीं। कवि ने कुछ करना चाहा है, जिसमें बुद्धि-पुरस्सरता की पुट अधिक है। उतनी ही मात्रा मे काव्यत्व विरल हो गया है।

फिर भी इस काव्य को कुछ उल्लेखनीय विशेषताएं हैं—छन्दो के विविध प्रयोग—वर्णिक, कवित्र जैसे अक्षर-वृत्तो के साथ ही मुक्तछन्द भी हैं, वर्णनो का बाहुल्य न होते हुए वैचारिक वाद-विवादो को प्राधान्य है; नये-नये रूपको का सहारा लिया गया है—विशेष रूप से विशेषण-विपर्यय के कई नये रूप बहुत ही आह्लाद-दायक हैं। एक आदर्शवाद सारे काव्य में परिव्याप्त है। 'यू.

एन. ओ. की भाति आशा के प्रदीप को जलाये चलो धर्मराज, एक दिन होगी मुक्त भूमि रण-नीति से' के स्वर मे 'कुरुक्षेत्र' का अत किया गया है। कही-कही बहुत ही मार्मिक उक्तियाँ है :

यथा

सच है, मनुज बडा पापी है,
नर का वध करता है।
पर भूलो मत, मानव के हित
मानव ही मरता है॥

और

'ऊपर सब कुछ शून्य-शून्य है,
कुछ भी नहीं गगन मे।
धर्मराज ! जो कुछ है,
वह है मिट्टी मे॥

यह वही 'मिट्टी' है जिसके लिए निराला ने नये पत्र मे लिखा है, 'चर्खा चला' मे :

कली ज्योति में खिली
मिट्टी से बढ़ती हुई।

'वर्जिन स्वैल', 'गुड अर्थ' अब के परिणाम है।

कही-कही जटिल सस्कृत शब्द जैसे 'हर्षल्लघु' या 'साहाय्य-हेतु', 'मरुदीत', 'कालायस', 'सयुग', 'दंष्ट्रा' आदि अच्छे नही लगते, विशेषकर 'दिनकर' जैसे कवि की कलम से जो 'मिट्टी की ओर' जाना चाहते है।

कवि का विचार-सूत्र कुछ इस प्रकार है कि युद्ध की जड वैयक्तिक भोगवाद है,लोभ है—अन्यथा समूह रूप मे जनता युद्ध-प्रिय नही है। परंतु पृष्ठ १०४ पर जिस वैयक्तिक मुक्ति की वह कठोर आलोचना करते है। वही पृष्ठ १२० मे फिर उसी अपने मे 'रम जाओ' वाले व्यक्तिवाद मे कवि डूब जाता है। कारण यह है कि कवि की चिन्ता कुछ-अपने आप मे कटी-सी जान पडती है। उसी के शब्दो मे :

जहाँ भुजा का एक पंथ हो अन्य पंथ चिंतन का,
सम्यक् रूप नही खुलता उस द्वंद्वग्रस्त जीवन का।

फिर भी यह निर्विवाद रूप से कहना होगा कि आधुनिक हिंदी कविताएँ वैसे ही युद्ध को लेकर स्वतंत्र प्रबन्ध नही के बराबर है। मेघनाद-वध और पलाशीर

युद्ध तो अनुवाद है। और जो भी हैं वे सस्ते, 'नारावादी, या 'जौहर' जैसे आल्हा के ढग पर। उनसे यह काव्य कही उच्च स्तर पर है। यह हमारी विचार-शक्ति को उत्तेजित करती है और युद्ध और शाति, हिंसा और अहिंसा, व्यक्ति और समूह, राज्य-व्यवस्था और लोकतंत्र के कई प्रश्नो को सामने लाता है। इस दृष्टि से हिन्दी में इस काव्य का अपना एक विशेष स्थान है। हिन्दी में राष्ट्रीय कवियो में से राष्ट्रीय महत्त्व के विषय को लेकर रचना करने वालों में 'दिनकर' की गणना साहित्य के इतिहासकार करेंगे। उनकी यह मंगल-कामना कितनी सही है—

> सभ्य की वह रश्मि स्निग्ध, उदार
> कब खिलेगी, कब खिलेगी, विश्व में भगवान ?
> कब सुकोमल ज्योति से अभिषिक्त
> हो, सरस होंगे जली-सूखी रसा के प्राण ? (पृ० ६६)

ग्रंथ का प्रमुख प्रश्न युद्ध और शान्ति का है। इष्ट क्या है? ग्रंथ की भूमिका मे ही कवि इस प्रश्न को स्पष्ट रूप से उपस्थित कर देता है :

> पापी कौन ? मनुज से उसका
> न्याय चुराने वाला ?
> या कि न्याय खोजते विघ्न का
> शीश उड़ाने वाला ?

और यह मानव की जन्मजात अहिंसा प्रियता देखिये :

> हर युद्ध के पहले द्विधा लड़ती उबलते क्रोध से।
> हर युद्ध के पहले मनुज है सोचता।
> क्या शास्त्र ही उपचार एक अमोघ है,
> अन्याय का, अपकर्ष का, विष का, गरलमय द्रोह का।
> लड़ना उसे पड़ता मगर।
> औ' जीतने के बाद भी
> रणभूमि में वह देखता है सत्य को रोता हुआ,
> वह सत्य जो है रो रहा इतिहास के अध्याय में
> विजयी पुरुष के नाम पर कीचड़ नयन की डालता।
> उस सत्य के आघात से
> हैं सनसना उठतीं शिराएं प्राण की असहाय भी,
> सहसा विपंची पर लगे कोई अपरिचित हाथ ज्यों।

वह तिलमिला उठता, मगर,
है जानता इस चोट का उत्तर न उसके पास है।
सहसा हृदय को तोड कर
करती प्रतिध्वनि प्राणगत अनिवार सत्याघात की,
—नर का बहाया रक्त, हे भगवान, मैने क्या किया ?
लेकिन मनुज के प्राण, शायद, पत्थरो के हैं बने,
इस देश का दुख भूल कर
होता मगर आरूढ फिर,
फिर मारता, मरता,
विजय पाकर बहाता अश्रु है !

सचमुच यह बडी विषम परिस्थिति है। मनुष्य पहले इतना सभ्य नही था, वह युद्ध अथवा शान्ति को उस रूप मे नहीं देख सकता था जिस रूप मे हम आज उन्हे देखते है। परन्तु प्रत्येक युग में मनुष्य ने इस समस्या पर सोचा है और इसका उत्तर देना चाहा है। क्या तपस्या और आत्म-बल से मनुष्य-दानव का सुधार या शमन सभव है ?

'दिनकर' ने भीष्मपितामह के मुँह से उत्तर दिया है।

युद्ध के आरम्भ में अर्जुन को मोह हो गया था, युद्ध के अन्त में 'कुरुक्षेत्र' के महाश्मशान के बीच मे खडे हुए युधिष्ठिर भी मोहग्रस्त है। श्मशान में बहने वाला पवन भी उससे व्यग करता जान पडता है :

देख लो, बाहर महा सुनसान है,
सालता जिसका हृदय में, लोग वे सब जा चुके।
जान पडता है, दुर्योधन उन्हें चिढ़ा रहा है,
स्वप्न सा देखा, सुयोधन कह रहा—
ओ युधिष्ठिर सिन्धु के हम पार हैं।
तुम चिढ़ाने के लिए जो कुछ कहो,
किन्तु कोई बात हम सुनते नहीं,
हम वहाँ पर हैं महाभारत जहाँ
देखता है स्वप्न अंतःशून्य सा।
जो घटित-सा तो कभी लगता मगर,
अर्थ जिसका अब न कोई याद है।

पश्चात्ताप से पीडित युधिष्ठिर शर-शय्या पर पडे भीष्म के पास पहुँचते हैं

और कहते है—'हाय पितामह, महाभारत विफल हुआ !' कवि इस युग की समस्या को बड़े कलापूर्ण ढग से उनके मुँह मे रख देता है। वह कहते है :

जानता कहीं जो परिणाम महाभारत का,
तन-बल छोड़ मैं मनोबल से लड़ता
तप से, सहिष्णुता से, त्याग से, सुयोधन को,
जीत नई नींव इतिहास की मैं धरता।

युधिष्ठिर के सामने दो मार्ग थे—एक गीताकार का मार्ग, दूसरा जीवन की विरति। उन्होने पहले मार्ग को अपनाया, परन्तु निष्काम कर्म-बुद्धि के नीचे उतर नही पाया था। अतः हृदय की भावना ने चीत्कार की। इस हिंसा से प्राप्त सुख और शान्ति को वह कैसे स्वीकार कर सकेंगे ? कुरुक्षेत्र में जो हुआ, वह पुण्य था या पाप ? ये प्रश्न उन्हे अशात कर रहे हैं।

त्याग, तप, करुणा, क्षमा से भीग कर
व्यक्ति का मन तो बली होता, मगर,
हिंस्र पशु जब घेर लेते हैं उसे,
काम आता है बलिष्ट शरीर।
और तू कहता मनोबल है जिसे,
शस्त्र हो सकता नहीं वह देह का,
क्षेत्र उसका वह मनोमय भूमि है,
नर जहाँ लड़ता ज्वलंत विकार से !
कौन केवल आत्मबल से जूझ कर
जीत सकता देह का संग्राम है ?
पाशविकता खड्ग जब लेती उठा,
आत्म-बल का एक वश चलता नहीं !
जो निरामय शुद्ध है तप-त्याग में,
व्यक्ति का ही मन उसे है मानता;
योगियों की शक्ति से संसार में
हारता लेकिन नहीं समुदाय है।

इस प्रकार युधिष्ठिर का समाधान करते हुए भीष्म एक महान् सत्य को उद्घोषित करते हैं कि देह का युद्ध देह से और मन का युद्ध मन से जीता जा सकता है। अन्य कोई मार्ग है ही नही। इस प्रकार कवि हिंसा और अहिंसा

के बीच मे एक नया मार्ग ढूढ लेता है, या यो कहिए एक समन्वय उपस्थित करता है।

कुरुक्षेत्र मे मानवतावाद का एक विराट चित्र प्रस्तुत है:

रसवती भू के मनुज का श्रेय
वह नहीं विज्ञान कटु आग्नेय
क्षेत्र उसका प्राण मे बहती प्रणय की वायु,
मानवो के हेतु अर्पित मानवो की आयु।
श्रेय उसका आँसुओ की धार,
श्रेय उसका भग्न वीणा का अधीर पुकार,
दिव्य भावों के जगत् में जागरण का गान
मानवो का श्रेय आत्मा का किरण अभिमान।
यजन अर्पण आत्म-सुख का त्याग,
श्रेय मानव का तपस्या की दहकती आग।
बुद्धि-मंथन से विनिर्गत श्रेय वह नवगर्त
जो करे नर के हृदय को स्निग्ध सौम्य पुनीत।

× × ×

श्रेय होगा मनुज का समता विधायक ज्ञान
स्नेह-सिंचित न्याय पर नवविश्व का निर्माण।
एक नर में अन्य का निःशंक दृढ़ विश्वास
धर्म दीप्त मनुष्य का उज्ज्वल नया इतिहास,
समर, शोषण, ह्रास की विरुदावली से हीन
पृष्ठ जिसका एक भी होगा न दग्ध मलीन।
मनुज का इतिहास जो होगा सुधामय कोष
छलकता होगा सभी नर का जहाँ संतोष।
युद्ध की ज्वर-भीति से हो मुक्त
जब कि होगी सत्य ही वसुधा-सुधा से सिक्त।
श्रेय होगा सुष्ठ विकसित मनुज का वह काल
जब नहीं होगी धरा नर के लहू से लाल।
श्रेय होगा धर्म का आलोक वह निर्बन्ध,
मनुज जोडेगा मनुज से जब उचित सम्बन्ध।

और अन्त मे वह भगवान से प्रार्थी होता है:

साम्य की वह रश्मि स्निग्ध उदार,
कब खिलेगी, कब खिलेगी विश्व में भगवान ?
कब सुकोमल ज्योति से अभिषिक्त
हो सरस होंगे सुखी सूखी रसा के प्राण।

यह मगल-कामना ही कवि की इस सर्वोत्तम रचना को युग की महान् रचना का श्रेय देती है। प्रचलित अर्थों मे यह कविता प्रबन्ध है भी नही। उसमें कथा की व्यजना भर हो सकी है। उसकी प्रबन्धात्मकता विचारो को लेकर है। अतः श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' की इस रचना को प्रबन्ध-काव्य की तुला पर तोलना समीचीन नही होगा। इसके साहित्य की विवेचना करते हुए हमे केवल यह देखना होगा कि इसके काव्यतत्त्व ने चिन्तन-पक्ष को कहाँ तक सहारा दिया है। इसमे सन्देह नही कि इस दृष्टि से भी 'कुरुक्षेत्र' सफल काव्य है। ऐसे अनेक स्थल मिल जायँगे जहाँ कवि की कल्पना और मूर्तिमत्ता ने उसके चिन्तन को बल दिया है। इस काव्य मे कवि का चिंतन सूक्ष्म तर्क-वितर्क तक ही सीमित नही रहता, वह हृदयधर्मी बन कर ही सामने आता है और इस प्रकार वह नवयुग की काव्यधारा मे एक नई सशक्त परम्परा की स्थापना करता है।

: १८ :

अन्य आधुनिक कवि

जानकीवल्लभ शास्त्री, गिरिजाकुमार माथुर,
अज्ञेय, केदारनाथ अग्रवाल, भारतभूषण अग्रवाल

१. जानकीवल्लभ शास्त्री

आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री संस्कृत पडित है। 'गाथा' लिख चुके है, जिसकी मुक्तकठ से हिन्दी-जगत ने प्रशसा की थी। शिप्रा के शीर्षकहीन आमुख मे प्रो० केसरी ने कहा है : 'आश्चर्य होता है कि दार्शनिक सिद्धान्तो के विवेचन—विश्लेषण मे उलझा रहने वाला यह व्यक्ति अनेकानेक कवियो की भाँति लीक से उतर क्यो नही गया ? बौद्धिक वातावरण की प्रवचनाओ के बीच अपनी अनुभूति को अछूती कैसे रख पाया ? और यदि तसवीर टूटी थी तो यह विश्वासपूर्ण अभिव्यक्ति कैसी ?' आगे ड्रिकवाटर की 'लिरिक' की परिभाषा—(प्राडक्ट आफ प्योर एनर्जी) देकर केसरी पूछते हैं : 'कैसे इतनी कठिन रागिनी कोमल सुर से गाई ?' 'शिप्रा' की एक सुन्दर समीक्षा विश्वभारती पत्रिका मे प० हजारीप्रसादजी ने दी है। उन्होने यह कहा है कि 'शिप्रा' का कवि इस अर्थ मे सफल है कि वह हमें आज और यहाँ से कालिदास-कालीन वातावरण में ले जाता है। जैसे 'शिप्रा' नामक कविता में कवि कहता है :

> यंत्र-चेतना मंत्र फूँकते,
> मानव जड़ सा सुनता।
> क्या परतन्त्र तन्त्र पशुता का,
> नर फिर फिर सिर धुनता!

सब कुछ सुलभ हुआ अब जग में,
मूल्य का न कुछ मान।
दुर्लभ एक तुम्हारा केवल,
प्राण विमोहन गान!

इस प्रकार वह 'अद्यसृष्टि के स्रष्टा को देखो अपनी मातृभूमि को!' का सदेश देता है। शास्त्रीजी की कालिदास के प्रति भक्ति अटूट है, वह बार-बार इस सग्रह मे फूट उठी है। सुमित्रा की शेष स्मृति कुद और उपगुप्त 'निराला' नया साहित्य मे कुछ अश प्रकाशित 'तुलसीदास' के छन्द मे यतिभग आदि मे इसी 'निओ-क्लासिकल' (नव्य अभिजात) शैली के स्वर प्रमुख हैं। 'कपोत-कपोती' के आरम्भ मे कवि ने आरभ परिचय मे स्वयं कहा है—'कालिदास के भाव और रामकृष्ण परमहस के प्रभाव से मेरा मन सदा सर्वदा श्रेय-प्रेय के पालने पर पैगे भरता रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे जीवन मे राग-विराग का समन्वय न होगा।' प्राचीन काव्यधारा की आत्मा की पुनःस्थापना के प्रयत्न पर प्रगतिवादी आलोचक सहज यह आक्षेप ला सकेंगे कि यह केवल पराजय है, यह केवल अतीत को पुनर्जावित करना (रिवाइवलिज्म) है। शिप्रा के कवि ने इसका उत्तर कविताओ के आरम्भ मे दिये हुए आत्म-निवेदनात्मक गद्य काव्यात्मक विवरणो में दे डाला है। एक तो वह प्राचीन को ज्यों-का-त्यो नही उतारना चाहता—'और जब ज़मीन खून से तर हो, अकालपीड़ित नरनारी महामारी से मर रहे हो तब 'सुन्दर' तो स्वर्ण-लेखनी का चमत्कार ही होगा!' 'सुनो भी, क्यो भागे जाते जीवन से?' 'जीवन का अर्थ न आत्महनन हो सकता?'

ढाँचा टूटा एक नेह का,
पुनः नया गढ़ना है।
खा खा कर नित ठेस ठोकरें,
फिर आगे बढ़ना है!

स्पष्ट है कि यह स्वर छायावादी आत्मरति से भिन्न और पलायन अथवा विस्मृति की चाह लिये हुए नहीं है। फिर भी कवि के गहरे में, प्राचीन साहित्य के—विशेषतः भारतीय दर्शन के (सर्वदुःखात्मवाद) निराशावादी सस्कार है, बल्कि कहे कि जगत की असारता के प्रति एक शून्यवादीका-सा तिक्त मोह है, जो कई गीतों में छलक आया है—'कैसी उदासी छा रही!' 'अब उदास सन्ध्या आती है' 'सूखी समवेदना दिखाने' 'बीत गया सारा दिन सूने जंगल ही,

में रोते रोते ?' परन्तु इस प्रश्नर का शून्यता का बोध, औदासीन्य, दिशाओं से आती हुई सॉय-सॉय की गूंज प्रगतिवाद की इतनी बात करने वाले विलायती कवियों मे भी तो है : ईलियट का 'एश वेन्सडे' क्या है ? और येट्स के कई गीत, जैसे अँगीठी तापते समय का उसका भूरे दिनो पर प्रसिद्ध सानेट शायद इस प्रकार की विश्वासशून्यता, आज के सशयात्मक युग मे सर्वव्याप है। उसे ही सहारने का प्रयत्न शास्त्रीजी ने 'बॉसुरी' 'चॉदनी' 'जीवनवन मे आई बहार' 'नवशक्ति मिले हे !' आदि गीतो द्वारा किया है। परन्तु है वह सहारने का ही प्रयत्न, यह स्पष्ट है।

शास्त्रीजी की 'शिप्रा' मे आधुनिक हिन्दी कविता के द्रुतविलवित छायावाद-रहस्यवाद युग का यति-भग होता है। मर्वत्र लयकारी है, परन्तु कही कुछ विसंवाद-सा पार्श्ववादन मे बज रहा है। प्रगति के ताडव के कास्यताल जैसे बज उठे है— शास्त्रीजी के अगले सग्रहो की प्रतीक्षा है। यह सारा सस्कृति बहुल (निराला जैसी कविताओं से भी अति दुरूह) पाडित्य का चट्टानी कलेवर, अपने भीतर एक कोमल भाव-उत्स छिपाये हुए है, जो अनाविल अजस्र सहस्रधारा बनने के लिए व्याकुल है। परन्तु वह गति तो तभी आयेगी जब कालिदासकालीन शिप्रा से उतर कर आज की दुर्दशा-ग्रस्त शिप्रा पर उतरा जाय। सभव है वास्तविक शिप्रा को देखकर स्वप्नकी शिप्रा का भ्रम टूट जाय। सभव है उस स्वप्न-भग (डिसइल्यूजनमेंट) से सब कुछ पर अविश्वास मन मे रहे। परन्तु फिर भी मुझे तो शाकुतल के धीवर की युक्ति बार-बार याद आती है—'दुनिया के सब पेशे अच्छी तरह किये जॉय तो एक से सम्मान्य है। पेशे से मनुष्यता मे कोताही नही आती'। और फिर कवि-कर्म युग-कर्म से कुछ भिन्न, ऊपर, श्रेष्ठतम है, यह अभिजात अहन्ता भी क्यो ? हमे यह कठोर सत्य स्वीकार करना ही होगा कि १९४७ कालिदास-रवीन्द्रनाथ का काल नही रहा, अब उनकी पुनरावृत्ति संभव नही है।

२. गिरिजाकुमार माथुर

राग-विराग के जिस संघर्ष की चर्चा ऊपर आयी है उसे और स्पष्ट और जन सुलभ शैली और भाषा में व्यक्त किया है गिरिजाकुमार माथुर ने। आरम्भिक वक्तव्य मे कवि कहते हैं : 'मुझे अपनी कृतियो पर विश्वास है। इन दोनों कविताओं के बीच दो युगों का अन्तर है। और इन्ही दो विरोधी शक्तियो के अनवरत संघर्ष का परिणाम हैं ये कविताएँ।' यहाँ द्वन्द्वात्मक तर्क को कवि ने उसी के शब्दो में समो-लिया है, फिर भी कवि को शिकायत है कि 'पिछली

छाहे साथ नही छोड़ती' यह वही क्षयी रोमास के कीटाणुओं का फिर-फिर उभर आना है। कवि किसी आदर्श निकुञ्ज की गुञ्जान छाँह में खो जाना नहीं चाहता। वह स्पष्ट, विनयपूर्ण स्वीकृति देता है : 'मेरा काव्य मेरी भौतिक परिस्थितियो का ही मान-चित्र रहा है।' इस युग के एक मध्यवर्गीय व्यक्ति के सामाजिक, शारीरिक, मानसिक संघर्षों की सभी परिमाओं का इस सग्रह में चित्रण है। सन् ३८ से ४० तक प्रथम खण्ड की रचनाएँ हैं, सन् ४० से ४५ में द्वितीय अर्थात् 'निर्माणात्मक' जीवननाश की। 'कौन थकान हरे जीवन की !' 'तुमने झूठे चित्र बनाए !' 'आँसू तक न बने नैनो में' 'सपना था वह प्यार नही था' 'मैंने विष के बान सहे हैं' 'जीवन भर मन मे रोना है' इत्यादि गीतो में निशानिमन्त्रण की-सी निराशावादिता व्यापे हुए है। वह 'आओ सो जाये, मर जाये' वाला घुटा देने वाला स्वर है। आधुनिक हिन्दी कविता मे वेदनावाद की विकृति पर मैंने विस्तार से सात-आठ वर्षों पूर्व दीनानाथ व्यास के कविता-सग्रह 'अरमानो की चिता में' लिखा था, जिसमें सोदाहरण हिन्दी के नये कवियों का यह रोदनवाद स्पष्ट किया था। 'नारी और निर्माण' में पंद्रहवीं कविता मुक्तछद मे है और यहाँ से नाश और निर्माण का अन्तरा शुरू होता है : प्यार कहाँ रह गया, कहाँ जीवन आ पहुँचा, मिलन बिदा दोनों ही मे अब मेरा हृदय न काँप सकेगा। सत्रहवी कविता से कवि की 'साँस लेते प्रेत, चलते पिरामिड ममीवाली रुग्णता जन्म-मृत्यु-छाया की कल्पनाएँ शुरू हो जाती हैं। टाइफायड में वे बहुत हैं (जो अपूर्ण ही है)। इस खण्ड की बीस कविताओ मे मजीर के कोमल गीतात्मक कवि का अंतःसघर्ष चल रहा है जैसे वह नयी राह के लिए छटपटा रहा है, पर वह उसे मिल नहीं रही है।

'निर्माण' का स्वर स्पष्ट प्रगतिवादी है। कवि राह पा गया है, वह प्रशस्त है। वहाँ उसकी रुग्ण, जर्जर, पुरानी कल्पनाएँ (इमेजेज) छूट जाती हैं, वह नये उत्साह और नयी आशाओ से भर गया है।' आज अपरिचित बल आया है ··· परन्तु मध्यवर्गीय सुखैषणा (मेरे सपने बहुत नही हैं।) कीट्स की सी इन्द्रिय-गोचर सौदर्य प्रियता जो वायवी नही, मासल और भौतिक है, जैसे, इस रगीन साँझ में तुमने—अब कुछ उर्दू रग भी कविता को निखार देने लगा—लो खुली आज जवान रातें···पूछने पर बन रहा मुख क्यो लजीला चाँद ! बसन्त पचमी, रेडियो कविसम्मेलन, चूड़ी का टुकडा, एसोशिएसन्स तार-सप्तक में छपी ये कविताएँ सुहागरात का सा सौरभ (एरोमा) अपने में सिमटाये, रजनीगधा सी मदिर और 'बायरनिक' हैं। परन्तु बीच-बीच मे दौहार्द का स्वर भी है—मेरे

लघु एकात ग्राम मे (३३) या धूप भरी इस दोपहरी मे (३६) अधूरा गीत (४५)।

हिन्दी के इस डाइलैन टामस वेल्स के किशोर कवि, जो शब्दो मे क्षण-चित्रो को देने मे बहुत सफल है। 'मैप आफ लव' के लेखक मे एक और स्वस्थ, सजग स्वर है। मशीन का पुर्जा, युग प्रवर्तक दीवारे, नया बसंत और अतिम गीत जन-जन का जीवन गीत बने! इस स्वर मे आधुनिक युग की विषमता और विद्रूप के प्रति चुनौती है। इस मे एक लेख मे डा० रामविलास ने अपने ढग से उस प्रगतिशील, विद्रोही स्वर की पुष्टि की है। 'वैशाली' कबीर, बुद्ध, राम, यद्यपि रेडियो की आवश्यकता से उपजे गीत जान पडते है, परन्तु उनमे कवि का नवीन दृष्टिकोण स्पष्ट है। वह 'विगत बलिष्ठ' प्राचीन के पुनर्जागरण का हिमायती नही है। परन्तु गिरिजाकुमार माथुर की नवीन राष्ट्रीय कविताओ की अपेक्षा मुझे उनका 'आज है केसर रग रगे बन' वाला रूप ही अधिक प्रिय है। मै मानता हूँ कि कवि का सच्चा प्रामाणिक रूप उन्ही रोमैन्टिक कविताओ मे अधिक खिला बिखरा है। युग की पाषाणी आवश्यकताओ का तकाजा और निरतर उलझती जाने वाली परिस्थितियो के बोध का बोझ गिरिजाकुमार की वाणी का वह शरदीला चाँदनी धुला, रागात्मक वातावरण कुचल न डाले, ऐसी कामना है। प्रगतिवाद रोमास का विरोधी है, या वह रोमासमात्र को नाश मानता है, यह विचार गलत है। रोमास का जो आदर्शवादियो का स्वप्न है, वह गलत है, झूठा है, प्रगतिवाद उसे नही मानता, परन्तु वास्तववाद से सयुक्त रोमास जन-जन के स्वास्थ्य और सुषमा प्रियता का द्योतक है। वह सौदर्य-प्रेम परिणाम मे बदले, गुणात्मक रूप से उसमे वैसा परिवर्तन नही होता। समाजवाद के आने से सभी लोग रूखे, शुष्क, डाइलेक्टिशियन्स और कभी न हँसने वाले (या जबर्दस्ती फोटो खिंचाने के लिए फोटो मे हँसनेवाले) अर्थ-शास्त्र की थ्योरियो से माराहुत अकालवृद्ध पडित नही बनेंगे। मैंने एक रूसी फिल्म मे देखा था खारकोफ के ख्वडहरों में भी एक बडा सा सूरजमुखी जैसा फूल खिलखिलाता खडा था। 'आमि जहन्नुमेर आगुने बशिया हाँशी पुल्यो हाँशी!' (काजी नजरुल इस्लाम।) गिरिजाकुमार इस बात को गुनते हैं, इसलिये उनसे बहुत आशायें हैं।

३. अज्ञेय

'अज्ञेय' ने इत्यलम् मुझे दी और उस पर लिखा: 'प्रभाकर जी, लीजिये, पढ़िये, न खीजिये, संवेदना दीजिये। हाँ, जब आलोचना कीजिये, तब

जरा न पसीजिये !' इस अर्द्धपरिहासपूर्ण पुस्तकदान मे मेरा तुक-प्रेम तो लक्षित है ही परन्तु 'त्रिशंकु' पर मैंने जिस तटस्थता से लिखा था उसकी परोक्ष प्रशंसा भी है, ऐसी मेरी मान्यता है। 'इत्यलम्' मैं पढ गया, तब मेरा यह विश्वास और भी दृढतर हुआ कि अज्ञेय एक प्रगतिशील लेखक है जो कि कई कठमुल्ला डागमैटिक प्रगतिवादी नहीं भी मानते। जो व्यक्ति घृणा का गान (पृ० ५८) इतने आवेश से लिख सकता है, उसे अ-प्रगतिशील कैसे कह सकते हैं ?

तुम जो बड़े-बडे गद्दों पर ऊँची दूकानों में,
उन्हे कोसते हो जो भूखे मरते हैं खानों में।
तुम जो रक्त चूसकर ठठरी को देते हो जलदान,
सुनो तुम्हे ललकार रहा हूँ, सुनो घृणा का गान।
तुम जो महलो में बैठे दे सकते हो आदेश,
'मरने दो बच्चे ले आओ खींच पकड कर केश'

नहीं देख सकने निर्धन के घर दो मुट्ठी धान,
सुनो तुम्हे ललकार रहा हूँ, सुनो घृणा का गान'
तुम जो पाकर शक्ति कलम में हर लेने का प्राण,
'निश्शक्तों' की हत्या मे कर सकने हो अभिमान'
जिनका मत है, नीच मरे दृढ़ रहे हमारा स्थान,
सुनो तुम्हे ललकार रहा हूँ, सुनो घृणा का गान!

केवल 'घृणा का गान' ही नहीं, 'कीर की पुकार', 'जीवनदान', 'बन्दी गृह की खिडकी', 'अखण्ड ज्योति गा दो', 'रक्तस्नात वह मेरा साकी', 'मत मांग', 'बन्धन और स्वातन्त्र्य', 'उद्धारको से', 'बधुत्व' 'मैं वह धुन हूँ' 'विश्वास' आदि बन्दी स्वप्न-भंग की कविताएँ वहुत ही स्पष्ट रूप से प्रगतिमयी स्फूर्ति-दायक कविताएँ हैं। 'हिय हारिल' में भी कुछ ऐसे ही गीत हैं। रहस्यवाद, धूल भरा दिन, ओ मेरे दिल, उड़ चल हारिल, परन्तु अब हृदय चिन्तामय हो गया है, 'द्वितीया' में वह खो रहा है। इस संग्रह में अज्ञेय की रचनाओं में निरालोक शैथिल्य आ जाता है। जेल जीवन की जितनी उत्तम उन्मादमयी रचनाएँ 'नवीन' आदि में पाते हैं, वैसे ही अज्ञेय के बंदी स्वप्न मे थी। परन्तु 'हारिल हिय' के बाद कवि जैसे अन्तर्द्वन्द्व के गुत्थर खोलने में डूब गया। वंचना के दुर्ग (तार-सप्तक में छपी कविताएँ) में शिशिर की राका, निशावर्ग, भावना-स्टीक, पार्क की बैंच, कंकरीट का पोर्च जैसे सख्त व्यंग हैं, परन्तु प्रेम कविताओं में स्पष्टतः दो दल पड गये हैं। एक ओर तो आत्ममंथनात्मक मनोविश्लेषणशील

कविताएँ हैं। जैसे, चेहरा उदास, चारका गजर, बाहु मेरे रुके रहे, जन्म दिवस आदि। एक प्रकार से कह सकते हैं कि यह पद्धति छायावादी संस्कारों के प्रलंबित पद-चिह्न हैं, जैसे टेनीसन ब्राउनिंग की आत्म-परीक्षणात्मक लम्बी कविताएँ, एक प्रकार से पद्यबद्ध निबन्ध ही हैं। 'चिंता' के गद्य काव्यो की पद्यमय आवृत्तियाँ। परन्तु दूसरी जो गीत पद्धति अज्ञेय मे दिखाई देती है, उसका भविष्य अधिक है। रात होते—प्रात होते, फूल कचनार के, प्रतीक मेरे प्यार के, पानी बरसा माघ-फागुन-चैत, घन आकाश मे दीखा। परन्तु सूत्रात्मकता की ओर जो प्रवृत्ति है, वह पुनः कविता से अलग जा पड़ती है। वह उत्तम सूक्तियाँ हो सकती हैं, परन्तु कविता केवल विट के सहारे नही जी सकती।

गोएटे ने एक जगह लिखा है कि 'आजकल वे कवि अपनी स्याही में बहुत-सा पानी डाल देते हैं, (न्यूरे पोएटेन थुन वाइल वासेर इन डाई टिएटे)। और आधुनिक हिन्दी कविता मे तो वह पानी या तो आँसुओ का होता है, या 'कागजी क्रांति की शाब्दिक सिपाहीगिरी' के आक्रोश के पसीने का। 'अज्ञेय', हिंदी के आधुनिक कवियो में, उनमे से है, जिन्होने जो कुछ लिखा है, वह अनुभूति की गहराई के प्रति प्रामाणिक होकर, किसी प्रकार के बाह्य आग्रह के वशीभूत होकर नहीं, चाहे वह श्रोतृ-पक्ष का हो या पाठक-वर्ग का। इसी कारण से उनकी काव्य-कला में एक प्रकार की निरन्तर खोज विद्यमान है।

इस संग्रह में आकर उनकी कविता हरी घास पर क्षण भर रुक गई है, शबनम की तरह नही कि जो दूसरे क्षण मे ढुलक जायगी, परन्तु 'अतीत के शरणार्थी' की भांति 'जीवन के अनुभव का प्रत्यवलोकन' करने, आत्म-मंथन रत होकर। इस संग्रह की सबसे सुन्दर और लम्बी कविता इसी नाम से है—हरी घास पर क्षण भर। दूसरी उतनी ही शक्तिमयी कविता है—नदी के द्वीप। दोनो में कवि अपने व्यक्तिवाद की एक नयी व्यंजना करता है। वह शहराती तथा कथित सभ्यता से ऊबा हुआ है, वह बनावटी उपमानो का, घिसी-घिसाई अलंकार-नियोजना का कायल नही, वह अनुभव करता है कि सुख का आविष्कार मानव के प्रत्येक अङ्ग में सामाजिक अभिव्यक्ति पा चुका है, अब केवल मौन ही नयी कहानी कह सकता है। इसी अर्थ में 'क्षण भर' शब्द की महत्ता है; अभी तो हम धारा नहीं हैं, द्वीप हैं, धारा से हमारा आकार बढ़ा है—परन्तु बाढ आने पर क्या होगा? होने दो, जो होगा सो होगा। डी. एच. लारेंस ने तीस वर्ष पूर्व अपनी नयी कविताओ की भूमिका में इसी प्रकार लिखा था—'आरम्भ की और अन्त की कविता में चाहे पूर्णता हो, हमारी कविता तो निकटतम वर्तमान

की है। इसी क्षण की, अभी की। जीवन इसी प्रकार से चिर-वर्तमान है, वह अन्त नहीं जानता !'

इस प्रकार से अज्ञेय की कविता में इम्प्रेशनिस्ट चित्रकारो का-सा क्षण-चित्रण प्रधान है। इसी से उसकी अनुभूति मे अन्तर्निहित मूक-व्यथा, एक घुटा-सा दर्द, कुण्ठित पीड़ा होने पर भी, वह भावुकता का प्रदर्शन नहीं करता, उसकी स्याही में आँसुओ का पानी नही है। उसकी करुणा प्रगाढ़ है। 'वह हरहराते ज्वार-सा बढ़ सदा आया एक हाहाकार' है। उसमे परिताप की जलन है अतृप्ति का निरा धुँधवाना नही। इसी आत्म-विश्वास से वह लिखता है :

समर्पण लय, कर्म है संगीत, टेक करुणा—सजग मानव प्रीति !

कुल मिलाकर यह सग्रह स्मृतियो का एक अलबम-सा है, जिसमें के कुछ चित्रो पर के रंग उड़ गये हैं, कुछ चित्र फीके पड़ गये हैं, कुछ खंडित हो गये हैं। और उस मनावशेष की दीवालों से उठती एकाकी गुहार की अनुगूञ्ज वहाँ के अवकाश में समा गयी है। प्रत्यभिज्ञा सदा ही मधुर नहीं होती। और कहीं-कही हरी घास मे से भी सूखी घास झलकती है, जैसे 'एक आटोग्राफ' 'शरद' की तुकें (पृ० ३६), कवि, हुआ क्या फिर, पुनराविष्कार आदि। 'सबेरे-सबेरे' और दीखती है दीठ आदि कविताओं में वही 'शिशिर की एका निशा' वाली कड़वाहट है। कहीं-कहीं हठाकृष्ट रचना भी है, मानो प्रयोग कहीं लड़खड़ा गया हो। कहीं दुरूहता घनी हो उठी है।

परन्तु इन दोषो के बाद भी इस संग्रह में हरापन है। 'ओ रे आभार सबूज, ओरे आभार काँचा' कह कर रवीन्द्र ने और विटमन ! ने 'लीव्ज आफ ग्रास' में हिलते हुए हरे-हरे छोटे रूमालो से धरित्री मानो बादलो को बुला रही है, कह कर इस दूब को याद किया था। भूमिका में कुछ अतिरक्त निकटता से कवि ने 'संसार मे उद्यानो की कमी के कारण जहाँ-तहाँ बची हरी घास की थिगालियों को भी उखाड फेंकना' चाहने वालों के कुण्ठित अकरुण मन को व्यर्थ ही कोसा है। वस्तुतः कवि का मन स्वयं उद्यान-प्रिय, जान पड़ता है उसकी अलंकृता रचना से। पहले का वन्य 'भग्नदूत' अब आकर बहने से डरता है—"पैर उखडेंगे। प्लवन होगा। ढहेंगे। सहेंगे। बह जाँय।' क्योंकि उसकी चेतना ठिठक कर द्वीप रूपिणी बन गयी है। यायाकरत्व का मोह भी ऐसी ही एक प्रतीक ईहा है। परन्तु हम चाहते हैं 'अज्ञेय', जो कि आधुनिक हिन्दी कविता को अतर्राष्ट्रीय रुखी गद्य प्रायः वर्तमान कविता की धारा से जोड़ने वाली एक स्रोत-स्विनी हैं, द्वीप न बन जाँय ! और फैदेरिको गार्शिया लोक की भाँति वे कहे :

हरा—मै तुम्हे हरा चाहता हूँ
हरी हवा। हरी शाखे।
समुद्र पर जहाज़
और पर्वतो मे घोडा।
(मूल इस्पाहानी : वेर्दे क्वी ने क्वीरो वेर्दे
वेर्दे वीन्तो। वेर्दे रामास।
ईल बार्को सोब्रे ला मार।
या ईल काबालो ईनला मोन्ताना।)

इस प्रकार इन तीन सग्रहो को देख कर हिन्दी कविता मे जो आधुनिकता-वाद शीघ्रता से क्या टेकनीक और क्या विषय मे बढता जा रहा है, उसके प्रति मन आश्वस्त होता है। रूढ़िवादी आलोचक चाहे जितना नाक-भौ सिकोडे, नई हिन्दी कविता अब वेदना और आत्मरति, मरणप्रेम और क्षयी रोमास अतीद्रिंय सौदर्य-रहस्य के सकेत और बेलबूटेवाली हलकी अभिव्यजनावादी वृत्ति से कही आगे बढ आई है। नये कवि मे राग-विराग का, नाश निर्माण का, प्रलय-सृजन का, मिट्टी और ईहा का चिरतन सघर्ष युगा‌न सत्यो के नवीन विचार-सघात से नया रूप लेकर प्रस्तुत हो रहा है, वह अब केवल 'रूप के मन' और 'मन के रूप' से सतुष्ट नही रह सकता। वह दोनो के विरोध विकास को समझ कर क्षण मे युग और बिंदु मे सिंधु की रत्नराशि और उसकी अनेक रूपता को व्यक्त करता है। नया कवि एक 'प्रिज्म' के समान है, जिसमे से युगीन सत्य पृथक्कृत होकर सतरगे बन कर हमारे मन को आह्लाद देते है। सत्य नंगी सूर्य किरणो के समान चौधियाने वाला है ही परन्तु अब खिडकी बन्द कर नकली अंधेरे मे कविता उलटी लटक कर ऊँघ नहीं सकती।

४. केदारनाथ अग्रवाल

कवि केदारनाथ ने हिन्दी की प्रगतिशील काव्यधारा मे अपनी विशिष्ट शैली के कारण और कविता मे व्यक्त एक सुनिश्चित विचार-धारा के कारण अपना विशेष स्थान बना लिया है। उनके कविता-संग्रह 'युग की गंगा' का हम स्वागत करते हैं।

हमने इस गगा मे निमज्जन कर प्रसन्नता तथा ताजगी का अनुभव किया। यह गंगा 'हर की पैढ़ी' और 'चित्रकूट' वाली तीर्थ-बद्ध गंगा नहीं, जहाँ पवित्रता की झूठी आशा से गोते लगाने अन्धश्रद्धालु प्रवासी पहुँचते हैं या जिसके बल पर

पडे-पुजारी अपना पेट पालने का प्रयत्न करते हैं। यह सीधी पर्वतो से निःसृत, फुफकारती, किलकारियाँ भरती, अपने स्रोत के समीप लहराती, चट्टानो से टकराती हुई गंगा है। आगे चल कर वह सामाजिक दो-आबे को भी सीचती जाती है। उसमे प्रवाह है, प्राणमय वेग है।

हम 'युग की गगा' को चार भावधाराओ में बाँट सकते है। (१) लैंडस्केप्स और ग्रामीण रेखाचित्र—इनमे शुद्ध यथार्थवाद है। जीवन को खुली आँखो से खुली-खिली धूप मे एक प्रकार के प्रसन्न कैशोर भाव से देखा गया है। इसके अन्तर्गत 'चन्द्रगहना से लौटती बेर', 'बसती हवा', 'सावन का दृश्य', 'चित्रकूट के यात्री' 'बुन्देलखण्ड के आदमी', 'चन्दू', 'दीन कुनबा', 'मछुआहे', 'गाँव में' आदि कविताए आती है, जो हमें सबसे अधिक प्रिय जान पडी है। इनमे काव्यत्व (पोएटिक कटेण्ट) विशेष हैं। (२) दूसरी श्रेणी मे वे कविताएं आती हैं जो इस यथार्थवाद मे सामाजिक पुट मिलाकर, सहेतुकता निर्मित करती है। यह प्रगतिवादी कविताए है, जैसे 'युग की गगा', 'गेहूँ', 'प्रत्यूष के पूर्व', 'धन-जन', 'कोहरा', 'गुड्डा', 'चैतू', 'रनिया', 'डाँगर', 'मोमबत्ती और सूरज', 'पैतृक सम्पत्ति', 'कटुई का गोत', 'जुनाई का गीत'। 'दो जीवन', 'रनिया' और 'अमीनाबाद' के अन्त वाले हिस्से में सामाजिक विपमताए विरोध रूपमे दिखा देना-भर काफी समझ लिया गया है। इसलिए वे कमजोर कविताएँ बन गई हैं। यहाँ तक कवित्व पारस्परिक अर्थ मे भी निभ पाया है। अब बची हुई कविताओ मे (३) सामाजिक, राजनीतिक, कडुए व्यग्य-चित्र—गर्रा नाला, देश की आशाएं, वरदान, मिट्टी का वैभव, जनता का जीवन, आर्डिनेस, सोने के देवता, देव-मूर्ति, देवताओ की आत्महत्या, मूलगज, कानपुर (जिसमें चौथी कोटि की प्रचारात्मकता विशेष है), गुम्मा ईंट, राष्ट्रीय प्रतिध्वनि (हँस मे छपे रूप से इस कविता पर से 'काग्रेसी माँग' शब्द शायद हटा दिये गये है), देवागमन (इस कविता का स्थायित्व कहाँ तक है ? त्रिमन्त्री-मिशन को लोग भूल भी जायेंगे) चितकबरा कुत्ता आदि। इन कविताओ मे से गुम्मा ईंट और वरदान विशेष अच्छी बन पड़ी हैं। मगर जनता का जीवन, मजदूर, शहर के छोकडे, मूलगज, चित्रकूट के यात्री मे परिलक्षित व्यग्य केवल जीवन के एक वीभत्स या विकृत पहलू को दिखाने तक सीमित रह जाते हैं। यो वे प्रगतिवाद पर किये जाने वाले एक आक्षेप, विकृति से प्रेम (मार्बिडिटी) से नहीं बच पाते। स्टैचू मे तो 'व्यर्थ रोमांस' वाली अतृप्त वासना के भी दर्शन हो गये हैं :

और कन्धों से तनिक नीचे उतर कर
वासना के हाथ से अब तक अछूते औ' अदोलित
दो मृदुल दलदार वृत्ताकार कुच थे,
क्षीण कटि थी
पीन जाँघें।
नग्न नारी प्राण प्यारी चुप खड़ी थी !!

परन्तु यह केवल एक ही स्थल है, जहाँ नारी-रूप का वर्णन है। समूचे कविता-सग्रह मे नारी का अन्य कोई उल्लेख नहीं, सिवा गाँव की गरीबिन रनिया के (४) चोथी कोटि मे वे कविताएं आती हैं जिन्हे 'नारावादी' कह सकते है। शुद्ध प्रचारात्मक, उपदेशात्मक, कोरस आदि। तीसरी और चौथी श्रेणी की कविताएँ गद्य-प्रायः क्या, निरी गद्य ही हैं। पता नही कवि ने उन्हे काट-काट कर (प्रोज कट इएटू ईक्वल लेंग्थ्स) वड्सवर्थ की-सी यह रचनाएं पद्य कहलाने को क्यो छापी हैं। वह उन्हे गद्य-रूप में भी छाप सकता था। उदाहरणार्थ :

अ. अधिकाँश जनता का जीवन रद्दी की टोकरी का जीवन है। संज्ञाहीन, अर्थहीन, बेकार, चिरे-फटे टुकड़ो-सा पड़ा है ! एक दिन, एक बार आग के छूने की देरी है—राख हो जाना है !! ('जनता का जीवन' नामक पूरी कविता सिर्फ एक पक्ति का अन्वय बदल कर यहाँ लिख दी है।)

आ. झीनी बिनी खाट पर रात दिन लेटा हुआ आदमी, एक हाथ नीचे की उपजाऊ धरती को त्याग कर स्वप्नो के महलो की परियो के प्यार की खोज मे निर्गुण आकाश के (?) चक्कर लगाता है (और) असफल हो घुलता है। (उसी) झीनी बिनी खाट पर पागल होकर मरता है। मिट्टी का वैभव यो मिट्टी मे मिलता है। ('मिट्टी का वैभव' नाम की यह एक दूसरी कविता है।)

इ. छोटी-सी देवमूर्ति आले मे रखी थी। बेचारी, औचक ही चूहे के धक्के से नीचे दासा के पत्थर पर गिर, टूट गई। मुझको तो ताज्जुब है (कि) करुणा के सागर के अन्तर की एक बूद (भी) भूमि पर छलकी नही। ('देवमूर्ति' नामक तीसरी कविता किंचिन्मात्र अन्तर से यहाँ लिखी गई है।)

ई. 'आज तो इतवार है जी। कौन-सी आफत पडी है जो सबेरे से मै उठूँ, मेल से भी तेज दौड़ू और टक्कर खा कहीं पर एक एक्सीडेंट कर दूँ ? छै दिनो तो मैं बराबर भीड़ में चलता रहा हूँ। चौमुहानी आफतो से (और) मौत से लड़ता रहा हूँ। अब थक गया हूँ, तन चूर है। सातवाँ दिन मिला है तो आज सुस्ता रहा हूँ। शान से लेटा हुआ हूँ। (मुझे नाहक तग मत करो जी ! मै सुन्दर

स्वप्न देखता हूँ : तीन देवता आ रहे हैं। हिन्द अब आजाद होने जा रहा है।' ('देवागमन' नामक चौथी कविता)।

ऐसे इस सग्रह में कई टुकड़े हैं जिन्हे हम मजे से गद्य में भी रख सकते हैं। कवि का आग्रह है, इसी से चाहे तो उन्हे आप पद्य कर ले, वरना उनमे कवित्व कहाँ और कैसा क्या है। यह कल्पना को पर्याप्त ढील देकर भी समझ में नही आता।

इस गद्यमयता के अलावा जो दूसरा दोष हमें 'नारावादी' कविता में मिलता है, वह वृथा भावुकता-जन्य सरलता और पुनरावृत्ति। सोहनलाल द्विवेदी की राष्ट्रीय कविता मे जो टेकनीक है—वही यहाँ प्रगतिवादी (साम्यवादी) कविताओ मे लगा दी गयी है। तेरी ही हिम्मत पर किसान, तेरी ही कुव्वत पर किसान का केदारनाथ अग्रवाल वाला रूप है 'नही किसी की, नहीं किसी की धरती है केवल किसान की' या 'कानपुर की सारी सत्ता श्रमजीवी की ही सत्ता है! कानपुर की सारी माया श्रमजीवी की ही माया है!!' या 'न डर, न डर, न डर, न डर, जमीन आसमान को हिलाये चल, हिलाये चल, हिलाये चल!' इसी स्वर मे मैथिली-शरणजी के 'नर हो न निराश करो मन को ; कुछ काम करो, कुछ काम करो' जैसा स्वर भी है—हरेक नौजवान को यही-यही पयाम है, मनुष्य ही मनुष्य का बिका हुआ गुलाम है।' बच्चन वाली पुनरावृत्ति की टेकनीक, जिसकी अति बंगाल के काल मे मिलती है, यहाँ भी है, 'तपकर, गलकर, जीकर, मरकर,' 'काटो, काटो, काटो, करबी,' 'मारो, मारो, मारो, हॅसिया,' इस पुनरावृत्ति वाली टेकनीक का अतिरेक ये पक्तियाँ हैं—'आगे, आगे, आगे, आगे, सर्राता है ; आओ, आओ, आओ, आओ, अर्राता है ; जीतो, जीतो, जीतो, जीतो नर्राता है'—या 'मूलगज' मे 'रात है' की आवृत्ति, यह कुछ बच्चों की कविता जैसी चीज जान पड़ती है। माना कि सामाजिक सामूहिक उपयोग—यथा, सभा-सम्मे-लनो में सघ-गायन की दृष्टि से ऐसी पुनरावृत्ति या सरलता अच्छी होती है, परतु केदार की कविता वैसी निरी Bardic poetry (चारण-काव्य) नही है। उससे अधिक ऊँची कविता के गुण उसमें हैं; इसीलिए यह दोष अखरता है।

कुछ गौण दोष भी हैं ; यथा, बिना किसी सूचना के एक ही कविता मे, छन्दो का सहसा परिवर्तन अच्छा नहीं माना जाता ; जैसे पृ० १०-११ पर चन्द्र-गहना से लौटती बेर नामक अत्यन्त सुन्दर कविता में 'मैं यहाँ स्वच्छन्द हूँ जाना नहीं है' (गीतिका—मात्रिक छन्द का मुक्त रूप—'फ़ाउलातुन फ़ाउलातुन फ़ाउलातुन') के आगे एकदम निराला वाले कवित्त—अक्षर छन्द का-सा मुक्तवृत्त

प्रयुक्त है—'चित्रकूट की अनगढ चौडी, कम ऊँची-ऊँची पहाडियाँ।' इससे उलटे 'गुड्डा' कविता मे पृ० २६ पर 'मन के अमोल भाव सीधे-साधे शब्दो मे खोल-खोल रखती है।' के आगे एकदम वही गजल-चामरवाला मात्रिक छन्द आ गया है—'सृष्टि में इसी प्रकार विश्व का समस्त धर्म पा गया विचार-जन्म !' शब्दो के भी कुछ चिन्त्य प्रयोग है। मुहावरेबाजी और देशज शब्दो के अपभ्र श रूप या 'स्लैग' का प्रयोग तो देहाती रग लाने मे बहुत उत्तम है ही, परन्तु कुछ स्थल पर 'बन्द', 'यौवन', 'हंस-ग्रीवा' (पृ० ५२) 'सुख', 'चौमुहानी' (पृ० ४८), 'दिक्बन्धुओं' (पृ० १७), जोर से (पृ० १५) 'भद्दर', 'कडा हो रही थी आँखे' (पृ० २६) 'सिकहरे' (पृ० २६), 'वह निच्छ्वसित' (पृ० ३१) इत्यादि। परन्तु इन सब दोषो के सम्बन्ध मे प्राक्कथन मे केदार ने लिख दिया है : 'इन सब बातो से स्पष्ट हो जाता है कि अब हिन्दी की कविता न 'रस' की प्यासी है, न 'अलकार' की इच्छुक है, और न 'सगीत' की तुकान्त पदावली की भूखी है। भगवान अब उसके लिए व्यर्थ है। आज जिसके कि राजा शासक हैं, पूजीपति शोषक हैं। अब वह चाहती है—किसान की वाणी, मज़दूर की वाणी और जन-जन की वाणी।' (पृ० ८ ग)

अब तक 'युग की गगा' की जो रूपात्मक—केवल 'फार्म' को लेकर—आलोचना की गई है उसमे से यह प्रश्न मुख्यतः उटते हैं . (१) गद्य और पद्य की सीमारेखा क्या है ? (२) क्या कविता रस-अलकार सगीत-तुकान्त-विहीन हो सकती है ? इन प्रश्नो पर मै इसलिए और विस्तार से यहाँ लिख रहा हूँ कि केदारनाथ अग्रवाल ने 'पारिजात' मासिक मे एक लेखमाला लिखकर अपने मत को और भी विशद किया था। वर्ड्स्वर्थ ने यह प्रश्न १७६८ मे उठाया था—कविता की भाषा गद्य की भाषा के निकटतम होनी चाहिए। उस पर खूब वाद-विवाद मचता रहा और वाल्ट विटमैन और एजरा पाउड, जिन्हे ईलियट ने 'मुक्तवृत्त' के उन्नायक कह कर गौरान्वित किया है—दोनो ने गद्य जैसी कविताए लिखी हैं। उर्दू मे चूकि छन्दःशास्त्र के बधन अत्यन्त कडे हैं, यह प्रवृत्ति जोरो पर है। परन्तु हिन्दी कविता की परम्परा इससे भिन्न है। बच्चनजी ने जैसे एक बार मुझ से वार्तालाप मे कहा था, आधुनिक हिंदी कविता का प्रवाह या तो 'आल्हा' से अपनी प्रेरणा पाता है या 'कवित्त' से। दोनो मे एक प्रकार की 'लय' है जिसे गद्य और पद्य की सीमारेखा मानना होगा। यह अतर्गत लय, या तालबद्धता (रिद्म) कहीं-कहीं केदार की कविताओं मे है और कहीं वह एकदम गायब है। जैसे ऊपर उनकी तीन-चार कविताएँ गद्यरूप में लिख कर

वनलायी गयी है। 'निराला' अंक में केदार का एक गद्यकाव्य-सा छपा है—उसे भी सुविधापूर्वक यों टुकड़ों मे बाँट कर लिखा-छापा जा सकता है; परन्तु इसीसे तो वह कविता नहीं कहलायेगी? केदार की कविता की अनुकृति यदि बढ़ेगी तो हिन्दी कविता एकदम गद्य हो जायगी, समतल।

दूसरा प्रश्न पहले प्रश्न से सम्बद्ध है। क्या रस-अलंकार-संगीत-तुकादि प्रगतिवादियों द्वारा अवहेला से देखी जानेवाली बाते कविता मे एकदम अनावश्यक है? क्या कविता एक ललित कला नहीं है? यदि है तो अन्य ललित-कलाओ की भाँति उसका भी एक शास्त्र या तन्त्र (टेक्नीक) अवश्य है। उसमे पूर्णता पाना क्या कवि के लिए आवश्यक नहीं? यह माना कि रीतिकाल की भाँति केवल शब्दजाल आवश्यक नही। जैसे केदार के संग्रह मे ये पंक्तियाँ पढिए :

प्यार पारावार बारम्बार पाकर अब न तार सितार तनते।
लीन अन्तर्गीत के मदपीन मे हो बीन के न बिहाग तरते।
राव-रंगी, भाव-भंगी, केलि-संगी, स्वर सरंगी के न सजते।
आज बर्बर क्रूर कर्कश विश्व-भर मे सभ्यता के गाल बजते॥

परन्तु उनका सम्पूर्ण बहिष्कार एक खतरा उत्पन्न करता है और वह परंपरा की अच्छाइयों को भी गाड देने वाला है। शुद्ध द्वन्द्वात्मक दृष्टि से भी कविता मे रूप और आशय ('फार्म एण्ड कन्टेन्ट') का परस्पर संघात होता रहता है। उसमे का रूपात्मक पक्ष या कला पक्ष अवहेलनीय नहीं। 'कन्टेन्ट' या काव्य-वस्तु के प्रवाह-प्रभाव मे 'रूप' या कलापक्ष का क्षीण हो जाना कोई आवश्यक बात नहीं है। ऐसे भी श्रेष्ठ कवि हो गये हैं और प्रगतिवाद मे भी हुए और होंगे, जो दोनो का महत्त्व जानते और कविता में उतारते है। जहाँ तक अच्छी कला का प्रश्न है, हमें कला के ही मान-दंड लेकर चलना होगा, मार्क्स के अर्थ-शास्त्रीय प्रमेय और वर्द्धित मूल्य का सिद्धान्त वहाँ निर्णायक नहीं हो सकते। उल्लास मे कितनी मात्राएँ हो और रोला मे कितनी, या जीवनपुरी रागिनी में कौन-सा स्वर शुद्ध लगता है या कोमल; या शिल्प मे प्रमाण क्या रहे; या नृत्य की मुद्राओं के अर्थ क्या हो, यह सब चूँकि वस्तु-जगत-अर्थनीति से संयोजित-परिमित है, अतः अर्थशास्त्र की पुस्तकों से नहीं प्राप्त हो सकता। केदार की कविता अभी इस दृष्टि से कच्ची है।

परन्तु यह सब कच्चापन उसमें के 'कण्टेण्ट' ने ढँक लिया है। वह अत्यन्त सशक्त, स्पष्ट और सविशेष है। उसमें काव्य-वस्तु इतनी विस्फोटक और क्रान्तदर्शी है कि उसकी प्रवहमानता की तुलना किसी उष्ण जल-प्रपात से ही की जा

सकती है। न केवल उसमे बर्न्स-जैसे सुन्दर ग्रामीण जीवन से घुलमिलकर लिखे जानन्द गीत ही है, ऐसे सुन्दर वर्णन :

एक काले माथवाली चतुर चिड़िया,
श्वेत पंखों के झपाटे मार फौरन,
टूट पड़ती है भरे जल के हृदय पर,
एक उजली चटुल मछली
चोंच पीली में दबाकर
दूर उड़ती है गगन में

चढ़ी पेड़ महुवा,
थपाथप मचाया;
गिरी धम्म से फिर
चढ़ी आम ऊपर,
उसे भी झकोरा,
किया कान मे कू,
उतरकर भगी मैं
हरे खेत पहुँची—
वहाँ, गेहुँओं मे
लहर खूब मारी;
पहर दो-पहर क्या
अनेकों पहर तक
इसी में रही मैं!
...हवा हूँ, हवा मैं,
बसन्ती हवा हूँ,

सावन की गुदगुदी हवा से मस्त हुआ पठ्ठे का चोला
पेड़ तले महुए के बैठा, लगा बजाने मउहर मन की
बेकाबू हो गयीं बिजलियाँ, ओ, नये बादल के परदे में
चंचल होकर ऐसी तड़पीं कूदेंगी पृथ्वी पर जैसे।

प्रत्युत नयी हिन्दी कविता मे कुछ नेपाली की और कुछ नरेन्द्र शर्मा की रचनाओं में छोड़ कर अन्यत्र कम मिलेंगे।

प्रकृति के केवल यथार्थवादी वर्णन ही नही हैं, प्रतीकात्मक सयोजना भी

है। जैसे, कोहरा (पृ० १४) प्रत्यूष के पूर्व (पृ० १७) आदि। किसानों का, कटुई का, जुनाई के गाने किसान-राज की आने वाली आशावादी घड़ी के परिचायक हैं। एक प्रकार का स्वास्थ्य इन सब कविताओं में परिव्याप्त है। प्रगति का प्रेम यहाँ केवल बुखार की तरह क्षणजीवी होकर नहीं आया है। वह धमनियों में रक्त की तरह, कविता की पंक्ति-पंक्ति में प्रवहमान है। अब तक जितने प्रगति-पोषक कविता संग्रह छपे हैं उनमें से अधिकांश प्रगति को राजनीतिक अर्थों मे अथवा सामाजिक विषमताओं को व्यक्त करने के अर्थ में ही लिया गया। जड़ को सींचने का प्रयत्न 'युग की गंगा' मे है। सामाजिक प्रगति के मूल में हमें अपने अंध-विश्वासों से भी मुक्ति पानी होगी। इस कविता की 'लामजहब' नास्तिकता, देवताओं को सुनार की भट्ठी में गलाने का यह प्रयास बहुत ही निर्भीक और मूल-ग्राही है।

पंत, आधुनिक कवि, भाग (२) और 'सुमन' के कविता-संग्रह 'जीवन के गान' के बाद हिंदी कविता-संग्रहो मे कवि लिखित इतनी सुन्दर, सुलझी हुई भूमिका अन्यत्र नहीं मिली। केदार का प्राक्कथन प्रत्येक नये कवि (और उससे भी अधिक प्रगति-विरोधी आलोचकगण) के अध्ययन-मनन की वस्तु है। इस प्राक्कथन में किसी पर राग-द्वेष, क्रोध-फूत्कार नहीं है। कविता की धारा विश्व में और हिंदी मे कैसी बहती आयी, इसका स्पष्ट चित्रण है। केदारनाथ को 'Marxism and Poetry' जैसी एक पुस्तक हिन्दी को देनी चाहिए। 'काव्य-चिंतना' जैसे विवाद्य प्रश्नों को उठाने के बजाय—जिन पर दो रायें हो सकती हैं—हिन्दी-कविता के इतिहास को, जिसका सूक्ष्म परिचय इस 'प्राक्कथन' मे दिया है, विस्तार से पुस्तकाकार लिखना चाहिए। नयी कविता के सम्बन्ध में वे आत्मविश्वस्त हो लिखते हैं—'काव्य मे इस नये जागरण की प्रक्रिया बिलकुल नई हुई है। अब जो कविताएँ लिखी गयी, वह छायावादी और रहस्यवादी कविताओं से सर्वथा भिन्न हैं। स्वयं रहस्यवादी और छायावादी कवि ही—पन्त और निराला इस ओर झुक पड़े।'' हिन्दी का यह युग समाजवाद, यथार्थवाद, प्रगतिवाद और मार्क्स-वाद का युग है। जनता ने साम्राज्यवादी मोर्चे के विरोध मे अपना नया बलवान मोर्चा बनाया है, और साम्राज्यवादी अर्थ-नीति का अन्तकाल आ गया है। यदि ऐसे मे भी हिन्दी के वर्तमान कवि इस जन-जीवन मे अपना काव्ययोग नहीं देंगे, तो वह अपमानित और अवहेलित होंगे, और परम्परा अब अवरुद्ध होकर विश्राम ले लेगी। जो साहित्यिक इस नये काव्य के विरुद्ध मोर्चा बनाकर उसे मिटा देना चाहते हैं, वह असफल तो होंगे ही, किन्तु उन्हे अपनी भूल का निरा-

करण करने के हेतु 'कलंकी' की उपाधि भी लेनी होगी। आनेवाली पीढी के लोग उन्हे क्षमा नहीं कर सकते।'

यद्यपि इस भूमिका में भी कुछ ऐसे सामान्यीकरण (स्वीपिंग जनरलाइ-जेशन्स) हैं, जिनसे सहमत होना कठिन है, यथा—'पिछला समस्त भारतीय साहित्य केवल मात्र ईश्वर, भूपति, पुरोहित, चमूपति और व्यापारियो के ससार की मानसिक प्रक्रिया का साहित्य है। इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता, तब लोकसाहित्य का क्या होगा?

और 'कवि अथवा उसके व्यक्तित्व को अर्थ-नीति का ही अंश समझना चाहिए। कवि की विचारधारा और भावधारा दोनो ही अर्थ-नीति से निःसृत होती हैं।' यह भी ऐकान्तिक मान्यता है। कवि-व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाली यह अर्थ-नीति, किंबहुना समीक्षा-क्षेत्र में यह वाक्य पूजीवादी समाज-व्यवस्था की द्योतक है। हमेशा के लिए इसी एक मापदण्ड को मान लेना अनैतिहासिक होगा। परन्तु यह सब विवादास्पद चर्चा उठाने का यह स्थल नहीं।

५. भारतभूषण अग्रवाल

'मुक्ति-मार्ग' पुस्तक मे 'छवि के बन्धन' और 'जागते रहो' के कवि भारतभूषण अग्रवाल की सन् १९४४ से १९४७ तक की चालीस कविताएँ संग्रहीत हैं। कवि ने अपनी ओर से कोई वक्तव्य नही दिया है, केवल विलियम मौरिस का एक उद्धरण दिया है, जिसमें कहा गया है—'तुममें से कई मुक्ति के इच्छुक होगे, तुम मे से कई इस आपाधापीवाले व्यावसायिक जगत से आहत और पराजित होगे···परन्तु तुम्हारी सच्ची मुक्ति मजदूरो, सर्वहारा श्रमिको के साथ एकाकार होने मे है; उन्हीं की आशा में तुम्हारी आशा सन्निहित है, उनके बिना तुम भी असहाय और निराश होकर जियोगे-मरोगे।'

प्रथम कविता 'तार-सप्तक' मे दी गयी कवि की अन्तिम रचना है, जिसमें वह 'क्वः पंथा' कहकर कुण्ठित-मति चौराहे पर खड़ा है। उसकी समस्या यह है कि 'महाजनो येन गतः स पंथा' कहे तो उतने साधन-वाहन उसके पास नहीं, अन्तरात्मा की पुकार सुने तो वह अनिश्चय-सशय-ग्रस्त है और क्रान्ति की गति इतनी तेज है कि उसके अनुगमनयोग्य सामर्थ्य पैरो मे नहीं। ऐसी स्थिति में बटोही आकुल, अधीर, आतुर है कि वह किधर जाय? संग्रह की अन्तिम कविता में कवि ने वह मार्ग जैसे पा लिया है। वह 'सबजेक्टिविज्म' के छूँछे अतीन्द्रिय कुहासे से बाहर निकल आया है, और उसे नया सम्बोध मिल गया है।

अन्तर का आह्वान आज बाहर से आया
युग-युग की पीड़ा ने जग में एक नया सम्बोध जगाया
व्यापक संस्कृति, और उच्चतर जीवन-स्तर की नींव
जमाने हम जाते हैं।

कविताओ मे कई प्रकार हैं। सानेट्स हैं; सूक्तियाँ हैं; गीत हैं; विभिन्न मनःस्थितियो के चित्र भी हैं। यह एक विवाद्य वस्तु है कि सूत्रबद्ध दो-दो, चार-चार पंक्ति की सूक्तियों को कविता कहाँ तक माना जाय? वे उत्तम कथन हैं, 'क्लेवर विटिसिज्मस्' हैं; परन्तु वे कविता की कोटि में कैसे आ सकेंगे? वैसे दोहे और कई शेर भी आज लोकोक्तियो में बहुप्रचारित हो गये हैं; उनमें मार्मिकता भी पर्याप्त पायी गयी है; परन्तु 'विट' या सूझ मात्र श्रेष्ठ कविता का मान-दंड नहीं हो सकती। भारतभूषण की इस सग्रह की कई रचनाएँ ऐसे सुभाषित या सूक्तियाँ हैं : कविताएँ नहीं। उदाहरणार्थ, ये रुबाइयों जैसी चीजें देखिए :

तुम धरा हो
झील, पर्वत, नद, विटप, मैदान, मरु में लुप्त—डूबी!
और मै आकाश हूँ
बादलों से भरा, फिर भी मुक्त-अम्बर!!

इससे मुझे याद आया कि 'रिल्के' की एक इससे भी बढ़िया रूपक-योजना है :

We in the wrestling nights
Fall from nearness to nearness :
She is a thawing pond.
I am a startling stone.

मुसकराना भी मना, यह देश कैसा है!
ढल चुका उत्साह यह आश्लेष कैसा है!
छलक आया जब नयन में दान जीवन का,
पूछता है कौन 'यह आवेश कैसा है?'

यह नहीं होगा कि मेरा स्नेह मुरझा जाय
यह नहीं होगा कि मेरा व्यक्ति ही खो जाय
और यह भी तो नहीं हो पायगा सम्भव—
परिधि सिमटे, औ' सिमटकर केन्द्र में सो जाय

खो गया जब पथ, थके जब पैर मेरे हार
चुक गया जी का सभी उत्साह जब उस बार
तब तुम्हीं ने तो किया था, अरे मन के मीत !
सुप्त मेरी धमनियों मे स्नेह का संचार

या यह 'कामनप्लेस' (अति साधारण) विरोधाभास—'क्योकि दोनो सत्य हैं : तम भी उजेला भी। मैं तुम्हारे साथ भी हूँ, प्रिय ! अकेला भी।' इन सूक्तियो मे अनुभूति खण्ड है। कहीं-कहीं बडा चमत्कारपूर्ण अन्त भी मिल जाता है, जैसे,

फिर भय क्या, तू भी बाँध कमर, ले धनुष तान
सब अटकल से ही यहाँ लगाते हैं निशान

कुछ गीतो मे छायावादी कुण्ठा है : जैसे 'प्यार मेरे भार मत बनो !' इस गीत मे तो अभिव्यक्ति भी वही छायावादियो की-सी है, 'उन्मुक्त द्वार, पॉव मे शके भरपूर' मे भी वैसी ही गृहाबद्ध भावुकता है, वही 'दौह्लाद्र-भाव' (नौस्टेल्जिया) की निराशा 'अपना ही मन खो बैठे जब, औरो की क्या बात है !', 'रात-भर रोता रहा है मेघ', 'प्रतिध्वनित होते नहीं अब गीत मेरे किसी अन्तर से', 'बन्द जब होने लगा था इस गुहा का द्वार', 'उन्मुक्त आज मैं, किंतु दीन, आकुल मलीन' आदि कविताओ मे और गतिरोध-जन्य व्यर्थता का भान (फ्रस्ट्रेशन) ऐसे कवितान्त पदो से कि :

उत्तर में किन्तु बस सिर पर यह आसमान
मटमैला रेतीला,
और यह दरवाजे फटफटाती आँधी,
झलकता है।

परन्तु सभी कविताएँ ऐसी नही हैं। 'मुक्तिमार्ग के हम सहयात्री, हम सहयोगी।', 'कुछ दिनो से भर रही है हृदय मे अति तीव्र अकुलाहट'; 'खोल सीना बॉधकर मुट्ठी कड़ी'; 'प्यार से सीचूं तुझे ओ बीज मेरे !', 'खोदो, खोदो, खोद—', 'घोट दूँ गला', 'झंझावात आता है', 'गमन के क्षण', 'सो रहा है पूर्व गहरी नींद मे पीकर उदासी' जैसी लम्बी, मुक्त-छद मे लिखी कविताओ मे पर्याप्त और प्रखर प्रगतिशील स्वर है। कवि की यह प्रगतिशीलता जैसे अक्सर आज के कई कवि केवल समाचार-पत्रो की सनसनाती खबरो से प्रभावित होकर जल्दी से नारावादी रचनाएँ गढ़ डालते हैं; वैसी क्षणजीवी और क्षिप्र-प्रेरणाजन्य नहीं। वह जन-जन की आशा-आकॉक्षाओ की सच्ची, गहरी, ठोस और व्यापक

अनुभूति की नीव पर बनायी जानेवाली 'नये सम्बोध' की इमारत का नक्शा देती हैं। वह स्तालिन की वह उक्ति सार्थक करती है कि—'कवि जनता की आत्मा के इंजीनियर होते हैं।' गतयुद्ध के साम्राज्यवादी अथवा जन-युद्धात्मक स्वरूपों पर बहस-मुबाहसा करने से सिर्फ तर्क की गर्मी बढ सकती है, परन्तु भारतभूषणजी की यह पंक्तियाँ पढ कर, जो कि सीधी मन में गहरी बैठ जायँगी—जनक्रांति की एक विलक्षण सुखद और आशा-भरी ऊष्मा की प्रतीति होती है :

मुक्ति के इस मार्ग में हम-तुम अकेले ही नहीं हैं,
हैं हमारे साथ लाखों, करोड़ों, अरबों, असंख्य
स्वदेश और विदेश के भाई
कि जिनके तेज कदमों की सबल आहट निरन्तर
गूँजती है बन प्रबल आह्वान
आज चारों ओर—
गगनभेदी घोष से, लो, डोलता है लोक-पारावार
पूर्व से पश्चिम तलक बस आज देती है
सुनायी एक ही आवाज
जिससे काँपता है जीर्ण भूमि-प्रदेश, नभ का गात,
छल का राज-सिंहासन
'मुक्त हैं, हम मुक्त हैं, हैं मुक्त सारे विश्व के
जन-गण'—
फ्रांस के तट से उठी यह मुक्त-कंठों की अमर-
ध्वनि आज देती है सुनायी
पीत-सागर की तरंगों मे,
सीन, राइन, ऐल्ब, पो, डैन्यूब, वोल्गा पार
करती उमड़ती है
सिन्धु-सीक्यां की विफलता में—
वह विफलता जो बनी इन दग्ध घड़ियों में
हमारे लोक-जीवन की
अमूल्या व्योम-व्यापी क्रांति-वाणी!

भारतभूषण अग्रवाल की कविता के दो गुण मुझे अत्यन्त श्रेष्ठ जान पड़ते हैं : एक उनकी व्यंजना की सरलता या प्रसाद-गुण; और दूसरा उसके पीछे की

सहजता या प्रामाणिकता। यद्यपि यह कहा जायगा कि आज जब साहित्य को शस्त्र की भाँति प्रयुक्त किया जा रहा है, 'सादगी' या 'रवानी' या इस तरह की भावनाओं की ईमानदारी अपने आप मे कोई गुण नहीं—उन सबका परिणाम या प्रभावोत्पादकता प्रधान है; फिर भी मेरा अभी विश्वास है कि इन दोनों बातों में कार्य-कारण सम्बन्ध है, एक के बिना दूसरी बात संभव नहीं। अप्रामाणिक प्रचार अधिक खतरनाक होता है बनिस्बत अप्रभावोत्पादक प्रामाणिकता के। कवि की वाणी से स्पष्ट होता है कि उसने टेकनीक के प्रयोग टेकनीक के प्रयोगों के लिए नहीं किये हैं; वरन् वह राह खोज रहा है—उसे द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दर्शन का पथ स्पष्टतः दिखायी दे रहा है; वह उससे बल और सबल प्राप्त कर रहा है। इसी कारण मुक्ति का यह मार्ग प्रशस्त और विस्तृत और ऐतिहासिक अनाद्यन्तता तथा अनिवार्यता लिये हुए है।

बंगला कवि

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

: १६ :

रवीन्द्रनाथ ठाकुर**********

बर्नार्डशा ने लन्दन में मनाये गये तीसरे ठाकुर-दिन पर एक सन्देश भेजते हुए कहा : 'बहुत अच्छा हुआ रवीन्द्र, तुम ऐसी दुनिया को छोड गये जो तुम्हारे कहे वचनो के बिलकुल विपरीत बरत रही है।' गांधीजी और जिन्ना दोनो ने हैदराबाद मे महाकवि के स्मृति-दिन की सभा मे एक साथ सदेश भेजे थे। सचमुच सरोजिनीदेवी के शब्दो मे 'हममे से वह माली उठ गया, जिसके सींचे बाग के फूलो की महक युग-युगान्तर तक फैलती रहेगी।'

रवीन्द्रनाथ का जीवन उनके साहित्य से अविच्छिन्न था। जीवन पर एक सरसरी निगाह डालने से हमें पता लगता है कि वे न केवल हमारे राष्ट्र के महाकवि थे, पर अतर्राष्ट्रीयता के बड़े समर्थक भी थे; वे न केवल एक कलाकार थे, पर युग की माँगो के प्रति भी सतर्क और जागरूक रहते थे, वे एक ऐसे दार्शनिक थे, जिनका दर्शन केवल बुद्धि का और विद्वत्ता का शुष्क शब्दच्छल न था, बल्कि वह उनके प्राणों में रम गया था।

मोह मोर मुक्तिरूपे उठिबे ज्वलिया,
प्रेम मोर भक्तिरूपे उठिबे फलिया!

मेरा मोह मुक्ति-रूप मे ज्वलित हो उठा है। मेरा प्रेम भक्ति-रूप मे फलित हा उठा है।

वे सच्चे गुरुदेव थे। वे आधुनिक शिक्षा-पद्धति को गॅवारिन के पहने हुए ऊँची एडी के जूते और रेलगाड़ी का ऐसा प्रकाश मानते थे, जो उस छोटे से कमरे को तो प्रकाशित करे पर अड़ोस-पड़ोस का योजनान्त विस्तार अधेरे में ही छोडता चले; वे आधुनिक शिक्षा मे कला और विज्ञान का बेशर्म तलाक देखते

थे; वे उसमें आमूल परिवर्तन चाहते थे—उसी उद्देश्य से उन्होंने शांतिनिकेतन को 'विश्वभारती' बनाया, उसे व्यावहारिक जीवन से जोड़ने के लिए 'श्री-निकेतन' खोला, १९३७ में 'चीना भवन' और '३९ में 'हिन्दी-भवन' खड़ा किया।

उनके जीवन की एक सरसरी झाँकी ऊपर की सब बातों को प्रमाणित कर सकेगी। देवेंद्रनाथ ठाकुर और शारदादेवी की चौदहवीं सन्तान थे रवीन्द्र, जन्म ७ मई १८६१ ईस्वी। तेरह बरस की उम्र में उन्होंने मैकबेथ जैसे शेक्सपीयर के कठिन नाटक का बँगला में अनुवाद किया, पन्द्रहवें वर्ष 'ग्यानांकुर' मासिक में उनकी प्रथम कविता 'वनफूल' छपी। सत्रहवें वर्ष में लन्दन यूनिवर्सिटी में दाखिल हुए। बाईसवें वर्ष विवाह हुआ, वैवाहिक जीवन उनका केवल उन्नीस वर्ष का रहा। मृणालिनीदेवी से उन्हें रथीन्द्र, समीन्द्र, रेणुका तीन सन्तान हुईं। एक एक कर कन्या, पिता, पुत्र, पत्नी, ये जीवन के साथी छूट गये। 'जीवनेर खर-स्रोते भाशिते सदाई भुवनेर घाटे-घाटे; एक हाटे लश्रो बोझा, शून्य करे दाश्रो अन्य हाटे।' फिर भी महाकवि द्रवित-विचलित न हुए, जमींदारी चली गई, राजनीति में भी मतभेद हुआ; सक्रिय योग से वे अलग हो गये। इसके बाद कुछ और महत्वपूर्ण घटनाएँ : १८९८ ईस्वी—लो० तिलक की गिरफ्तारी पर सरकार की निन्दा, १९०२—लार्ड कर्जन को उत्तर; १९०४ स्वदेशी समाज (निबन्ध), १९०५ बंग-भंग-आन्दोलन में सहयोग; १९०७—गोरा (उपन्यास) में सामा-जिक क्रांति का बीजारोपण; १९०५-६ में 'प्रायश्चित्त' और 'राजा-प्रजा' नाटक में समाजवादी विचारों का प्रचार, १९०९—अहिंसात्मक सत्याग्रह का समर्थन; १९१०—गीतांजलि; १९१२—'जनमनगण अधिनायक जय हे' की रचना और कांग्रेस में गायन; इसी वर्ष १३ नवम्बर को नोबुल-पुरस्कार की प्राप्ति, सी० एफ० एण्ड्रयूज़ से भेंट और शांतिनिकेतन की स्थापना। १९१५—गांधीजी का अफ्रीका से लौटते हुए शांतिनिकेतन में आकर ठहरना। १९१६—जापान-अमरीका यात्रा। १९१९—जलियाँवाला कांड पर 'सर' की उपाधि का त्याग। १९२०—रोम्यांरोलां से भेंट, गांधी-शरच्चंद्र से मतभेद। १९२१—विश्वभारती की स्थापना। १९२२—श्रीनिकेतन। १९२५—अ० भा० दर्शन-परिषद् का सभापतित्व। १९२६—इटली; मुसोलिनी के अतिथि; क्रोचे, जो नज़रबन्द थे उनसे भेंट, फासिज़्म की निंदा और सिन्योर गायडा की 'पोपोलोड इटालिया' में बौखलाहट। १९२८—एनीबीसेंट और अरविंद घोष से भेंट। १९३०—पैरिस-मास्को में चित्र-प्रदर्शनियाँ, जर्मनी में आइनस्टाइन से भेंट, चित्रकला का

आरम्भ, रूस यात्रा और उस पर लिखी पुस्तक 'रूसेर चिठी'। १६३५— जापानी यूनिवर्सिटी के अंग्रेज़ी के प्रोफेसर और कवि योन नागूची से पत्र-व्यवहार और जापानी साम्राज्यवाद की कड़े शब्दों में आलोचना। १६३६— गाधीजी की ओर से कवीन्द्र को ६० हजार का गुप्त-दान मिलना। १६४०— गांधीजी शाति-निकेतन में, रवीन्द्रनाथ की 'गाधी महाराज' कविता की रचना। १६४१—अस्सीवें जन्म-दिवस पर 'सभ्यतार संकट' नामक कड़ा ब्रिटिश-शासन-विरोधी भाषण और कुमारी रैथबोन को करारा जवाब। श्रावण पूर्णिमा, ७ अगस्त '४१ को १२ बजकर १३ मिन्ट पर

'रवि अस्त जाय'
अरण्येते अन्धकार आकाशेते आलो
······खूं जितेछि—कोथा तुमि, कोथा तुमि

अर्थात्, रवि अस्त हुआ। जगल से अंधेरा, आसमान से रोशनी खोज रही है—कहाँ हो तुम, कहाँ हो !)

इस प्रकार की विविध कर्मपूर्ण जीवनी में महाकवि ने बारह बार विदेश-यात्रा की और १६००० पृष्ठ ठोस साहित्य लिखा।

रवीन्द्रनाथ जीवित होते तो बगाल के अकाल और देश-विभाजन के सम्बन्ध में और और बातों के विषय में वे क्या सोचते, यह अनुमान करना कठिन है। परन्तु युद्ध के विषय में तो ईसा और बुद्ध के अनुयायियों के प्रति उनकी लिखी हुई 'The Son of God' और 'The Worshippers of Buddha' ये छोटी-छोटी अग्रेजी कविताएँ दर्शनीय हैं। रवीन्द्रनाथ शांतता के पुजारी थे, पर अहिंसा के नहीं। उनके आतर्राष्ट्रीय बन्धुता के विशाल स्वप्न पर आज की दुनिया देखकर आघात जरूर होता—पर घटना का तर्क कितना अकाट्य और अबाधित है। बम्बई की सोवियत्-मित्र-सघ की पहली काग्रेस में सर्व-भाषा-कवि-सम्मेलन के आरम्भ में गाये हुए कविवर के गान की वे पंक्तियाँ अभी भी मेरे कानो मे गूज रही हैं :

बांध भेंगे दाओ, बांध भेंगे दाओ—बाँ ऽऽ ध
भांगनिक जयध्वनि कर,
जीर्न पुरातन जाक भेसे जाक
जाक भेसे जाक······!

अर्थात्, बंधन तोड़ दो, बधन तोड़ दो ! तोड़ने वाले का जयजयकार हो। जीर्ण पुरातन सब मिट जाय, मिट जाय !

रवीन्द्रनाथ के हीरे जैसे बहुमुख व्यक्तित्व का एक और पहलू था। वे मर्मी थे। वे जानते थे कि वैराग्य-साधन से मुक्ति नहीं मिलने वाली है। वैसे ही वस्तुओं के अन्तर्गत महान् अन्विति और अभेद को वे चीन्ह सके। राजनीति की काँट-फाँस उनके व्यक्तित्व को किसी तरह बाँट न सकी। वे भारतवर्ष को न तो 'अखण्ड हिन्दुस्तान', न ही 'पाकिस्तान' के नारों से बंधी और उनके सहारे जीने वाली एक चीज समझते थे; वे तो उसे भारत-तीर्थ समझते थे।

इसी कारण रवींद्र आज विश्ववंद्य हैं, महान् हैं। धर्म उनके निकट सम्प्रदाय नहीं था, और न ही राजनीति का शिकार खेलने के लिये एक टट्टी की ओट। उनका धर्म 'Religion of Man' था। इस कारण जहाँ-कहीं, जब-कहीं उन्हें अन्याय, अत्याचार और प्रपीड़न मिलता, अपने प्राणों के समस्त ओज और माधुर्य से वे उसका विरोध करते। इसी कारण कइयों ने उनके 'शिवाजी उत्सव' और 'बन्दा-वीर' जैसी रचनाएँ लिखने पर भी उन्हें प्रांतीयता के आक्षेप से आरोपित किया; और 'आगे चल, आगे चल, भाई' में

पिछार जे आशे, तेने डाके नाओ,
निये जाओ साथ करे;
केऊ नाहिं आशे, एका चले जाओ,
महत्तर पथ धरे !

अर्थात्, जो पीछे रह गये, उन्हें भी पुकार कर बुला लो। साथ लिये जाओ। कोई यदि न आवे तो अकेले महत्तर पथ पर निश्चय से आगे बढ़ो! कहने पर भी उन्हें व्यक्तिवादी कहा गया। पर वे इन सबसे अविचलित, एकव्रती, एक निष्ठा से अनुप्राणित अपना जीवित कार्य कर गये। 'उनका दायित्व हम सब प्रान्तों के छोटे-छोटे नये-नये साहित्य-सेवी और कलमधर किस तरह निबाहते हैं, उनका संदेश ग्राम-ग्राम और जन-जन तक कैसे पहुँचाते हैं, इसीपर 'आगामी कल' हमारी कसौटी करेगा;' यह बम्बई की प्रगतिशील-लेखक संघ की सभा में कवि हरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय के उद्गार बहुत अर्थपूर्ण हैं।

डा० रामविलास शर्मा के शब्दों में रवीन्द्र सांस्कृतिक समन्वय के अग्रदूत थे। संस्कृत में उपनिषद्, हिन्दी में सन्त साहित्य तथा अंग्रेजी में रोमांटिक कवियों की भावना-धारा से उन्होंने अपने साहित्य को मधुर बनाया है। भारतवर्ष के प्रति ब्रिटिश शासकों का व्यवहार देखकर पूर्व और पश्चिम की सभ्यता के मिलने की उनकी आशा मन्द पड़ गई है। यूरोप का संघर्ष मनुष्यता के विकास में बाधा डाल रहा है और इसीलिए उन्हें यूरोप से भविष्य के रचनात्मक कार्य के

लिए विशेष आशा नहीं है। यदि हमारे देश को इस विकास में, आगे के रचनात्मक कार्य में सहायक होना है तो उसे अपनी एकता को पहचानना होगा। इस एकता की पहचान के लिए श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर का साहित्य हमारी सहायता करेगा। उसे पढ कर हम भारतवासियों की विशेषताओं को पहचान सकेंगे। जैसे-जैसे हम एक दूसरे के साहित्य को निकट से देखेंगे, वैसे-वैसे विषमता दूर होगी और समानता बढेगी, हम अपने आपको एक ही भारतीयता के सूत्र में गुँथा हुआ पायेंगे।

श्रीरवीन्द्रनाथ ने अपना जीवन इस एकता और समानता के भाव को बढाने मे लगाया है। उन पर श्रद्धा प्रकट करने की सबसे उचित प्रणाली यही है कि हम उस कार्य को और आगे बढाये। कवि ने यूरोप मे जैसे सास्कृतिक एकता को देखा है, वैसे ही हम भारतवर्ष मे एक भारतीय संस्कृति का विकास करे। और यह सस्कृति मनुष्य के विकास मे अधिक सहायक हो, कवि ने इसके लिये साधना की है। एक सिख गुरु के मुख से उन्होने अपनी ही बात कही है :

आमार जीवने जीवन लभिया जागो रे सकल देश !

अर्थात्, मेरे जीवन से जीवनलाभ करके हे सकल देश, जागो !

रवीन्द्र के एक गीत 'अधूरी साधना' का इलाचन्द्र जोशी द्वारा अनुवाद देखिये :

रह गई अधूरी पूजा जो जीवन में
वह व्यर्थ नहीं, यह जान गया मैं मन में।
झर गया फूल जो खिलने के पहले ही,
जो नदी खो चुकी निज धारा मरु-वन में,
वह व्यर्थ नहीं, यह जान गया मैं मन में।
अब भी जितना कुछ पड़ा रह गया पीछे,
वह उभर उठेगा, नहीं रहेगा नीचे।
मेरे अनजाने—बिना तनिक अनुमाने
बज उठता वह तेरे वीणा-वादन में,
कुछ व्यर्थ नहीं, यह जान गया मैं मन में॥

लेनिनग्राद् विश्वविद्यालय में श्री राहुल साकृत्यायन ने रवीन्द्र जयंती पर भाषण मे कहा था—"और भारत के लिए रवीन्द्र एक और भारी महत्त्व रखते हैं। वह भारत के साहित्य के इतिहास मे एक नये युग के प्रवर्तक हैं। सिर्फ

बँगला भाषा ही के साहित्य में नही, सारी भारतीय भाषाओ के साहित्यों में, चाहे आप हिन्दी, पंजाबी, गुजराती, मराठी, उड़िया जैसी उत्तर की इण्डो-यूरोपीय भाषाओं को लीजिए, या दक्षिण की तेलगू, कन्नड़ जैसी द्राविड़ भाषाओ को। मैं यहाँ सबसे अधिक बोली जाने वाली, तथा बारह सदियो से सुन्दर समृद्ध साहित्य रखनेवाली हिन्दी भाषा का उदाहरण देता हूँ। बीसवी सदी के द्वितीय दशाब्द मे पहुँचने पर उसके पथ में कई समस्याएँ उठ खड़ी हुई थीं, ऐसी समस्याएँ, जिनको दूर किये बिना वह एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकती थी। ये समस्याएँ थीं शब्दो के चुनने-सजाने के सम्बन्ध में, छन्द और अलंकारो के रुढिबद्ध सिद्धान्तों के सम्बन्ध में, विश्व-साहित्य से सम्बन्ध स्थापित करने के सम्बन्ध में। हिन्दी की इस समस्या का हल किया 'निराला' और उनके साथी कवियों 'प्रसाद' और 'पन्त' ने। इस कार्य में पथप्रदर्शन किया रवीन्द्र की कविता ने। हाँ, पथप्रदर्शन का अर्थ अनुकरण नही समझना चाहिए। अनुकरण के बल पर उच्च-साहित्य का निर्माण नही हो सकता। हमारे नवयुग-प्रवर्तक कवि हिन्दी कविता में कुछ त्रुटियों का अनुभव कर रहे थे, उन्हे पहचानने में रवीन्द्र की कविता ने सहायता की। फिर इन्होंने भी उन्हे दूर करने का सफल प्रयत्न किया। यही बात दूसरी भारतीय साहित्यिक भाषाओ के सम्बन्ध मे है।

रवीन्द्र ने सारे आधुनिक भारतीय काव्य-साहित्य को एक नई दिशा दी जिसमे यद्यपि प्राचीन को तिरस्कार की वस्तु नही समझा गया तथापि सदियों की सकीर्णता और दुरभिमान के लिए वहाँ कोई स्थान न था, प्रगति और विश्व-प्रेम इस नवीन कवितायुग का प्राण है।"

रवीन्द्रनाथ का यह प्रभाव भारतीय साहित्य के हर पहलू मे लक्षित है। वे एक महान् शाति-प्रेमी मानवतावादी लेखक थे। परन्तु उनका मानवतावाद केवल मधुर आशीर्वादों तक ही सीमित नहीं था। उनके मानवतावादी सिद्धान्तो का विकास भी हुआ। मानवतावाद के कारण ही वे विश्व के महत्वपूर्ण शान्ति-कामी थे। उनकी शान्ति की कामना सिर्फ शान्ति चाहने तक ही सीमित नही थी। उन्होंने दृढ़ कंठ से युद्ध का विरोध भी किया।

प्रथम महायुद्ध के पूर्व ही, जब कि पाश्चात्य साम्राज्य-लोभी जातियो में युद्ध की तैयारियाँ हो रही थीं, तभी रवीन्द्रनाथ ने उस युद्ध का आभास पाकर, १९०१ ई० में ही अपने "नैवेद्य" नामक काव्य-ग्रन्थ में कहा था :

दयाहीन सभ्यता-नागिनी ने
गुप्त विषदन्त में तीव्र विष भर कर,
अपने कुटिल फण को एकाएक उठा लिया है।
स्वार्थों का संघात शुरू हो गया है।
लोभियों में संग्राम छिड़ गया है।
प्रलय मंथन से क्षुब्ध होकर-
भद्रवेशी बर्बरता कीचड़ में से निकल रही है।

इसके बाद जब पाश्चात्य राष्ट्र द्वितीय विश्वयुद्ध की तैयारी कर रहे थे; और जब युद्ध के कारण पहले की अपेक्षा और भी स्पष्ट हो गये थे, उस समय भी मानवतावादी रवीन्द्रनाथ ने युद्ध का विरोध किया। जापानी कवि नागूची के अन्धराष्ट्रवाद से अभिभूत युद्धोन्माद का उन्होंने जिस ऊर्ध्व-कंठ से विरोध किया, वह इतिहास की एक अपूर्व निधि है। युद्धोन्मत्त मुसोलिनी से मिलने से भी उन्होंने इन्कार कर दिया था। उनकी कविताओं में उनका यह स्वर-गान बनकर निकला। १६३८ में "प्रायश्चित" नामक एक कविता उन्होंने लिखी, जो उनके "नवजातक" संग्रह में सुरक्षित है। उस कविता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:

शक्ति के भोज में जिन लोगों ने बलिदान किया था,
उन दुर्बलों के दलित और कुचले-पिसे प्राणों को लेकर
नर-मांस-भोजी आपस में छीना-झपटी कर
दुर्बलों की अंतड़ियों को छिन्न-भिन्न कर रहे हैं।
तीखे दाँतों द्वारा सर्वत्र नोच-खसोट व्याप्त हो गया है।
खूनी कीचड़ से पृथ्वी लिप गई है! ....
पर इस विनाश के प्रचंड महावेग से ही
एक दिन अन्त में विपुल वीर्यमयी
शांति का निर्माण होगा।

इस शान्ति प्रेम का एक और उदाहरण है रोलाँ के पत्र। फ्रांस के विश्व-विख्यात साहित्य कलाकार और मनीषी स्वर्गीय रोम्याँ रोलाँ को भारत से बहुत प्रेम था। वह रवीन्द्रनाथ और गांधी दोनों के बहुत बड़े प्रशंसक थे। पर स्वयं भी कलाकार होने के नाते रवीन्द्रनाथ की ओर उनका झुकाव स्वभावतः अधिक था। प्रथम महायुद्ध में ही वह युद्ध-प्रेमी राष्ट्रों के खिलाफ पूरी ताकत से आवाज़ उठाते रहे और स्वयं अपने देशवासियों की संकीर्ण मनोवृत्ति का विरोध करने से

न चूके। रवीन्द्रनाथ की कला से मुग्ध होकर और उनके विचारो से अपने विचारो का साम्य पाकर उन्होने उनके साथ कई वर्षो तक पत्र-व्यवहार किया था। उनके एक पत्र का अनुवाद देखिये :

वियीनव
स्विट्जरलैण्ड
१० अप्रैल, १६१६

प्रिय बंधु !

कुछ मुक्त आत्माओ ने, जो आज के युग मे बुद्धि के विश्व-व्यापी दमन और दासत्व के विरुद्ध सयुक्त रूप से खड़े होने की आवश्यकता महसूस करते हैं, आत्मा की स्वतंत्रता की घोषणा की योजना तैयार की है। उसकी एक नकल मैं आपके पास भेज रहा हूँ। क्या आप इस घोषणा पर हस्ताक्षर करके हम लोगो का साथ देकर हमे कृतार्थ करेगे? मेरी यह निश्चित धारणा है कि हमारे विचार आपके विचारो से मेल खाते हैं। हमें इन मनीषियो की स्वीकृति इस सबंध मे मिल चुकी है : आँरी बारबुस, पाल सिन्याक, डा० फ्रेडेरिक फान एडेन, प्रोफेसर गियोर्ग निकोलाइ, हेनरी फान डे फेल्डे, स्टेफान त्स्वाइग। इसके अलावा हमे बर्टेण्ड रसेल, सेलमा लागरलाफ, अप्टन सिंक्लेयर, बेनेदेतो क्रोचे आदि अन्य महापुरुषो की स्वीकृति मिलने की भी आशा है। हमारा विचार है कि प्रारम्भ मे प्रत्येक देश से तीन या चार विशिष्ट व्यक्तियो के हस्ताक्षर प्राप्त किये जाँय, जिनमें एक साहित्यकार, एक तत्त्ववेत्ता और एक कलाकार हो। उसके बाद हम घोषणा को प्रकाशित करेंगे; जिसमे विशेष रूप से सभी देशो के चुने हुए मनीषियो से अपील की जायगी। यदि आप भारत, जापान और चीन के कुछ उपयुक्त व्यक्तियो के नाम हमे सुझा सकें तो मै बहुत अनुगृहीत हूँगा। मेरी आकाक्षा है कि अब से एशिया की बौद्धिक प्रतिभा यूरोपीय सास्कृतिक विचारधारा के प्रचार और प्रदर्शन के कार्यों मे अपना अधिकाधिक योग देती रहे। मेरा यह स्वप्न है कि एक दिन इन दो भूभागो की आत्माएँ एक रूप में मिल जाँयगी। इस ओर आपके प्रयत्न सबसे अधिक सराहनीय रहे हैं। अन्त मे मैं आपको यह सूचित कर देना चाहता हूँ कि आपकी कला और ज्ञान के प्रति हम लोग अत्यन्त श्रद्धालु है। मेरा अतरतम सौहार्द स्वीकार करें।

रोम्याँ रोलाँ

पश्चिम के प्रति रवीन्द्रनाथ सब कुछ पश्चिमीय ग्राह्य है, ऐसा दृष्टिकोण नही

रखते थे। उदाहरणार्थ, मार्च १९३१ में श्री एच. जी. वेल्स के साथ रवीन्द्रनाथ ठाकुर की बातचीत का एक अंश देखिये :

वेल्स : पश्चिम के आधिपत्य की कहानी पिछले सौ बरसो से अधिक पुरानी नहीं है। लेपाण्टो की लड़ाई के पहले पश्चिम में तुर्को का ही बोलबाला था। कोलम्बस की इतनी लम्बी यात्रा सिर्फ तुर्कों से बचने के लिए ही हुई थी। एलिजबेथ के जमाने के लेखक और उनके परवर्ती लेखक पूर्व का ऐश्वर्य तथा भौतिक सभ्यता का ऊँचा आदर्श देख कर चकित थे। पश्चिम की शान अभी कल की चीज है।

रवीन्द्रनाथ : उन्नीसवी सदी के भौतिक विज्ञान ने ही कदाचित् पश्चिम मे जातिगत श्रेष्ठता की यह भावना जगाई थी। जब पूरब के देश भी विज्ञान की इस उन्नति को हजम कर लेगे तो बाज़ी लौटेगी और सतुलन ठीक हो जा सकेगा।

वेल्स : आधुनिक विज्ञान वस्तुतः यूरोपियन नहीं है। कुछ आकस्मिक सयोगो ने तथा विशेष परिस्थितियो ने पूर्व के देशो को उन नई खोजो का प्रयोग करने से वंचित रखा, जिन्हे हर मुल्क के मानवता-प्रेमियो ने प्राप्त किया था। एक जमाना था जब इन पूर्वी देशो ने भी अनेक ज्ञान-विज्ञानो की उद्भावना की थी—उन्हे परिणति दी थी, पीछे पच्छिम ने उन्हीं को लेकर अधिक पूर्णता प्राप्त की और नाम किया। आज जापानी, चीनी तथा भारतवासी वैज्ञानिको के नाम वैज्ञानिक क्षेत्र मे क्रमशः अधिकाधिक स्वागत लाभ कर रहे हैं।

रवीन्द्रनाथ : भारतवर्ष बड़ी प्रतिकूल परिस्थिति में रहा है।

वेल्स : जब मैकाले ने भारतवर्ष पर घटिया साहित्य और शिक्षापद्धति का जजाल लादा तो भारतवासियो ने स्वभावतया उसका विरोध किया। कोई इन्सान स्कॉट के काव्य पर ही ज़िन्दा नही रह सकता। आशा करता हूँ कि यह हालत अब बदल रही है। लेकिन इतना विश्वास आपको दिला दूँ कि हम अंग्रेज भी कुछ ख़ास बेहतर अवस्था में नहीं थे। औसत हिन्दुस्तानी से हमारी शिक्षा कम खराब नहीं थी—शायद और भी खराब थी।

रवीन्द्रनाथ : हमारी कठिनाई यह है कि पश्चिम की महान् सभ्यता के साथ हमारा सम्बन्ध सहज-स्वाभाविक नही है। जापान ने पश्चिमी संस्कृति की आत्मा को कहीं अधिक आत्मसात् किया क्योंकि उसे अपने प्रयोजन के अनुसार ग्रहण करने न-करने की स्वाधीनता थी।

वेल्स : बड़े अफसोस की बात होगी अगर पारस्परिक परिचय के इतने सुन्दर सुयोग इसी तरह व्यर्थ चले जायँगे।

रवीन्द्रनाथ : और तिसपर हमारी शिक्षा के नाना प्रवाह आज सूखी नदियो के समान रसहीन हो चुके हैं, क्योंकि उनमे जिन साधनो की धारा बहा करती थी उन्हें आज अन्य दिशाओ की ओर बहा दिया जाता है।

वेल्स : मै भी पराधीन जाति का ही एक सदस्य हूँ। मुझ पर भी तरह-तरह के टैक्स लगे हुए हैं। मुझे भी बराबर चेक भेजने होते है : यह फौजी उडाको के लिए, यह सरकार के परराष्ट्र विभाग के लिए! सो ऐसा समझिये कि हम भी उन्हीं दोषो के शिकार है। भारत में सरकारी अफसरो की परम्परा जरूर यहाँ से कहीं अधिक अस्वाभाविक है और कही अधिक समय से चली आ रही है। अंग्रेजों के पूर्ववर्ती मुगल सम्राट् भी शायद इतने ही स्वेच्छाचारी रहे होगे।

रवीन्द्रनाथ : और फिर भी दोनो मे सुस्पष्ट फर्क है। मुगल सरकार मे किसी हद तक वैज्ञानिक योग्यता और सुव्यवस्था का शायद अभाव था। वे लोग चाहते थे धन; इसलिए जब तक वैभव-विलास मे रहने मे उन्हे बाधा नहीं पड़ती थी, वे भी गाँवो के प्रगतिशील समाज के जीवन में हस्तक्षेप नही करते थे। दरबारी शासको के बावजूद भी जातीय जीवन की धारा सहज भाव से चली आ रही थी। मुसलमान शासको ने कोई शर्तें नहीं घोषित को और न भारतीय शिक्षादाताओ या ग्रामवासियो को जबर्दस्ती अपने आदर्श पर चलने के लिए पीड़ित किया। लेकिन आज तो देश की प्राचीन शिक्षा-पद्धति के सभी संघटन पूर्णतया मिट गये हैं और इस क्षेत्र मे हमारी अपनी चेष्टाओ को सरकारी स्वीकृति का मुहताज होना पड़ रहा है।

वेल्स : सरकारी 'स्वीकृति' का अर्थ ही होता है : सुशिक्षा को अन्तिम नमस्कार कर लेना।

रवीन्द्रनाथ : मुझसे अक्सर पूछा जाता है : तो आपकी अपनी योजनाएँ क्या हैं? मैं जवाब देता हूँ : मेरी कोई योजना नहीं। अन्य देशो के समान हमारा देश भी अपना विधान स्वयं खोज निकालेगा, प्रयोगो की स्थिति मे से गुजर कर वह क्रमशः जिस स्थिति को पहुँचेगा, बहुत मुमकिन है कि हमारी योजनाओ से वह स्थिति बिल्कुल ही भिन्न हो।

* * *

बहुत लोगो का आरोप है कि रवीन्द्रनाथ केवल अतीन्द्रिय स्वप्नसृष्टि मे ही विचरण करते थे और उनमे सामयिक प्रश्नो के प्रति कोई हल नहीं जागता था। यह बात ग़लत है। कवि-गुरु अपने तौर पर उन समस्याओं पर सोचते थे,

जसे कि सन् १९२३ मे श्री कालिदास नाग को लिखे काव्यमय पत्र के अंश से स्पष्ट होगा कि हिंदू-मुसलमान के विषय मे रवीन्द्रनाथ ठाकुर क्या सोचते थे :

"घनघोर बादल उतर आए हैं। इसी से मेरा मन आज मानव-इतिहास की शताब्दियो द्वारा चिह्नित घेरे को छोड़कर बाहर भाग गया है। आज मेरी प्रत्येक शिरा मे आकाश की रगभूमि पर अभिनीत आँधी-पानी की उन्मत्तता का युग-युगान्तरवाहित स्मृतिस्पन्दन मेघमल्लार को मन्द्र मोड़ पर खींच रहा है। मेरी कर्त्तव्य-बुद्धि जाने-कहाँ बह गई है; इस समय मैं सामने के पक्तिबद्ध शाल-ताल, महुआ और सप्तपर्णी वृक्षो के दल में जा मिला हूँ। प्राणों के राज्य में उनका अपना हिस्सा बुनियादी हिस्सा है। वे लोग न जाने किस आदिकाल की धूपछाया और पानी-बादल का उत्तराधिकारसूत्र से भरपूर उपभोग किये जा रहे हैं। मनुष्य की तरह वे लोग आधुनिक नही है, इसीलिए चिरनवीन हैं। मानवजाति में केवल कवि लोग ही सभ्यता के अपव्यय के प्रभाव से आदिकाल के उत्तराधिकार को बिल्कुल बेबाक उड़ा नही बैठे है। इसीलिए तरु और लताओ का आभिजात्य कवियो को केवलमात्र 'मनुष्य' कहकर उनकी अवहेलना नही करता। यही कारण है कि हर साल जब बरसात आती है तो मुझे इस तरह चचल कर देती है, सब तरह की जिम्मेवारियो के बन्धनो के प्रति उदासीन बनाकर प्राणों के आमोदमन्दिर में बुलाया करती है। हमारे मर्म में जिस शिशु का निवास है—जो हमारा सबसे प्राचीन पूर्वज है—वही हमारी कर्मशाला पर कब्जा कर बैठता है। इसीसे बारिश शुरू होते ही मैंने हवा-पानी और झाड़-पेड के साथ होड़ लगाई है, कामकाज को बाला-ए-ताक रखकर गीत बनाना शुरू कर दिया है। सो इस तरह आदमियों में मैं सबसे कम आदमी रह गया हूँ ; मेरा मन घास की तरह हिल रहा है—पत्तों की तरह झिलमिला रहा है। कालिदास ने शायद इसी प्रसंग में कहा था : 'मेघा-लोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्तिचेतः'। अन्यथावृत्ति का अर्थ है मानववृत्ति के दायरे के बाहर की वृत्ति।

जिस समय वातायन पर बैठकर मैंने गीत शुरू किया :

आज नवीन मेघेर सुर लेगेछे
आमार मने;
आमार भावना यत उतल होलो
आकारणे।

अर्थात्, आज मेरे मन को नवीन मेघ का सुर छू गया है ;आज मेरी सारी चिंता अकारण चंचल हो उठी है

—ठीक उसी समय सागर-पार से प्रश्न आया : भारतवर्ष की हिन्दू-मुस्लिम समस्या का समाधान क्या है ? सहसा स्मरण हुआ कि मानव-ससार मे मेरा भी कुछ काम है—केवल मेघमल्लार के सुर मे मेघ के आह्वान का प्रत्युत्तर देने से काम नही चलेगा, मानव-इतिहास में जो मेघमन्द्र प्रश्नावली सञ्चित है, उसका भी जवाब सोचना होगा। अस्तु : अम्बुवाची की मजलिस छोडकर बाहर निकल आना पड़ा।

एक समय भारतवर्ष मे ग्रीक, पारसीक, शक इत्यादि नाना जातियो का अबाध समागम और सम्मिलन हुआ था। किन्तु याद रखना, यह बात 'हिन्दू'-युग से पहले की है। जिसे हम 'हिन्दू'-युग कहते हैं, वह है प्रतिक्रिया का युग। इस युग मे बडी सचेष्टता के साथ ब्राह्मण्य-धर्म की इमारत दृढ़तापूर्वक चुनी गई थी। दुर्लंध्य आचार की चहारदीवारी खडी करके उसे दुश्प्रवेश्य बना डाला गया था। यह बात उस समय भुला दी गई थी कि किसी प्राणवान् वस्तु के अग-प्रत्यग को कसकर जकड देना उसकी हिफ़ाजत करना नही—वह है उसे मार डालना। खैर, मुद्दे की बात यह है कि किसी विशेष समय मे, बुद्धपरवर्ती युग मे, राजपूत इत्यादि विदेशी जातियो को अपने दल मे खींचकर, विशेष अध्यवसाय के द्वारा—अपने को परकीय संस्रव और प्रभाव से सम्पूर्णतया सुरक्षित बनाये रखने के लिए ही—भारतवासियो ने हिन्दूधर्म को एक प्रकार के विशाल परिवेष्टन का रूप दे डाला था ; उसकी प्रकृति मे ही निषेध और प्रत्याख्यान प्रधान है। मिलन के हर क्षेत्र मे इस तरह सुनिपुण चतुराई द्वारा रची हुई बाधा का उदाहरण जगत् मे शायद मिल सके। यह बाधा सिर्फ हिन्दू-मुसलमानो के बीच ही हो, सो नही। हमारी-तुम्हारी तरह आचार की स्वाधीनता के रक्षक और हामी व्यक्ति भी, सच पूछो, तो पृथक् है—बाधाग्रस्त है। यह तो हुई समस्या, मगर इसका समाधान कहाँ से आएगा ? मन के परिवर्तन से—युग के परिवर्तन से। जिस तरह यूरोप सत्य की साधना और ज्ञान की व्याप्ति के द्वारा मध्ययुग के भीतर से गुजरकर आधुनिक युग तक आ पहुँचा है, उसी तरह हिन्दुओ-मुसलमानो को भी अपने-अपने सकीर्ण दायरो से निकलकर बाहर की ओर यात्रा करनी होगी। धर्म को क़ब्र की तरह चुनकर, समूची जाति को हमेशा के लिए भूतकाल के भीतर दफना देने से उन्नति के पथ पर चलना असभव हो जायगा; उस रास्ते कभी कोई किसी के साथ मिल नही सकेगा। हमारी मानसिक प्रकृति के भीतर जो अवरोध क्रमशः दृढ हो गया है, उसे सपूर्णतया बिना मिटाए हम किसी प्रकार की कोई स्वाधीनता उपलब्ध न कर सकेगे। शिक्षा के द्वारा—साधना के द्वारा—हमें यही बुनियादी परिवर्तन घटित करना

होगा, 'पंखो की अपेक्षा पिंजरा बड़ा है'—इस संस्कार को हमें उलट ही देना होगा। तभी हमारा कल्याण सभव है। हिन्दू-मुस्लिम-मिलन युगपरिवर्तन की राह देख रहा है। मगर इस बात का सुनकर डरने की कोई ज़रूरत नहीं, क्योकि अन्य देशो मे मनुष्य ने साधना के द्वारा युगपरिवर्तन बखूबी घटित किया है—अडे-इल्ली की अवस्था से पंख पसारकर उडने की अवस्था को चरितार्थ किया है। हम लोग भी अपने मानसिक अवरोध को काटकर बाहर निकल आवेंगे। अगर नही आये तो 'नान्यः पन्था विद्यते अयनाय'।"

रामानद चटर्जी ने उन्हे श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए लिखा था .

"केवल गीतकार के नाते उन्होने स्वदेशी-आन्दोलन में भाग नही लिया। उनके सामाजिक-राजनीतिक भाषण और जो वार्षिक मेले उन्होने मनाये, वे सब इसी राष्ट्र-सेवा के अग है। उन्होने देश के हस्तोद्योगो के पुनरुज्जीवन मे बड़ा भाग लिया, शिक्षा को भारतीय और मानवतावादी बनाने में अपना पूरा योग दिया। ग्रामोद्धार और ग्राम-सजीवन के उनके कार्यों की स्तुति तो सरकारी रिपोर्टो तक मे है।

"उनकी रचनात्मक असहयोग अथवा रचनात्मक आत्म-निर्भरता की योजना तथा ग्राम-पुनरुद्धार की योजना तीस वर्ष पूर्व की उनकी कृतियों और भाषणों मे व्यक्त हुई है। २२ जुलाई १६०४ को स्वदेशी समाज में उनके दिये हुए भाषण मे वह है। उसी प्रकार से पबना में १६०८ में बंगीय प्रान्तीय सम्मेलन मे उनके सभापति पद से दिये गये भाषण में वह व्यक्त है। लगान न चुकाने के आन्दोलन का समर्थन 'प्रायश्चित्त' और 'परित्राण' नाम के नाटको में मिलता है। उन नाटकों का नायक धनजय वैरागी सहर्ष कारावास का कष्ट झेलता है। यह दोनों नाटक उनकी एक पूर्व-कृति 'बऊ-ठाकुरानीर हाट' (प्रकाशन १८८४) के नाट्य-रूपातर हैं। इनमे से प्रथम 'प्रायश्चित्त' मई १६०६ में प्रकाशित हुआ। उसमें के सवाद और गीतों के (रामानन्दजी के किये हुए) अग्रेजी अनुवाद उदाहरण के तौर पर नीचे दे रहा हूँ।

पहले उदाहरण मे धनजय बैरागी और माधवपुर के कुछ किसान राजा के पास जाने से हिचकिचाते हैं। यहाॅ सामतवाद से रवीन्द्र की मानसिक-मुक्ति का उत्तम उदाहरण है :

(Dhananjaya Bairagi, a Sannyasi, and a number of the villagers of Madhabpur, going to the King)

Third villager—What shall we say, Father, to the King?

Dhananjaya.—We shall say, we won't pay tax.

Third villager.—If he asks, why won't you ?

Dhananjaya.—We will say, if we pay you money starving our children and making them cry, our Lord will feel pain. The food which sustains life is the sacred offering dedicated to the Lord; for he is the Lord of life. When more than that food—a surplus, remains in our houses, we pay that to you (the King) as tax, but we can't pay you tax deceiving and depriving the Lord.

Fourth villager.—Father, the King will not listen.

Dhananjaya.—Still, he must be made to hear Is he so unfortunate because he has become King that the Lord will not allow him to hear the truth ? We will force him to hear

Fifth villager.—Worshipful Father, he (the King) will win, for he has more power than we.

Dhananjaya—Away with you, you monkeys ! Is this a sample of your intelligence ? Do you think the defeated have no power ? Their power stretches up to heaven, do you know ?

Sixth villager.—But, Father, we were far from the King, we could have saved ourselves by concealment,—we shall now be at the very door of the King There will be no way of escape left if there be trouble.

Dhananjaya.—Look here, Panchkari, leaving things unsettled in this way by shelving them, never bears good fruit. Let whatever may happen happen. otherwise the finale is never reached. There is peace when the extremity is reached

और एक उदाहरण धनंजय संन्यासी और राजा प्रतापादित्य के सवाद से लीजिये, जिसमें कर न चुकने की बात है :

Pratapaditya.—Look here, *Bairagi*, you can't deceive me by this sort of (feigned) madness of yours. Let us come to business. The people of Madhabpur have not paid their taxes for two years. Say, will you pay ?

Dhananjaya—No, Maharaj, we will not.

Pratapaditya—Will not ? Such insolence !

Dhananjaya.—We can't pay you what is not yours.

Pratapaditya.—Not mine!

Dhananjaya.—The food that appeases our hunger is not yours. This food is His Who has given us life, how can we give it to you?

Pratapaditya.—So it is you who have told my subjects not to pay taxes?

Dhananjaya.—Yes, Maharaj, it is I who have done it. They are fools, they have no sense They want to part with all they have for fear of the tax-gatherer It is I who tell them, "Stop, stop, don't you do such a thing Give up your life only to Him Who has given you life."

इन उदाहरणो से रवीन्द्रनाथ की कृषको के प्रति सहानुभूति व्यक्त होती है। उनके स्वदेश-प्रेम के अन्य कई उदाहरण उनके उपन्यासो में बिखरे पड़े हैं। काजी नजरुल इस्लाम को रवीन्द्रनाथ ने ही विप्लवी-कवि की उपाधि दी थी।

उसी प्रकार से उनकी राष्ट्रीय भावना का सबसे बडा उदाहरण उनकी भारत-तीर्थ नाम की प्रसिद्ध कविता है, जिसके कुछ अश और अनुवाद उद्धृत करने का मोह मैं संवरण नही कर सकता :

हे मोर चित्त, पुण्य तीर्थे जागो रे धीरे,
एइ भारतेर महा-मानवेर सागर तीरे।
हेथाय दाँडाये दु-बाहु बाडाये नमि नर-देवतारे,
उदार छन्दे परमानन्दे वन्दन करि ताँरे।
ध्यान-गम्भीर एइ ये भूधर, नदी जपमाला-धृत प्रान्तर,
हेथाय नित्य हेरो पवित्र धरित्रीरे।
एइ भारतेर महा-मानवेर सागर-तीरे॥
एसो हे आर्य, एसो अनार्य, हिन्दु मुसलमान,
एसो एसो आज तुमि इंराज, एसो एसो खृष्टान।
एसो ब्राह्मण, शुचि करि, मन धरो हात सबाकार,
एसो हे पतित, होक अपनीत सब अपमानभार।
मार अभिषेके एसो एसो त्वरा मंगलघट हयनि ये भरा,
सबार परशे पवित्र-करा तीर्थनीरे।
आजि भारतेर महा-मानवेर सागर-तीरे॥'

अर्थ : हे मेरे चित्त, जागो! इस पुण्य तीर्थ में—इस भारतवर्ष के महामानव-समुद्र के तट पर—धीरे भाव से जागो। यहाँ खड़े होकर हम दोनों हाथ फैलाकर

मनुष्य रूपी देवता की बंदना करते हैं, उदार छंदों से, परम-आनन्द सहित हम अपनी प्रणति उनको निवेदन करते है। यह जो ध्यान-गम्भीर पर्वत है, नदी की जपमाला धारण करनेवाला विशाल मैदान है—यहाँ, इस भारतवर्ष के महा-मानव-समुद्र के तट पर—तुम नित्य पवित्र धरती को देखते रहो।

हे आर्य आओ, हे अनार्य आओ, हे हिन्दू और मुसलमान, आओ। अजी अंग्रेज, आज तुम भी आओ, हे ख्रीष्ट धर्म के मानने वाले, आओ! हे ब्राह्मण अपना मन पवित्र करके आओ और सबका हाथ पकडो। अजी ओ पतित कहे जाने वाले दलित, तुम भी आओ, आज तुम्हारा समस्त अपमान दूर होवे। आज माता का अभिषेक है, आओ, जल्दी करो, अभी भी सबके स्पर्श से पवित्र किये हुए तीर्थ-वारि से मंगल-घट नहीं भरा जा सका है—इस भारतवर्ष के महामानव-समुद्र के तट पर।

मराठी के पाँच कवि

तांबे
चन्द्रशेखर
बी
माधव ज्यूलियन्
यशवंत

: २० :

मराठी के पाँच कवि

दोआबे के उर्वर प्रान्त को महाराष्ट्र की रूक्ष कष्टप्रियता की कल्पना कदाचित् ही होगी। जीवन की, कटु-कठोर जीवन-कलह की प्रत्यक्ष चेतना जैसे महाराष्ट्र-भाषा और मराठी-साहित्य में सदैव एक विधायक शक्ति के रूपमें जागरित रही है, हिन्दी के साहित्य को भौगोलिक पारतन्त्र्य की चेतना के साथ सर्वव्यापी जीवन की दुरवस्था का भान उतने जोरो से नहीं हो पाया। इसका कारण शायद यह भी हो कि महाराष्ट्र सत्ताधारी शासक रह चुका था ; पर हिन्दीभाषी स्वयम् शासन-सूत्रधार कभी न बन कर इस्लामी राज्यकाल के शासित रहे। इस्लामी प्रभाव के कारण हो या और किन्हीं कारणों से हिन्दी-साहित्य और हिंदी-कविता क्रमशः जनता-जीवन से विमुख, सम्बन्ध-रहित बनते चली; सामन्त-संस्कृति की विलास-प्रियता और इस्लामी काव्य की कल्पनाजीवी रीतिप्रधानता हिन्दी में अनजाने घर कर गई; पर इन सब प्रभावों के विरोध में आंदोलन-सा लेकर चल पड़ा हुआ महाराष्ट्र सजीव, आघात-उद्यत, वास्तव-सलग्न और जीवन की अपेक्षाओं का हमेशा ही ध्यान रखनेवाला रहा। मनोभूमि के इसी भेद से मराठी और हिन्दी की कविता का आन्तरिक अन्तर पहचाना जा सकता है।

विकास-क्रम की दृष्टि से जहाँ हिन्दी की 'कविताई' बाह्यालम्बी, वारुना-वाहिनी, मात्र काया की कविता हो गई थी, उसने बीसवीं सदी के मुख दर्शन ही से रीति-प्रणाली से जबर्दस्त पलटा खाया और आज लोग बड़ी आसानी से कविता में भी नई पुरानी का फर्क देखने, जानने लगे। हिन्दी की नई कविता, रीति-कविता के

रियलिज्म से ऊबकर मानो प्रतिक्रिया रूप मे रोमाटिक (कल्पनाश्रित) होते चली है। इसके बिल्कुल उलटे पेशवाओ के उन्नति-काल से अवनति-काल तक जो लावनियाँ रची, गाई गई थी, वे अखिल जनता के कुछ सदभिरुचि-सम्पन्न जीवो को छोड सभी की लोक-प्रिय वस्तु, अति उद्दाम-प्रणय के श्लीलता-शून्य गान जो रुके तो मराठी मे हिन्दी जैसी अतीन्द्रिय अनुभूति, अरूप और असीम का ऐसा जादू न चल सका। कारण भी था, महाराष्ट्र अपने बुद्धि-प्रधान व्यक्तित्व को सदैव बगाल की भाव-प्रधानता से अलग और निराला रखते आया है, क्या चित्र-कला के क्षेत्र मे और क्या साहित्य के भी, पर हिंदी-भाषी प्रान्तो को रविबाबू तो बहुत निकट के वरद महर्षि मानो। और कलकत्ता जब तक राजधानी रही, तब तक बंगालियो ने हिन्दीवालो से कुछ न सीखा हो तो भी हिन्दी के साहित्य का मस्तिष्क अनूदित और अप्रत्यक्ष छायाओ से जैसे रुग्ण हो गया। हिन्दी की आज की कविता ने बोलपुर से बही बहन-बँगला को ऐसी ही अप्रत्यक्ष 'मलय-बयार' माना। हम यह नही कहते कि यह प्रभाव इष्ट है या अनिष्ट, हम तो केवल प्रभाव के अस्तित्व की चेतना मात्र देना चाहते है। हाँ, तो मराठी मे यह रहस्यवाद का अलौकिक प्यार न जग सका , काव्य जड़-जीवन से आबद्ध भौतिक मात्र रहा। ब्रजभाषा और खडीबोली जैसा कोई फर्क मराठी में न होने पर भी पुरानी और नई पद्य-रचना-पद्धति मे अवश्य बडा भेद है। हिन्दी कविता व्रज के बिन्दु से शुरू होकर आज अखिल भारतीय-राष्ट्र की माँग का बोझ सँभालने वाली सागरिका बनने चली है , वैसा सौभाग्य या दायित्व मराठी पर कभी न होने पर भी वह अपने प्रान्त की माँग पूरी करने को सदा कटिबद्ध रही है। हिन्दी पर जिस प्रकार से बँगला का, वैसे ही मराठी पर अंग्रेजी कविता का न्यूनाधिक बिम्ब पडा है। हिन्दी कविता के इतिहास-ज्ञाता जानते होगे कि महावीरप्रसाद द्विवेदी-काल की इतिवृत्तात्मक कविता के द्विवेदीजी आचार्य थे। ध्यान मे रहे, यह दुर्गुण उनके संस्कृत और मराठी के अध्ययन का सीधा परिणाम था। मराठी मे यथासम्भव तत्सम शब्द प्रयोग की रुचिरीति रही है, उसकी भाषा और उसके काव्य-विषय अति प्रान्ताभिमानी रहे है। जो हो, इन सबका विवेचन एक साथ और साधारण रूप से न करके, आज की मराठी कविता के पाँच सर्वमान्य जीवित कवि चुनकर उन पर एक-एक कर विवेचना करना युक्त होगा। वे ये कवि हैं :

(१) ताबे (२) चन्द्रशेखर (३) बी (४) माधव ज्यूलियन् (५) यशवन्त।

श्री भास्कर रामचन्द्र ताम्बे, ग्वालियर के निवासी, (अब) करीब-करीब वृद्ध, जिनकी साठ वर्ष की जन्मतिथि समारोह के साथ मराठी-साहित्य-संसार में मनाई

गई, सर्वमान्य, प्रथम श्रेणी के कवि हैं। कवि के साथ ही वे एक उत्कृष्ट सगीत-ज्ञाता भी हैं। उनकी कविता उनके जीवन के छाया-प्रकाश के अस्फुट-उत्कट रेखा-चित्र हैं। उन्होंने प्राय' गीत ही लिखे है, बचपन में ईश-स्तुति के; तरुणाई मे मधुर प्रणय के, प्रौढावस्था में रहस्यवादी भावुकता के साथ आर्त्त-जीवन की चीख के। अपने 'स्व' के विदु मे सम्पूर्ण विश्व की कसक-मुसुक के आत्म-दर्शन की क्षमता जिन थोडे से अंगुलि पर गिने जानेवाले व्यक्तित्वो मे होती है, उनमें से एक भास्करराव हैं। वे महाराष्ट्र के लिए उतने ही प्रिय हैं, जितने गुजराती वालों को नान्हाराम दलपतराम या कि बॅगला को रवि ठाकुर। उन्होंने ऐसा विशेष लिखा नहीं है, अभी तक उनके गीतो के केवल दो भाग छोटे-छोटे पुस्तकाकार प्रकाशित हुए है; पर 'ताम्बे की कविता' का वह दूसरा भाग मराठी साहित्य का एक अमर अश है। भाव-कोमल, गीत-मधुर, सरल-सुन्दर ऐसी उनकी गीत-निर्झरणी इतनी मन्द-मन्थर, गम्भीर-नर्त्तनशीला गति से महाराष्ट्र के पार्वत्य-प्रदेश मे, प्रतिध्वनि गुञ्जाती, जीवन डालती बहती है कि रसिक मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता। वे प्रेम और मरण, जीवन की दो मीठी भूलों के चिरन्तन गायक हैं। उनकी कविता की बानगी के रूप एक उनकी नितात सुन्दर रचना 'मरणात खरोखर जग जगतें' 'हस' मे प्रकाशित हो चुकी है और यद्यपि इस छोटे लेख मे विस्तार-भय से और उद्धरण नहीं दिये जा सकते, तो भी तीन-चार कविताओं की यह प्रथम-पक्तियाँ, गीतो के ध्रुपद (Burden) दिये बिना जी नहीं मानता :

> प्रीति ना वसे कधींहि उंच त्या गडावरी !
> उतर-उतर ! ये प्रीति हवि तरी,
> रुचति खालच्याच तिला मोकलया, निखया दरी !

अर्थात् :
> प्रीति न बसती कभी किले पर ऊँचे
> चाहिए प्रीति हो तो आ उतरो नीचे
> भा रही उसे तो खुली-खुली ये उपत्यकाएँ नीली !

> संसार-सतारीवर तारा।
> तूं मीहि मदन वाजविणारा
> मधुर गुलाबी राग थरथरे !
> अकाल ये जणु उषा मद भरे !
> वायू निज चांचल्या विसरे !
> ओसही विसरला निजकारा !

अर्थात् :

संसार-बीन के तार दंग
मै तुम केवल, वादक अनंग।
सिहरा मधु-आरुण राग-तीर
मदभर ऊषा असमय अधीर
भूला निज चंचलता समीर
भूलते प्राण बंधन असंग।

ऐसी मस्ती उनके सभी गीतो मे चिर-स्पदित रहती है और उम्र के छाया-काल तक आज आ पहुँचने पर वह अक्षुण्ण है। हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी कविता का आपका अध्ययन बेजोड़ है और गद्य के रूप मे एक बडा निबंध 'कला और नीति' और कितने ही काव्य-पुस्तिकाओ की भूमिकाएँ सरस और हृदय-हारी हुआ करती हैं। इनकी लोकप्रियता के प्रमाण तो उनके शिशु-गीत, मीठी लोरियाँ और रेकार्ड में गाये जाने वाला उनका 'डोले हे झुलुमी गडे' वाला गीत पर्याप्त है। हिन्दी मे तुलना करते हुए उनका सानी ऐसा एक व्यक्ति न मिलेगा, तो भी पन्त की गीति-प्रधान सुकुमार भावना मे प्रसाद की भव्य-गम्भीर कल्पना का सम्मिश्रण कर ताम्बे के गीत तोले जा सकेंगे। वे मराठी के रविबाबू हैं।

दूसरे है चन्द्रशेखर। आप बडौदा के राजकवि, वृद्ध, सरल, मधुभाषी काव्याभ्यासी हैं। पुरानी परिपाटी के वृत्तों मे आपने वह मधुरीला चमत्कार कर दिखाया, जो शायद कोई और कभी न दिखा सकता। ताम्बे नव्य-भावना-पोषक, कला को रूढ़ नीति के अमाननीय है कहने वाले कलाकार हैं, तो चन्द्रशेखर की कविता अपनी सीमाओ, संकोचशीला मर्यादाओ मे ही अति चारु हो उठती है। वैसे तो चन्द्रशेखर ने बहुत अधिक लिखा है, बडे-बड़े बन्द और कसीदे रचे हैं, पर उनका एक संग्रह चार-पाँच साल पहले 'चन्द्रिका' नाम से छपा है। उसमे उनकी उत्कृष्ट रचनाएँ समाविष्ट हैं। चन्द्रशेखर ने 'काय हो चमत्कार' (ये क्या चमत्कार ?) नामक एक छोटा-सा, बहुत ही सुन्दर, खण्ड-काव्य लिखा है, उसमे ग्रामीण पात्रों के मुँह से ग्रामीण भाषा ही बुलवाई है, जिससे उसकी मधुरता और ममतामयी हो जाती है। 'मुगी' नामक एक काव्य-संग्रह, अधुनाधुन कवियो ने रचे हुए ग्राम-गीतों—(Pastoral Lyrics) अर्थात ग्रामीण विषयो पर बड़ी आर्द्र सहृदयता से लिखे हुए गीतों का खासा अच्छा संचय है, उसमें चन्द्रशेखर ने एक और पद्य-कथा मात्र ग्राम भाषा में दी है। वह भी प्रकृति-वर्णन, सुघर रचना-शैली और मधुर शब्द-चयन के लिहाज से

अति रुचिकर है। चन्द्रशेखर की एक कविता है कवितारती, वे इस अकेली कविता को लिख कर ही साहित्य में अमरता प्राप्त कर लेते, ऐसा कतिपय आलोचकों का कहना है। उसमे कविता-देवी के प्रति कवि ने जी खोलकर स्तुति, अनुनय, उसके लिए की गई दीवानगी का बेजोड़ नक्शा खींचा है। उसमें न केवल कविता-सुन्दरी का अति सजीव मानवीकरण (Personification) ही हुआ है, वरन् वह ग्रे के 'ओड ऑन दी प्रोग्रेस आफ पोएसी' जैसी ही संक्षेप में काव्य-परिपाटी के इतिहास की रेखा-सी खींचने के कारण भी बहुमूल्य है। उसमें के दो छन्द :

प्रसाद घडतां तुझा, सहज नाभि-मूलांतुनी।
अनन्य लहरी उठे, तनुस टाकिते व्यापुनी॥
तिच्या प्रसरणासवें सकल देह हेलावतो।
क्षणैक चपलौघ कीं जणु शिरांतुनी वाहतो॥
मुखामधुनि एकदा गदगदा तदा ये ध्वनी।
स्वयें उचमलोनि ये हृदय, नीर ये लोचनीं॥
न काव्य-विषयाविणा इतर भानही राहते।
रसात्मक पदावली मग मनोहरा वाहते॥

अर्थात्—'तुम्हारा प्रसाद होते ही, सहज, नाभि-मूल में से अनन्य लहरियाँ उठती हैं। वे सारे तन को व्याप्त कर डालती हैं। उन लहरियो के प्रसरण के साथ ही सारी देह जैसे हिलोरें लेने लगता है और माथे मे क्षणभर जैसे चपला चमक जाती है।

तब मुँह मे से गद्‌गद् होकर शब्द बाहर निकल पड़ते हैं। आप-से-आप हृदय उमड आता है। आँखें भर आती हैं। तब कविता के विषय के बिना दूसरी किसी बात का मान नहीं रहता और तब मनोहर रसात्मक पदावली बहने लगती है।

आपकी तुलना हिन्दी में जगन्नाथदास 'रत्नाकर' के साथ ठीक-ठीक हो सकती है। यद्यपि 'रत्नाकर' अब जीवित नहीं हैं, तो भी उनकी कविता की धाक मानने वाले लोग अभी बहुत हैं। उसी प्रकार चन्द्रशेखर को भी लोग बहुत मानते हैं। साहित्य-सम्मेलन के कविता-विभाग के वे अध्यक्ष बन चुके हैं। मुन्शी अजमेरी जैसे वे राजकवि होने के कारण जो भी थोड़ी-बहुत कविताई 'आर्डर पर सप्लाई' करना पड़ती है; तो भी उन्होंने कविता रीति से यह भी कहा है, कि 'मैं गुलाम बना, तथा बन्धन में फँसा तो भी तुम्हारे ही खातिर।'

बी (Bee) तखल्लुस से मराठी में लिखने वाले कवि एक सच्ची प्रतिभा हैं। आजीवन उन्होंने शायद केवल तीस या चालीस से ऊपर कविताएँ नहीं लिखीं; पर कीर्ति से वे ऐसे बचते रहे और लोकादर से इस कदर घबराते रहे कि गडकरी-केशवसुत (मराठी के पुराने सर्वश्रेष्ठ स्वर्गीय कवि) के समय के ये महानुभाव ऐसे छुपे-छुपे से रह कर आखिर १६३४ में उनकी कविताओं का एक संग्रह बड़ी कठिनाई से बन कर छप पाया। संग्रह का नाम है 'फुलांची ओंजल' (फूलों की अञ्जलि)। जब उस संग्रह के लिए आपका चित्र माँगा गया, तब खानदेश के इस एकांतवासी; परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से पुरानी कविता में नवयुग के निर्माण-कर्ता कलाकार ने कविता की दो पंक्तियाँ लिख कर भेज दीं :

कां आग्रह ? रसिका ! नांव सांग मज म्हणसी ।
नांवांत मोहिनी भासो सामान्यांसी ।

ये पंक्तियाँ बी ने बीस बरस पहले जब साहित्य-संसार उनके 'वेडगाणे' (पगले का गीत) पर सचमुच पगला हो उठा था और उनका असली नाम क्या है, इसका पता लगाने के लिये कुछ पत्र छपे थे, उनके उत्तर में लिखी थीं। उनका अर्थ है—'रे रसिक, नाम कह, नाम बता, यह आग्रह क्यों कर? नाम की मोहिनी तो साधारण (सामान्य श्रेणी के लोगों से तू तो अधिक रस-ग्राही है) लोगों को भासित होती है।' बी की कविता पर उस संग्रह के प्रस्तावना लेखक ने एक वाक्य लिखा है कि 'सरस रचना-कौशल्य, रमणीय-कल्पना-विलास, असामान्य भाषा प्रभुत्व, अभिनव विचार-दिग्दर्शन आणि तेजस्वी प्रतिभाशक्ति', इन गुणों से बहुत थोड़े समय में और थोड़ा-सा लिखने पर भी साहित्य में उनको अचल स्थान मिल गया है। उनकी कविताएँ दार्शनिक स्नेह-स्पर्श लिये हुए, राष्ट्रीयता की माँग पर चिर-सजग मधुर कल्पनाओं की दीपमाला-सी, पर बरसों की उपेक्षा की तनिक भी परवा न करनेवाली, उस अपने एकाकी निर्जन कोने में स्वयं-संतुष्ट कलाकार के साफल्य का सर्वोत्तम शिखर पा लेती हैं। उनमें चुभ जाने की विलक्षण क्षमता है, उनमें संगीत के और स्त्री-सुलभ गलेबाजी से बढ़कर वह सरलाई से भरा आकर्षण है, जो चित्रकलाश्रित कविता में होता है। व्यक्तिशः मैं, यदि कलाकार की कृतियों को उसके जीवन के पैमाने से नापना कुछ मानी रखते हों, तो उन्हें मराठी का सर्व-श्रेष्ठ कलाकार कवि मानता हूँ। मैं इस लेख में ताम्बे, बी और माधव ज्यूलियन्—इन तीन का ही जिक्र करनेवाला था; पर साहित्य-परिचय केवल वैयक्तिक होकर नहीं रह सकता, इसी से यशवन्त और चन्द्रशेखर को भी मैं

इसी लेख मे ले आया। बी जो कुछ लिखते हैं सयत, सचित और सवेदना-मय। 'कला केवल स्वयजीवी है, न केवल स्वयंजीवी पर वह विश्व की आदि जननी है, वैसे ही कवि यह प्रकृति का दुलारा, दुनिया की नाराजी के बाद प्रकृति की शान्त गोद मे मुँह छिपाये आशावादी स्वर से विश्व-जागृति के गीत गाने वाला होता है, यह उनकी कविता के सन्देश हैं। भाव-कोमल एक ऐतिहासिक प्रेम-कथा, 'कमला' नाम की, आपने अपने कवि-जीवन की शुरुआत में लिखी थी; पर अब तो उनकी वाणी अतिशय प्रौढ, उनकी अभिव्यक्ति अतिशय मुक्त हो गई है। मराठी-कविता के इतिहास में पुरानी परिपाटी में रहकर भी नवीन रीति से रचना करने का साहस इन्होने ही किया था। अंग्रेजी की कहावत का सहारा लेकर यो भी कहा जा सकता है कि पुरानी बोतलों में उन्होने नया काव्य-मद भर दिया। उनकी रहस्यवादी कविताओ में सर्वश्रेष्ठ 'चम्पा', 'पगली का गीत', 'क्षण भर', 'बुलबुल' आदि हैं, और राष्ट्रीय कविताओ में 'डंका', 'क्रातिकारी', 'भगवा भण्डा' आदि हैं। एक उद्धरण दिये बिना न रहा जा सकेगा :

ही दंगल जेव्हां होते
नाकळेचि कोठुनि की ते
येतात बंडवाले ते
जग हाले; स्वागत बोले
आम्ही त्या दिलजानांचे
साथी-ना मेलेल्यांचे
हे डंके भडती त्यांचे
ऐकोत कान असलेले

अर्थात्—यह द्वन्द्व जब होता है, तब न जाने कहाँ से क्रान्तिकारी आते हैं। जग हिलता है और स्वागत बोलता है।

हम तो उन दिलजानों के साथी हैं—मरे हुओं के नहीं। यह नौबत उन्हीं की बज रही है, जिन्हे कान हो, वे सुने।

काल की सत्ता पर, क्रान्ति के यथार्थ अर्थ पर, स्वातन्त्र्य की सीमाओं पर बी ने बहुत कुछ कहा है, वह कहाँ तक गिनायें। चुपचाप एक कोने में पड़े-पड़े बी की कलम ने वह जादू किया, जिसने समाज के जीवन में एक नई चेतना का आन्दोलन पैदा कर दिया। हिन्दी में तुलना करते हुए 'एक भारतीय आत्मा' से ये बहुत-कुछ मिलते-जुलते हैं, यद्यपि दोनों के प्रेम-दर्शन

मे अन्तर है। साथ ही महादेवी का रहस्य-प्रेम भी बी मे प्रस्फुट है। 'फूलो की अजलि' उनका एक आरम्भबन्ध है, पर लासानी है। वे मराठी के डाक्टर इकबाल हैं।

माधव ज्यूलियन् और भी दिलचस्प व्यक्ति हैं। बी ए. तक आप सस्कृत के विद्यार्थी थे और एम. ए मे किन्ही निजी कारणों से आपने फारसी ले ली और फारसी के उद्‌भट विद्वान् हो गये। (तब) राजाराम कालेज, कोल्हापुर मे वे फारसी के प्रोफेसर थे। रसीले जीव है, जीवन का प्रेम-रमण्यास, उत्कटता के साथ गजलो मे उतारते है। पर साथ ही प्रखर बुद्धि की देन प्रभु ने उन्हे दी है, इससे उनके शृगार-गीत साहित्य की एक सुस्वस्थ सम्पदा बन गये है। उनकी भावुकता उर्दू, फारसी के इश्क के मर्ज से प्रभावित उत्तान (Byronic) और सस्कृत की ललित-अलकृति और कल्पना-विलास से अनुरजित हो मधुर हो गई है। ओज और माधुर्य के इस प्रेम मे काव्य का तीसरा गुण प्रसाद उनसे भूल जाता है, पर इतने सुन्दर पद्य-चित्र खीचने मे वे कुशल है, कि यह सब छोटे-मोटे दोष उनके सामने ढँक जाते है। डाक्टर माधव त्रिबक पटवर्धन जैसा कि उनका पूरा नाम है—मराठी मे न केवल अपनी पद्धति के अकेले कवि के नाते निराले होकर प्रसिद्ध है, पर 'अ' मे ही सब स्वर (जैसे अी अे) लिखने वाले बॅ. सावरकर के साथ इस लिपि का अवलम्ब करने वाले गद्य के, विशेषतया छन्द-शास्त्र और काव्य-समालोचन के आचार्य, आलोचक माने जाते है। पूना मे सात नवीन कवियो की एक छोटी-सी सस्था 'रवि-किरण मण्डल' के नाम से इन्ही के उद्योग का फल है और छोटे-मोटे आज तक वहाँ से, बीस से अधिक कविता-ग्रन्थ छप चुके हैं। आपका दूसरा काव्य था एक कथात्मक समाज-सुधार पर व्यग्य के रूप मे 'सुधारक' खण्ड-काव्य, जो विशेष लोकप्रिय हुआ। उसके पहले वे एक प्रेम-कथा, सम्पूर्णतया यथार्थवादी, 'विरह-तरग' के नाम से प्रकाशित करा चुके थे, जो उनके जीवन की मराठी-साहित्य को एक स्थायी-देन है। उसमें एक विद्यार्थी परजातीय विद्यार्थिनी के स्नेह-पाश मे पडकर विवाह न हो सकने के कारण जो विछोह का दुःख झेलता है, जवानी की जिन्दादिली की जो एक सर्वसाधारण निशानी है, वह बड़ी खूबी के साथ चित्रित किया गया है। उनका असली सुन्दर काव्य-संग्रह तो १६३३ मे निकला, नाम था 'गज़लांजली' अर्थात् 'गजलो की अंजलि।' इस नाम ही मे उनके पांडित्य-प्रधान सस्कृत, फारसी, अर्द्धमिश्रित व्यक्तित्व का निचोड़ आ गया था। इसमे कवि ने अरबी-फारसी के छन्द को मराठी मे प्रचलित करने के

उद्देश्य से एक सौ आठ गजल लिखे। यौवन की उद्दाम भावनाओ के उच्छ्वास-निश्वास प्रतिध्वनित है, उनमे कुछ बडे मार्मिक और भावरम्य हैं। सुन्दर सृष्टि-चित्र, छवि-चित्र, रूपसियो के यथार्थवादी चित्र इतने चुनीन्दा शब्दो में वे खीचकर रख देते है कि अग्रेजो के रियलिस्टिक लिरिक्स उसके सामने फीके लगने लगते है। गजलॉजली पर 'प्रतिभा' के सम्पादक (जनता में 'महात्मा' पट-चित्र के कथा-लेखक के नाते जो अधिक परिचित है) मराठी के निष्पक्ष समालोचक के. नारायण काले ने लिखा था कि यद्यपि कही-कही जान-बूझकर उनकी भावोत्कटता रस-मारक बन जाती है, तो भी शब्दों के साथ अर्थ ध्वनित करने की उनकी अद्वितीय शक्ति के सामने उर्दू, फारसी जैसा एक-ही-एक प्रेम-विषय का बाहुल्य इतना नही अखरता। 'स्वप्नरजन' उनकी सबसे नई काव्य पुस्तिका है, इसमे उनके जीवन-भर की स्फुट-रचनाएं संग्रहित हैं, उसमें सुन्दर शिशुगीत है, दार्शनिक कविताएँ है, प्रौढ रचनाएँ हैं, बाल्यकाल की रचनाएँ है, यौवन के अधूरे उद्गार हैं। वे भी मराठी साहित्य-सम्मेलन की काव्य-परिषद् के प्रमुख बन चुके है और उनके व्याख्यान (वे एक अच्छे वक्ता भी हैं) सदा ही बडे विद्वत्तापूर्ण और गम्भीर रहा करते हैं। यद्यपि नींव बी जैसे लोगों ने डाली, तो भी कविता के नवयुग के स्वरूप निर्माण में प्रमुख शिल्पी माधव ज्यूलियन् हैं। उनकी उपमा हिन्दी मे एकमात्र सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' से दी जा सकती है—केवल निराला का शब्द-प्रेम छोडकर और बातों में, मस्ती में, पाण्डित्य मे, शृंगार लिखने मे वे निरालाजो जैसे ही निराले, नामी और बदनाम जो कह लो, हैं। माधव ज्यूलियन् ने एक 'मै और तुम' लिखा है, वह निराला के 'मैं और तुम' से कुछ कम नही। उनकी कविता के उद्धरण इतने अधिक हो सकते है कि कौन-कौन दिये जाँय? वे मराठी के बायरन और ब्राउनिंग, हाफ़िज और उमर एक साथ हैं।

यशवन्त दिनकर पेंढारकर रविकिरण मडल के दूसरे प्रथितयश सदस्य, यरवदा के बच्चों की जेल (Reformatory school) के मुख्याध्यापक थे। विद्रोही युवक थे, दूसरे विवाह के पूर्व आपने एक खण्ड-काव्य 'जय-मंगला' प्रकाशित किया था। यह एक ऐसी पद्य-कथा थी, जो केवल स्फुट नाट्यात्म गीतो में व्यक्त हो गई थी; पर रीति के चमत्कार (Marvel of technique) के अलावा उसमे जो वस्तु थी, वह राजतरंगिणी के कवि बिल्हण का काश्मीर के राजा की लड़की के साथ काव्य शास्त्राध्यापक के नाते जो प्रेम प्रस्थापित हुआ था, उसपर आधारित एक रोमैंटिक चीज थी। वैसे उनकी

अनेक काव्य पुस्तको मे मुझे 'जयमगला' बडी सुन्दर जान पड़ती है। पर इससे कलेवर मे बडा एक खण्ड-काव्य है 'बन्दी-शाला', जिसमे उनके यरवदा-सुधार-स्कूल के मनोवैज्ञानिक अध्ययन की छाया के साथ समाज की एक मर्म-स्पर्शी समस्या बाल-बन्दियो पर नवीन प्रकाश डाला गया है। उसकी शुरुआत ही मे, शारदा की स्तुति मे कवि कहता है :

दाग लगा हो तो भी मेरा फूल तुझे भा जाये,
उदार-हृदये स्वीकृत मेरी भेंट हो, न मुरझाये।

और उसी मे जगह-जगह पर यही पंक्ति अनेक बार दुहराई जाती है कि 'जीवन यानी एक और है विस्तृत बदीशाला !' वह जयमगला के पहले की कृति थी। इन दो खण्ड-काव्यो को छोड़ 'भाव-लहरी', 'यशवन्ती', 'यशोधन' और 'यशोगन्ध' इनकी स्फुट-कविताओ के ग्रहो के क्रम से नाम हैं। 'भाव-लहरी' उसमे सबसे कोमल है, यशोधन सबसे अधिक लोकप्रिय , यशवन्त ने जैसा कि उनका कविता-क्षेत्र मे नाम है, कुछ ग्राम-गीत (जिन्हे मराठी मे जानपद गीत कहते हैं) भी लिखे हैं और एक-दो तो रिकार्ड मे भी उन्होने गाये हैं। हिन्दी कविता और हिन्दी के साहित्यकार जनता तक कब पहुँच सकेंगे, यह प्रश्न यहाँ उठता है। यशवन्त सरल प्रेमगीतो के, तेज राष्ट्रीय गीतो के अच्छे कवि हैं। सारल्य उनका सबसे बड़ा गुण है, प्रसाद उनके साथ-साथ चलता है। अंग्रेजी नाटको के क्षेत्र मे जो फर्क शॉ और गाल्सवर्दी में हम देखते है, यानी वे ही प्रतिभा की चिनगारियाँ पूरे स्वाभाविक वेग से शॉ में चमकती है ; पर गाल्सवर्दी में जग-जीवन से मार्दव (Smoothen) पा, उनकी तेजी कम हो जाती है, वैसे ही समाज-सुधार और प्रेम की भावना माधव ज्यूलियन् मे जिस कदर फव्वारे-सी हृदय से निकलती है, वही यशवंत में भीनी फुहियो में परिणित हम पाते हैं। यशवन्त की विशेषता उसका सरल भाषा पर अधिकार में निहित है। यशवन्त कभी पाण्डित्य के बोझ को कविता की परी के पंखो पर नही लादना चाहते। यशवंत बर्न्स इतने मोहक जो भी न हो सके हैं तो भी लोक-प्रियता और सभी दृष्टियो से यशवन्त मराठी के 'कलापी' हैं।

यह फिर से न कहना होगा कि जब मैं मराठी के यह पाँच प्रतिनिधि कवि चुनता हूँ, तब और भी कितने ही कविवर छूट रहे हैं या होगे। राजनीति के क्षेत्र में क्रातिकारी कीर्ति के बड़भागी बॅ. सावरकर की पाण्डित्यमयी राष्ट्रीय रचनाएँ, 'अज्ञातवासी' के गीत, 'गिरीश' (प्रो. कानेटकर) के समाज-सुधार पूर्ण गीत-पद्धति की सुन्दर कविता, भ. श्री. पंडित, 'निशिगध', आ. रा.

देशपाण्डे, अनत काणेकर सभी उदीयमान प्रतिभाएँ हैं। और अभी इन सबसे आगे आशाए अधिक हैं। मौलाना अकबर और हिन्दी के बेढब के ठाठ के हैं 'केशव कुमार' तखल्लुस के प्रिं. प्र के. अत्रे, बी. ए., बी. टी., टी. डी. जिनके 'गेंदे का गजरा' (झेंडूची फुले) साहित्य-क्षेत्र में फाग का अपना ही समा बाँधता है। अलावा इसके हमें हर्ष है कि दु. आ तिवारी, (एक हिन्दी मातृ-भाषा वाले मराठी साहित्यिक) आ० कृ० टेकाडे, और कोल्हटकर आदि लोग महाराष्ट्र मे खूब प्रचारित पुराने 'पोवाडे' वीर-कविताओं, आल्हा के ढंग के जोशीले आख्यानो (Ballads) का पुनरुद्धार करने में जुटे हैं। और भी बहुत लोग होंगे, जो छुट गये हो; पर यहाँ साथ ही यह भी कहना होगा कि सच्ची कवियित्रियो का मराठी में हिदी जैसा ही या रत्ती-भर अधिक अभाव है। कु सजीवनी मराठे, रहस्यवादी गीतो की लेखिका कुछ-कुछ महादेवी से तुलनीय है।

इतना सब कहने पर भी यह सवाल हमेशा पूछा जाता है, जो कि एकदम बेमतलब है कि हिन्दी की कविता अच्छी है या मराठी की ? यद्यपि इस सवाल का पूरा विवेचन इस लेख का उद्देश्य नहीं तो भी इतना जरूर कहा जा सकेगा कि राष्ट्र के संस्कृति-गठन में प्रत्येक भाषा का अपना-अपना स्थान, अपनी-अपनी परिस्थितियाँ और अपना-अपना मूल्य रहा है। उपादेयता की दृष्टि से सभी श्रेष्ठ हैं और उसमें ऊपर-नीचे का क्रम नही दिया जा सकता, चूंकि समानान्तर, समतल रेल की पटरियों में कौन नीची, कौन ऊँची ? और इसी दृष्टि से प्रत्येक भाषा की कविता को दूसरे भाषा की कविता से अवश्य बहुत-कुछ लेने को, सीखने को हो सकता है ; पर उसकी चर्चा इस लेख में न हो सकेगी। रही वैयक्तिक रुचि और सौंदर्य दर्शन की बात, सो तो अपना-अपना मन है, कोई यह कविता पसंद करे, और कोई वह। इस दृष्टि से भी कोई निश्चित उत्तर असभव है।

दक्षिण भारत के कवि

सुब्रह्मण्य भारती (तामिल)
वल्लथोल (मलयालम)
दे. कृष्ण शास्त्री (तेलुगु)
द. रा. बेंद्रे (कन्नड)

: २१ :

सुब्रह्मण्य भारती (तामिल)****

भारती तामिल भाषा के भारतेन्दु और रवीन्द्रनाथ की भाँति श्रेष्ठ युगप्रवर्त्तक कवि थे। उनकी रचनाओं की महत्ता समझने से पहले तामिल कविता के ऐतिहासिक विकास को समझना जरूरी है।

'तामिल' का अर्थ है 'मधुर'। उदाहरण के लिए अपनी देवस्तुति में तामिल-भाषी कहते हैं—'आत्तिचुडि अमरंद देवनै एत्ति एत्ति तोलुवोम् यामे।' अर्थात्—'उस गणेश की जय-जय हो जो कि दूर्वा की माला पहने हुए है। तामिल या तमिष् द्राविड भाषासंघ की प्रमुख भाषा है। इसे बोलने वाले १ करोड़ ७० लाख लोग हैं। तामिल-भाषी भूभाग वैसे तो तुङ्गभद्रा नदी के नीचे से कन्याकुमारी तक है, परन्तु तामिल वैयाकरणों के अनुसार यह भू-भाग तिरुप-तीर्थ पर्वत और कन्याकुमारी के बीच का भाग है। ईसापूर्व ६०० वर्ष तक प्राचीन तामिल का काल माना जाता है। अगस्त्य ऋषि के शिष्य ने 'तोलकप्पियम्' नामक व्याकरण ग्रन्थ लिखा जो तामिल का प्रथम ग्रंथ माना जाता है। प्राचीन तामिल साहित्य को 'संगम साहित्य' भी कहते हैं। मदुरा में तीन संगम थे, उन पाठशालाओं से यह नाम रखा गया। ईस्वी ५०० तक का सारा प्राचीन साहित्य पद्य में ही लिखा गया। उसमें वीर-काव्य भी बहुत-सा है। वैसे तामिल के आदिकाल का पता महामहोपाध्याय डा० स्वामिनाथ अय्यर जैसे सशोधकों को ६५ वर्ष के शोध के बाद भी नहीं मिला।

का. श्री. श्रीनिवासार्य लिखते हैं:

"आज तामिल साहित्य को विश्व-साहित्य में जो ऊँचा स्थान मिला है,

उसका श्रेय प्राचीन काल के तिरुवल्लुवर, मध्यकाल के कम्बन् और नवयुग के सुब्रह्मण्य भारती को है। श्री टी. शल्वकेशवराय मुदलियार ने ठीक ही कहा है, 'ग्रीस ने होमर और सुकरात को जन्म दिया तो तामिल भूमि ने तिरुवल्लुवर और कम्बन् को। कम्बन् दक्षिण भारत के होमर और तिरुवल्लुवर सुकरात है। तामिल लोगो का साहित्यिक महत्व तिरुवल्लुवर और कम्बन् पर अवलम्बित है।''

रेवरेंड जी. यू पोप ने सर ए. ग्राण्ट का उद्धरण देते हुए तिरुवल्लुवर को अरिस्टाटल से भी श्रेष्ठ सिद्ध करते हुए लिखा है, 'सर ए. ग्राण्ट का कथन है कि नम्रता, औदार्य और बुराई के बदले भलाई करने की क्षमता—इनका वर्णन अरिस्टाटल ने नही किया है—इस तामिल नीतिकार ने इन तीनों बातो का सर्वत्र बलपूर्वक समावेश किया है।'

चार्लस ई गवर के कथनानुसार 'यह अत्युक्ति नही है कि कुरल् तामिल साहित्य मे उतनी ही प्रमुख और तामिल जनता के हृदय मे उतना ही प्रभाव उत्पन्न करने वाला है जितना कि इटली भाषा और विचार पर दान्ते का काव्य।' स्वर्गीय व. वे. सुब्रह्मण्य अय्यर ने भी कम्बन् की गणना विश्वसम्मान्य दस कवियो मे की है और उन्होने इस बातका सप्रमाण विवेचन किया है कि भारतीय कवियो मे व्यास और बाल्मिकि के बाद कम्बन् ही को विश्वश्रुति कवि का स्थान मिला है। आधुनिक वर्तमान काल मे भारती का नाम यद्यपि कम्बन् के सदृश विख्यात नही हुआ तथापि तामिल भाषा की सर्वतोमुखी नयी जागृति का फल हमे उन्ही की तपस्या से मिला है, यह बात छिपी नही है।''

तामिल के अभिनूतन साहित्य की नीव डालने वालो मे भारती और व. वे. सु. अय्यर का नाम प्रधान है। भारती ने साहित्य के प्रत्येक विषय को छुआ। वे राष्ट्रीय-कवि के नाते प्रसिद्ध हुए परन्तु उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। विज्ञान, योगशास्त्र, वेद, उपनिषद्, धर्मशास्त्र, उपन्यास, कहानियाँ, समाज-सुधार आदि सभी विषयो पर उनकी लेखनी ने लिखा। उनकी गद्य रचनाओ मे 'ज्ञानरथ' 'षष्ठमाश' शीर्षक कहानी, 'दृश्य' नामक गद्य-गीत, 'तराजू' और 'चन्द्रिका' नामक अधूरे उपन्यास प्रसिद्ध है। भगवद्गीता पर उन्होने आलोचनात्मक भूमिका लिखी है। 'वेदर्षियो की कविताएँ' पातञ्जलि योग-दर्शन के समाधिवाद की व्याख्या उनकी आध्यात्मिक कृतियाँ है। उनकी कला और कल्पना 'कोइली' (खंडकाव्य) और 'ज्ञानरथ' मे पराकाष्ठा को पहुँच गयी है। भारती की अग्रेजी कृतियाँ भी प्रकाशित हुई हैं। श्रीनिवास अय्यर के शब्दो मे—'वगभंग के बाद

कांग्रेस के राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ-साथ जो विप्लवी विचारधारा देश में फैली, उसमें भारती का योगदान बहुत बड़ा है। भारती अपने-आपको पहले भारतीय और बाद में तामिल मानते थे। तामिलनाड में किसी भी सभा का आरम्भ भारती की कविता के बिना नही होता। और कोई भी शालेय पुस्तक उनकी रचना के बिना अधूरी है। तामिलनाड के सभी आधुनिक कवियो पर उनकी रचना की छाप बहुत स्पष्ट है।

परन्तु इस कवि के जीवन पर और रचनाओ पर हिंदी मे हमें बहुत कम सामग्री मिलती है। केवल हमारे मित्र त्रिलोचन शास्त्री ने काशी के 'आज' साप्ताहिक मे कभी कुछ लिखा था। असल में हिंदी ही क्या—अन्य भारतीय साहित्यो मे भी तामिल का अनुवाद कम हुआ है। केवल मराठी में तामिल-वेद 'कुरल्' का अनुवाद मैंने पढा। असल मे १६०५ मे ऑक्सफोर्ड से प्रकाशित 'हिन्दू मैनर्स एण्ड कस्टम्स' ग्रथ की आरंभिक टिप्पणी मे मैक्समुल्लर की यह शिकायत आज भी सही है—'Tamil literature hitherto has been far too much neglected by students of Indian literature, philosophy and religion.' (तामिल साहित्य की, भारतीय साहित्य-दर्शन और धर्म के विद्यार्थियो ने अब तक बडी उपेक्षा की है।) डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी ने 'Race Movement and Prehistoric culture' नामक निबध में कहा है कि—'सस्कृति का जहाँ तक सम्बन्ध है, भारत मे, रुपये मे बारह आने अनार्य स्रोतो से आई हुई सस्कृति है। आर्यों से भी द्राविड और आस्फिक सस्कृतियो की छाप हिन्दू सभ्यता में अधिक गहरी है।' (भारतीय इतिहास समिति से प्रकाशित 'दी वेदिक एज' ग्रथ से) खोजते-खोजते 'स्वप्नस्थ' का एक गुजराती लेख सस्कार' नामक अब 'आनगत' गुजराती प्रगतिशील मासिक मे और एक हिन्दी लेख पदुकोट्टै के राजा कालिज मे हिन्दी अध्यापक श्री के. आर. नजुण्डन का मिला। वैसे 'भारतज्योति' (२६--६--१६४६) मे प्रकाशित के एम. एस. राघवन् का लेख भी अच्छा है।

भारती का जन्म तिरुनेलवेली जिले के एट्टयापुरम् ग्राम मे २६ मई १८८२ ई० मे हुआ। पिता चिन्नुस्वामी अय्यर जमीदार के कारिन्दे थे। बचपन से ही भारती पर कम्बन के भक्ति-काव्य 'रामायण' और तायुमानार के पद तथा शैव आचार्यों के गीत और तिरुवल्लुवर के 'तिरुक्कुरल' के पाठ का असर पड़ा। भारती की शिक्षा विशेष नही हुई। श्री नंजुण्डन के शब्दो में उनकी जीवनी इस प्रकार है :

"श्री चिन्नुस्वामी अय्यर की हार्दिक अभिलाषा थी कि भारती ऊंची अंग्रेजी शिक्षा पा कर कोई अच्छी नौकरी कर ले और आराम से जीवन-निर्वाह करे। उस जमाने के मापदण्ड के अनुसार उनकी यह इच्छा स्वाभाविक थी। परन्तु भारती के भाग्य मे तो कुछ और ही लिखा था! जिन्हे विधि ने स्वाधीनता का सदेश फैलाने का भार सौपा हो, उन्हे आराम का जीवन कब बदा है? तो भी पिता का आदेश मानकर भारती तिरुनेलवेली के हिन्दू कालेज मे भरती हुए। वहाँ का बनावटी जीवन उनके स्वभाव के प्रतिकूल था। वे पाँचवी कक्षा तक ही शिक्षा पा सके। फिर पढाई छोड दी। उन्होने उस छोटी उमर मे ही अनुभव किया कि अग्रेजी शिक्षा-प्रणाली हमारे देश के अनुकूल नही है। इससे देश की आत्मा कुंठित हो जाती है। सिवाय रुपये-पैसे के खर्च के, कोई लाभ नहीं है। इस शिक्षा से हमारे वास्तविक जीवन का कोई सबंध नही। इसके फलस्वरूप देश की सास्कृतिक चेतना नष्ट होती है। इस शिक्षा के संबंध मे उन्होने 'स्वचरित' मे लिखा है—'बारह वर्ष तक विद्यार्थी गणित सीखते है, परन्तु उन्हे आकाश के नक्षत्रो की गति का बोध थोड़ा भी नही होता। बहुत से श्रेष्ठ काव्यो का परिश्रम उठा कर अध्ययन करते हैं, पर कवि की भाव-भूमि तक उतरने मे बिलकुल असमर्थ रहते हैं। व्यापार और अर्थशास्त्र के ज्ञान की डींग मारते हैं, लेकिन इतने अन्धे है कि अपने देश की सपत्ति के विनाश का पता उन्हे नही! हजारो ग्रथो के नाम जानते हैं, पर किसी एक का सपूर्ण ज्ञान नहीं! शिक्षित होकर भी कच्चे और अबोध हैं!' विदेशी शिक्षा-प्रणाली की कैसी तीव्र आलोचना है!

"जिस शिक्षा-प्रणाली मे वे स्वयं इतनी खराबियाँ बताते हैं, उसे कैसे स्वीकार कर सकते थे? कालेज की पढ़ाई भी समाप्त!

"जब भारती की अवस्था १४ वर्ष की थी, तभी पिता ने विवाह भी कर दिया। एक वर्ष बाद बीमारी से पिता चल बसे तो भारती पर मानो वज्र गिर पड़ा। पिता की मृत्यु के अनन्तर भारती को कठोर दरिद्रता के साथ घोर संघर्ष करना पड़ा। अपने जीवन के अतिम दिन तक इस संघर्ष से उनका पीछा न छूटा। कोई सम्बन्धी भी ऐसा नहीं था जो विपत्ति के अवसर पर उनकी सहायता करता। भारती की फूफी उन दिनो काशी में रहती थीं। फूफी की आर्थिक-स्थिति कुछ अच्छी थी। उनका बुलावा पाकर भारती अपने परिवार को गाँव में छोड़कर अकेले काशी चले गये।

"काशी में भारती के फूफा कृष्णशिवन् ने उनसे कालेज मे भरती होकर

अध्ययन करने का बार-बार आग्रह किया। इस आग्रह को वे टाल नहीं सके। दूसरे वर्ष वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय की प्रवेशिका परीक्षा मे हिन्दी लेकर प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। वहीं उन्होने अपना संस्कृत-ज्ञान भी बढाया। उन्हे अंग्रेजी का मोह न था। किन्तु बाद मे उन्होंने अंग्रेजी का भी अध्ययन इतनी अच्छी तरह किया कि अंग्रेजी कवितायें तक लिखीं और अपनी तमिल कविताओ का अंग्रेजी मे अनुवाद भी किया। इनका संग्रह Agni and other poems के नाम से प्रकाशित हुआ है। भारती ने हिंदी, संस्कृत और अंग्रेजी के अतिरिक्त बॅगला, गुजराती और मराठी से भी परिचय प्राप्त किया।

"कालेज के जीवन में उन्होने सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं का गहरा अध्ययन ही न किया बल्कि वे समाज-सुधार संबंधी कार्यों मे भी सक्रिय भाग लेने लगे। भारती प्राचीनता का गौरव अवश्य करते थे। उसके प्रति उनके हृदय में ममता थी, परन्तु वे उसके साथ बँधे नहीं थे। उनका हृदय इतना विशाल था कि नवीनता का स्वागत करने में उन्हे संकोच नहीं होता था। देश और समाज के सम्मुख जो-जो विकट प्रश्न आते थे, उन्हें नवीन दृष्टिकोण से हल करने का वे प्रयत्न करते थे। वे कोरे विचारक नहीं, व्यावहारिक व्यक्ति थे। अपने विचारों को सदा कार्यान्वित करने का यत्न करते थे।

"भारती का यह नवीन दृष्टिकोण प्राचीनता के भक्त श्री शिवन् जी को पसंद न आया। वे अक्सर भारती के नये प्रयासो पर अप्रसन्नता प्रकट करने लगे। धीरे-धीरे भारती ने भी अनुभव किया कि काशी-वास से उनके गौरव की हानि होती है। वे बड़े ही आत्माभिमानी व्यक्ति थे। दूसरों के लिए भार होकर रहना उन्हे अच्छा न लगा। इसके अतिरिक्त घर की चिंता भी उन्हें सता रही थी। इसी समय एट्टयापुरम् के जमीदार ने उन्हे अपने यहाँ बुलाया। भारती ने भी उचित अवसर पर आये हुए निमंत्रण को सहर्ष स्वीकार किया और थोड़े ही दिनो मे एट्टयापुरम् के लिए रवाना हुए। भारती ने अपने कासी-वाशी से जितना हो सका, लाभ उठाया।

"एट्टयापुरम् में वे इस बार केवल तीन वर्ष ही रह सके। वहाँ का दरबारी जीवन उन्हे अरुचिकर लगा। पराधीनता के जीवन में भी शृंगार और प्रेम के झूले में झूलने वालों का साथ स्वाधीनता के पुजारी भारती को कैसे पसंद आ सकता था? इसलिए जमीदार का आश्रय त्याग कर वे मदुरा आ पहुँचे और सेतुपति हाईस्कूल में तीन मास तक तमिल-अध्यापक का काम किया। वहाँ कई गण्य-मान्य लोग उनके मित्र बन गये, जिन्होने भारती की मेधा और प्रतिभा से

प्रभावित होकर उन्हे हर तरह से प्रोत्साहन दिया। अन्त मे हाईस्कूल के काम से वे ऊब उठे। अपनी इच्छा से सरस्वती की आराधना करने वाले कही नियमो के बंधन मे रह सकते है! उनके लिए पाठशाला का काम बिलकुल नीरस था। पुरानी कविताओ का शब्दार्थ, भावार्थ, व्याकरण-सबंधी विशेषतायें आदि सिखाने मे उनका मन नही लगा। उनका दृढ मन था कि इस तरह की पढाई से विद्यार्थियो के बुद्धि-विकास मे बाधा पडती है। अब वे जीवन के तूफानी सागर मे कूद चुके थे। यह समय उनके जीवन मे घोर मानसिक सघर्ष का समय था।

तमिल देश का भाग्योदय ही समझना चाहिये कि भारती के जीवन का रुख बदल गया। उन दिनो तमिल की प्रमुख दैनिक पत्रिका 'स्वदेशमित्रन्' के सपादक दिवगत मुंशी जी सुब्रह्मण्य अय्यर थे, जिनके नाम से भारत के निवासी अच्छी तरह परिचित है। उन्होने भारती के देश-प्रेम और कवित्व-मेधा को तुरन्त पहचान लिया और भारती को मद्रास बुलाकर 'स्वदेशमित्रन्' मे उपसम्पादक का काम सौंपा।

"यह कहना अनुचित नही होगा कि भारती का वास्तविक क्रांतिकारी जीवन तब से आरभ हुआ जब से वे 'स्वदेशमित्रन्' कार्यालय मे आये। उपसपादक की हैसियत से उन्हे देश-विदेश की परिस्थितियो का यथोचित ज्ञान हुआ। राजनीतिक प्रश्नो मे वे स्वभावतः रुचि रखते थे। देश-भक्ति के भावो से उनका हृदय ओत-प्रोत था। पराधीनता को चुपचाप स्वीकार करने वाले अपने देश-निवासियो पर उन्हे अपार क्रोध आता था। पर जनता की विवशता समझ कर उस पर सहानुभूति भी रखते थे। इस समय के उनके लेखों, टिप्पणियो और कविताओ मे देश-भक्ति का स्वर ही प्रधान रहा। एक गीत मे वे स्वतन्त्रता-देवी की वन्दना इन शब्दो मे करते है—"सुखदायक घर का आराम छिन जाय, कारावास मे रह कर कष्ट सहना पडे, तो भी हे देवी, तेरी वन्दना करना नही छोड़ूगा।" भारत-माता की आराधना और सेवा ही उनके गीतो का सार था। वे प्रवासी भारतवासियो को भी सदा याद रखते थे। केवल पेट की आग बुझाने के लिए सैकड़ो लोगो को अपनी प्यारी मातृ-भूमि को छोड़कर समुद्र-पार, दूर-दूर के दक्षिण अफ्रिका, फिजी, मलाया आदि देशो और द्वीपों मे हज़ारो संकटो के मध्य अपना जीवन बिताना पड़ता है। उनकी क्या हालत है, यह हममे से हर एक जानता है। आठों पहर तन तोड़कर मेहनत करते हैं, उन देशो की धन-सपत्ति बढ़ाते हैं, पर विधि की भी कैसी विडंबना है कि उनको एक जून भोजन भी

नहीं मिलता! तिस पर घोर अपमान की चोटें खानी पडती है! भारती जैसे मानवता के उपासक और सच्चे देश-भक्त इस अपमान को कसे सह सकते थे, उन्होंने अपने देशवासियों का ध्यान उस ओर खींचने का निरन्तर प्रयास किया।

"उन दिनों देश का नेतृत्व लोक-मान्य तिलक के हाथों में था। उनके महा-मन्त्र, 'स्वराज हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है' की गूंज देश के चारों कोनों से उठी। इसके फलस्वरूप विदेशी शासन के प्रति जो घृणा जाग्रत हुई वह प्रखर दावाग्नि की भाँति हर कहीं फैल गयी।

"स्वाधीनता का दिव्य-संदेश घर-घर पहुँच रहा था। जनता की मोह-निद्रा टूटने लगी। तमिलनाड में लोगों को जगाने का पवित्र काम "भारती, वा वे. सु अय्यर और व. ऊ. चिदंबरम् पिल्लै, इन तीनों ने" किया—ये ही स्वतन्त्रता के संदेश-वाहक बने। भारती की वाणी और लेखनी दोनों में आग बरसाने की अमोघ शक्ति थी। उन्होंने अपनी शक्ति का सदुपयोग किया। इसी समय, 'स्वदेशमित्रन्' के निर्वाहकों को भय हुआ कि यदि भारती इसी तरह लिखते जाँयगे तो विदेशी शासन की कडी नजर उन पर पड़ेगी और शायद पत्रिका को बन्द भी करना पडेगा। लेकिन भारती से साफ-साफ कहने में श्री सुब्रह्मण्य अय्यर को सकोच होता था। साथ ही वे चुप भी नहीं रह सकते थे। इसलिए समय-समय पर घुमा-फिरा कर कहते थे। भारती ने अय्यर का मन ताड़ लिया। परन्तु अपने मन के उत्तेजक भावों को जबरदस्ती रोक रखना उन्हे अधर्म प्रतीत हुआ। निर्भीकता और स्पष्टता से जनता को विदेशी शासन के निर्लज्ज कार्यों को बताना और उन्हे गुलामी के बंधन से मुक्त करना वे अपने जीवन का पुनीत कर्तव्य मानते थे। जब उन्हें विदित हुआ कि 'स्वदेशमित्रन्' के द्वारा यह काम सभव न होगा तो उन्होंने उसे छोड़ देने का निश्चय किया। वहाँ रह कर उस पत्रिका को हानि पहुँचाना उन्हे अभीष्ट न था। इसलिए इस्तीफा देकर उससे अलग हो गये।

"इसके बाद उन्होंने अपने मत के प्रचार के लिए 'इन्दिया' नामक अपनी निजी पत्रिका निकालना शुरू किया। 'इन्दिया' ने उस समय देश की जो सेवा की है, वह अकथनीय है। वास्तव में यदि दक्षिण के इस प्रदेश मे आज राज-नीतिक चेतना का जागरण हुआ तो वह भारती और उनकी 'इन्दिया' के कारण ही हुआ। १६०६ तक 'इन्दिया' का प्रकाशन होता रहा। उन्हीं दिनो भारती के अधिकतर राष्ट्रीय-गीत रचे गये। भारती अपने इन गीतों से सदा के लिए अमर बन गये।

"शासन-सत्ता भारती के तीव्र प्रचार-कार्य से घबडा उठी। उन्हें कैद करने की आज्ञा निकाली गयी। यह घटना भारती के जीवन मे सबसे महत्त्वपूर्ण है। उनके हृदय मे घोर सघर्ष का तूफान उठा। एक ओर अन्य देश-भक्तो की तरह कारावास ग्रहण करने की इच्छा थी तो दूसरी ओर काव्य-देवी की आराधना की अभिलाषा थी। उन्होने अनुभव किया कि दोनो काम एक साथ नही हो सकते।

"मित्रो ने आग्रह किया कि जेल मे सडने के बदले पाडिचेरी जैसे स्थलो में रह कर देश-सेवा करना अच्छा है। उनका कहना मान कर भारती पाडिचेरी के लिए रवाना हुए, जो उन दिनो अरविंद बाबू जैसे नेताओ का आश्रय-स्थान था। पाडिचेरी मे वे लगभग आठ साल रहे। वही अरविन्द के साथ उनकी भेंट हुई। दोनो ने एक-दूसरे को पहचान लिया। दो मेधावियो का वह मिलन दोनो को आनन्ददायक था। भारती ने 'आर्या' पत्रिका चलाने मे श्री अरविंद को अमूल्य सहयोग दिया। वे स्वय भी लेख और कविताएँ लिखा करते थे। ये आठ वर्ष भारती के जीवन मे बडा महत्त्व रखते है। इन्ही वर्षो मे उन्होने प्रसिद्ध दार्शनिक गीत, 'कण्णन पाट्टु', जो सारे तमिल साहित्य ही क्या भारतीय वाङ्मय में अपने ढग की अकेली चीज है, तथा सुप्रसिद्ध काव्य 'पाचाली रापयम्' और अनुपम खंडकाव्य 'कुईल' (कोयल) आदि लिखे। ये ग्रथ आधुनिक तमिल साहित्य की अमूल्य निधियाँ है। तमिल भाषा-भाषियो ने उन्हें अभिमान और प्रेम के साथ जो महाकवि या कविचक्रवर्ती की उपाधि प्रदान की, वह इन्ही ग्रंथो के कारण सार्थक है।

"१६१८ मे भारती पाडिचेरी का अज्ञातवास छोडकर सपरिवार अपने गाँव कडयम् मे रहने लगे। वहाँ दो साल रह कर फिर मद्रास आये और दुबारा 'स्वदेशमित्रन्' मे उपसंपादक बने। भारती का सारा जीवन कठोर दरिद्रता मे ही बीता। वे जो कुछ कमाते थे, वह परिवार के खर्च के लिए काफ़ी न था। वे दयालु इतने थे कि कभी-कभी अपनी आधी से अधिक कमाई दीन-दुखियो की सेवा में खर्च कर डालते थे। कितने ही दिन भारती के घर वालो ने उपवास किया है। शायद बहुत कम साहित्यज्ञ जान-बूझ कर ऐसी दरिद्रता को अपनाते। साथ ही यह दरिद्रता एक महान् कवि-हृदय को कुण्ठित और शक्ति-हीन न कर सकी। उलटा इसने भारती की वाणी को ओज, उत्साह और शक्ति से भर दिया।

"भारती की मृत्यु बड़े ही विचित्र ढग से हुई।

"उन्होने अपने 'पाप्पापाट्टु' (बच्चों के गीत) नामक सुन्दर गीतों मे कहा भी है—"कौआ, पपीहा, पहाड़, पत्थर आदि सब हमारी ही जाति के है। समस्त जीवो मे जड़ और चेतन मे ईश्वर का वास है।" अपने जीवन के अन्तिम दिनो मे वे मद्रास के एक मोहल्ले तिरुल्लिक्केणी मे रहते थे और वहाँ के पार्थ-सारथी मदिर में प्रतिदिन दर्शन के लिए जाया करते थे। अपने साथ नारियल फूल, फल आदि अवश्य ले जाते थे। मदिर के मुख्य फाटक पर मदिर का हाथी बँधा रहता था। भारती नारियल आदि हाथी को खिला देते और उसके बाद देव-दर्शन करते थे। एक दिन अचानक वह हाथी बिगड़ गया। वह इधर-उधर दौडकर लोगो को डराने लगा। सदा की भाति नारियल आदि ले कर भारती मदिर मे आये तो उन्हें यह बात ज्ञात हुई। वे तुरन्त हाथी को शान्त करने उसके पास गये। उसे नारियल और फल खिलाये, फिर मधुर शब्दो में "भैया, भैया" कह कर उसे शान्त करने लगे। पर मूर्ख हाथी भारती का मूल्य क्या जाने। उसने क्रोध मे आकर भारती को सूँड मे लपेट कर दूर फेंक दिया। वे बेचारे खदक मे जा गिरे और बुरी तरह घायल हो गये। इसी के फलस्वरूप ११ सितम्बर, १९२१ को रात के करीब डेढ बजे भारती की उज्ज्वल आत्मा भौतिक शरीर का बंधन तोडकर मुक्त हो गयी और उस अनन्त ज्योति मे जा मिली जहाँ से वह इस मर्त्यलोक में ३८ वर्ष पूर्व आयी थी।"

अब उनकी कविताओ के कुछ सुन्दर उदाहरण अनुवाद रूप मे दिये जाते है :

तामिलनाड की धरती के प्रति उसकी परपरा का सुभग दर्शन कराते हुए भारती अपने 'सेन्थामिल नाडु' नामक गीत मे लिखते हैं :

'सेन्थामिल नाडु के शब्द सुनते ही मानो मधुर कलसंगीत सुन रहा हूँ ऐसा मेरा हृदय हिल उठता है और उसे मेरी पितृभूमि कहकर पुकारते समय, उच्छ्वास लेते हुए मेरे प्राण मानो बलवान होते जाते हैं।

'कावेरी, पालरु, मोरूनेई के प्रवाहो से तामिलनाड का देह शृंगारित हुआ है। फेनिल उछलते हुए नील सागर के किनारे चिरंतन रूप से खड़ा कोमोरिन का तपस्वी अन्तरीप और मालवन की टेकड़ी के बीच में बसा तामिलनाड तेरे यशस्वी कार्यों की गौरव-गाथा से भरा है।

'ये कम्बन और शिलाप्याधिकरण के रचनाकार और वल्लुवन जैसी महा-मेधाओ ने रचित अमूल्य रत्नमालाओ से विभूषित है।

'व्याघ्र और मत्स्य का चिह्न वाला ध्वज लंका, फिलिपाइन्स और जावा में

गाड़ने वाले यहाँ के लोग थे। अन्धकार का नाश करने वाला कलिंग का युद्ध करनेवाले वीर सैनिक यही बने थे।

'यही के लोगो ने तामिलनाड की कीर्ति चीन, मलाया, बर्मा आदि प्रदेशो मे फैलाई है और संस्कार, ज्ञान और व्यापार का विस्तार किया है।'

परन्तु भारती सकुचित राष्ट्रीयता का कवि नही था। 'भारथ नाडु' नाम से भारत की भव्यता का गान करनेवाला गीत भी उसी ने लिखा और इटली के मुक्तिदाता 'मैजिनी की शपथ' की वज्र-निश्चयात्मकता का बुलन्दी और रणकार से भरा गीत भी उसी ने लिखा। भारती ने ३८ वर्ष की आयु मे २७ ग्रथ लिखे, जिनमे 'देशीय गीतंकल' (स्वदेश-सगीत) बहुत प्रसिद्ध है। आन्ध्र विद्यापीठ के उपकुलपति रेड्डी ने १९४७ मे कहा था: 'सुब्रह्मण्य भारती की कवि-प्रतिभा दो महान सस्कारो के सघर्ष और सयोग का सुफल है। भारती के राष्ट्र-प्रेम के गीत, जब उसके सवेदनशील हृदय ने देश की गुलामी और मनुष्य की मनुष्य के प्रति अमानुषता का तीव्र अनुभव किया तब उसमे से उद्भूत सघर्ष, दर्द और लड़ाई मे से उपजे है।'

स्वतन्त्रता का गीत गाते हुए भारती ने कहा है—

स्वतन्त्रता! स्वतन्त्रता!! स्वतन्त्रता!!!

'पुरयन्, तियत्, पुलयन्, परवन्, वगैरा नीचे वर्णो के लिए स्वतन्त्रता! उनसे भी नीची जातियो कुरवन् और मरवन्—सबके लिए स्वतन्त्रता!!

'कुशल और निर्दोष कर्तव्य करते हुए हम सब इसी भूमि में रहेगे और उच्च-शिक्षा और ज्ञान पावेगे।

'धर्म में कोई गरीब या गुलाम नही है।

'भारतवर्ष मे कोई नीच व्यक्ति नहीं है।

'हम सब समान भाव से शिक्षा, समृद्धि और सुख का सयुक्त उपभोग करते हुए इस भूमि में रहेगे।

'स्त्री को नीचा गिननेवाले अज्ञान का हम नाश करेंगे। स्त्री निराधार है यह खयाल नष्ट करके उन्हे पुरुष के समान मानकर इस देश में जीयेंगे!'

उसी प्रकार से सुब्रह्मण्य भारती ने स्वतन्त्र भारत का आवाहन किया है। उसी ओजस्वी कवि भारती का एक दूसरा प्रसिद्ध गीत है 'श्रम':

लोहे को पिघला दो
यंत्र बनाओ,
गन्ने को और दबा कर रस बाहर निकालो!

समुद्र मे डुबकी लगाकर उत्तम मोती बाहर लाओ।

अपना पसीना बूंद-बूंद इस धरती हर गिरने दो और हजारों कार्यों के लिए श्रम करो।

मै तुम्हारी महिमा का गान-गरज गाऊँगा।

मिट्टी में से पात्र बनाओ ! वृक्ष काट कर घर बनाओ !

अन्न और फल खाओ ! तेल, दूध और घी लाओ !

सूत कातो और वस्त्र बुनो !

तुम पृथ्वी की रक्षा करने वाले हो, क्या इस रीति से रक्षा पाओगे ?

गीत और काव्य रचो

भारत नाटयम् नाचो,

पृथ्वी की भीतरी वस्तुएँ खोजकर निकालो और उस ज्ञान को विज्ञान मे संग्रहीत करो।

तुम ही हमारे चक्षुओं को दिखाई देने वाले देवता हो !!

परन्तु भारती की सारी कविता ऐसी प्रगतिशील कविता नही थी। उसमें रवीन्द्र की भाति रहस्यवाद, आदर्शवाद की ओर एक गहरी रुझान थी। के. चन्द्रशेखरन् ने 'आर्यन पाथ' मासिक मे उनके रहस्यवाद की चर्चा की है। और नायक-नायिका भाव, जो कि श्रीमद्भागवत के गोपिका गीत से चला आया है, रहस्यवादी कविता का परम-बिन्दु मानकर उसी परम्परा में भारती के कन्नम्मा के प्रति प्रेम-गीतों से एक उद्धरण दिया है जो 'निराला' और माधव-ज्यूलियन् के 'तू और मै' की याद दिलाता है। वह गीत इस प्रकार से है :

प्रिये, तुम उच्छल प्रकाश हो,

और मैं मुक्त घूमने वाली आँख हूँ।

प्रिये, तुम चमकीली सुरा हो

और मैं मतवाला मधुकर

मैं तुम्हारे गौरव का गान करने का यत्न करता हूँ

परन्तु शब्द मौन में खो जाते हैं

तुम स्वर्गीय सुषमा की साम्राज्ञी हो

तुम अमर क्रान्ति हो।

तुम एक वीणा हो, प्रिये,

और मैं चतुर क्रीडा-रत उँगलियाँ।

तुम एक रत्न हो, प्रिये,

और मैं उस रत्न की कान्ति हूँ।
जब जब मैं मुड़ता हूँ, प्रिये
तो तुम्हारे प्रेम के प्रकाश से विश्व जगमगा उठता है
तुम साम्राज्ञी हो, प्रिये,
तुम मेरे जीवन की पतवार हो
तुम सुगन्ध हो, मै विकच कुसुम हूँ।
तुम बोले हुए शब्दो का अर्थ हो, मैं केवल शब्द जोड़नेवाला हूँ।
तुम चन्द्रिका हो प्रिये, मैं आह्लादित सिंधु हूँ।
तुम मेरे जीवन की अस्ताई हो और मैं उसका अन्तरा हूँ।

ऐसे और भी गीत है जिनमे कन्नम्मा के साथ आँख-मिचौनी का खेल खेला जाता है, और जिनमे परम-तत्त्व प्रेयसी का रूप बदलकर स्वामी का रूप लेता है, और कही गड़रिये का या अजा-पाल का।

अन्त मे भारती के 'गाँधी-पंचकम्' का रा. वीलिनाथन् कृत अनुवाद देने से पूर्व उसकी रचना की मनोरंजक कहानी सुना दूँ। मार्च १९१९ के आरम्भ मे गाँधी जी मद्रास गये थे। सत्याग्रह छेड़ने की बात थी। राजाजी के घर ठहरे थे। एक दिन दोपहर को ३-३० बजे, जब वे महादेव देसाई को कुछ लिखा रहे थे, तब भारती वहाँ सीधे चले आये और सीधे गाँधीजी से बोले—'गाँधी जी, आप आज त्रिप्लिकेन समुद्र किनारे की सभा मे सभापतित्व करेंगे! मै वहाँ शाम को ५-३० बजे बोल रहा हूँ।

गाँधीजी—महादेव, आज हमारे क्या-क्या काम हैं, देखो तो!

महादेव—नेपियर पार्क मे उसी समय एक सभा में हमे जाना है।

गाँधीजी—कृपया अपनी सभा आप कल रख ले तो कैसे होगा?

भारती—'क्षमा कीजिये। मै वह नही कर सकता। पर मैं आपके आन्दोलन को आशीर्वाद देता हूँ।' और यह कह कर भारती चले गये। जब राजाजी से गाँधीजी ने जाना कि यह तामिल के राष्ट्रकवि हैं, तब गाँधीजी ने कहा: 'इस आदमी की बहुत कोमलतापूर्वक सँभाल होनी चाहिये। क्या आपके देश मे कोई ऐसा नही है?'

गाँधी-दर्शन के बाद भारती ने जो कविता लिखी, वह है 'गाँधी-पंचकम्।'

(१) जीते रहो, हे ईश्वरोपम महान् आत्मा! तुम चिरंजीव हो कर जीते रहो। इस भारत देश को, जो इस समय संसार के सारे देशों से अधिक दलित और दीन-हीन अवस्था को प्राप्त हो गया है, दारिद्र्य के पंजे में पड़ कर दबा

जा रहा है, अपनी स्वतन्त्रता को खो कर, जीर्ण-शीर्ण दशा को प्राप्त हो रहा है—ऊपर उठाने और जीवित रखने को तुमने अवतार लिया। हे गांधी महात्मा, तुम शतायु रहो, चिरजीव रहो !

(२) इस देश के लोग दासता के चगुल से छुटकारा पाएँ तथा स्वतन्त्रता प्राप्त करे। धन-दौलत मे तथा शिष्टाचार मे सबसे आगे बढे रहे। शिक्षा-दीक्षा ज्ञान-विज्ञान आदि मे सर्वोच्च स्थान प्राप्त करे तथा संसार के नेतृत्व की बागडोर भी अपने हाथ में ले लें, ऐसी व्यवस्था तुमने कर दी है। फलस्वरूप अटूट और अन्तहीन कीर्ति पायी। सिर्फ यही नहीं, इस भूभाग में तुमको सर्वोत्तम स्थान भी प्राप्त हो गया है।

(३) कठोर विषधर नाग के पाश से छुड़ाने के लिए जो औषधि लाने गया था, उस (हनुमान्) से तुम्हारी तुलना करें, या बादल तथा बिजली से बचाने के लिए, जिस (गोवर्धन-धारी) ने पर्वत को ही छतरी बना कर हाथ की उंगली पर उठा लिया था, उससे तुम्हारी तुलना की जाय ? क्या कह कर हम तुम्हारी प्रशंसा करें ? अनवरत दुःसह दुःख देने वाली पराधीनता रूपी भयंकर व्याधि से पिंड छुड़ाने के लिए तुमने जो उपाय (नुस्खा) खोज निकाला है, उसके समान नवीन तथा सरल उपाय संसार भर मे नहीं है।

(४) अध्यात्म-ज्ञान हमको यह शिक्षा देता है कि उस व्यक्ति के प्राणो को भी, जो तुम्हारे ही प्राण लेने पर उतारू है, अपने प्राणों के समान समझना चाहिए तथा ससार के उन समस्त जीवों को उसी ईश्वर का स्वरूप और उसी परम पिता की संतान मानना चाहिए। अध्यात्म-ज्ञान के इन उत्तम तत्त्वों का समावेश उस राजनीति में करने का तुमने सत्साहस किया, जिसमें युद्ध, हत्या, दंड, षड्यन्त्र आदि नीच-से-नीच कृत्य उलझे रहते हैं। अर्थात् षड्यन्त्र से भरी राजनीति में अध्यात्म के उन उत्तम सिद्धातो का सम्मिश्रण करके, पाप से भरी राजनीति को पुनीत करने का भार अपने ऊपर लिया। हे महान् आत्मा ! तुम चिरंजीव रहो।

(५) हत्या-काडो से भरी युद्ध-नीति की तुमने घोर अवहेलना की। और तुमने यह जाना ही नहीं, सिद्ध भी कर दिया कि ललित-कला-मर्मज्ञों तथा अध्यात्म-ज्ञानियो का धर्म-मार्ग उन भयंकर हत्या-काडो से सहस्र-गुनी शक्ति रखता है। तुमने देखा कि भारत के उज्ज्वल भविष्य के लिए असहयोग-नीति ही सद्यः-फल देने वाली है और सारे ससार का भी कल्याण उसी में निहित है। इसलिए तुमने उपदेश दिया कि ससार पारस्परिक शत्रुता भूल कर सद्धर्म में प्रविष्ट हो

और फूले-फले। हे महान आत्मा ! तुम्हारी जय हो और तुम अमर रहो !

(तमिल मूल—प्रथम और अन्तिम बद)

(१) वाल्हनी ! एम्मान्, इन्द
वैयन्नु नाट्टिलेल्लाम्
ताळ्वुम् वरुमै मिञ्जि
विडुतलै तवरिक्केट्टु
पाल्पट्टु निन्डू तामोर्
भारत देशन्तन्नै
वाळिवक्क वन्द गांधि
महात्मा ! नी वाळह ! वाळह !

(२) पेरुंकोलै वळियाम् पोर् वळि इकळन्दाय
अदनिलुम् तिरन् पेरि दुडैन्ताम्
अरुंकलै वाणर् मेय्त्तोण्डर तंगळ
अर वळि एन्ड्रु नी यरिन्दाय्;
नेरुंगिय पयन् शेर् 'ओत्तुळैयामै'
नेरियिनाल् इन्दिया विकुं
वरुंगति कण्डु पहै त्तोळिल् मरन्दु
वैयहम् वाळह नल्लरत्ते।

: २२ :

वल्लथोल (मलयालम)

वल्लथोल केरल के टगोर माने जाते हैं। मलाबार मे पंडित और सामान्य जनता सर्वं उनकी कविता को चाहते है। कथकली नृत्य के उद्धारक के नाते वे विश्वविख्यात है। चेरुथुरु ग्राम की आपकी 'केरल कलामण्डल' की शाखा मे भारतभर के विद्यार्थी आते हैं। वे केवल कवि और नृत्य-गुरु ही नहीं, सामाजिक कार्यकर्ता और निर्भय राष्ट्रवादी भी हैं।

पश्चिमी घाटो में से घो-घो करती हुई वेगवती नदियाँ अरब सागर से मिलने बहती हैं। भारत, तिरूर जैसी अनेक पहाड़ियो से घिरी संकरी पट्टी मे मलाबार के लोग रहते हैं। ये गाँव नही बसाते, खेतो के पास छोटी-छोटी झोंपड़ियाँ हैं। सुपारी, आम और कटहल के पेड़ो के झुण्ड और नारियल के पेड़ो की कतारो से इनका प्रदेश घिरा है। चौमासे में घोर वर्षा के बाद ये पानी घेर कर अपनी खेती वहाँ करते हैं। नीलम और पन्ने से भरी जैसी यहाँ की चिरहरित् भूमि है।

चि. कुञ्जन् राजा ने अपने लेख 'मलयालम साहित्य की प्रारम्भिक अवस्था' मे लिखा है कि यह भाषा एक करोड बीस लाख जनता की भाषा है। मलयालम साहित्य का प्रारम्भिक इतिहास रहस्य से आवृत है। फिर भी प्रायः १००० ईस्वी से इस साहित्य का आरम्भ होता है। आरम्भिक काल की कविताएँ सस्कृत चम्पू के ढंग पर गद्य-पद्य-मिश्रित हैं। इनमे संस्कृत और मलयाली दोनो प्रकार के छन्द हैं। 'चन्द्रोत्सव' जैसे सुन्दर काव्य नायिका के विषय मे ही लिखे गये हैं। 'राज-रत्नावसीयम्' कोचीन के एक राजा से सम्बन्ध रखता है। बाद में रामायण महाभारत, भागवत आदि सस्कृत काव्यो का अनुवाद हुआ। अठारहवी शती के

कुंचन नाम्बियार या उन्नीसवी शती के वेणमणि के काव्य मे सर्वत्र मलयाली छाप है। आधुनिक कवि का प्रादेशिक वैशिष्ट्य नष्ट होता जा रहा है। आरम्भिक मलयाली के तीन चम्पू मिलते है—उरिणयाटि चरितम्, उरिणयच्चि चरितम्, और उरिणच्चिर विचेविचरितम्'। 'लीला तिलकम्' नाम का एक अलंकार-ग्रंथ भी मिलता है। १३०० ईस्वी से पूर्व का कोई साहित्य नही मिलता।

'केरल की आत्मा' नामक के. भा. नायर के लेख में कहा गया है कि केरल की परपरा पौरुषमयी है। 'हाय, यहाँ तक बात आ गयी! उफ, काल कितना बदल गया! इस जाति मे आँसू भरी आँख पहली बार देख रहा हूँ। उसे गिरने से पहले पोछ डाल। ऐसा न कर कि धरती भी तुझसे घृणा करे।' मलयालम के श्रेष्ठ उपन्यासकार रामन् पिल्लम् के उपन्यास का यह एक उद्धरण है। अतः 'केरल के इतिहास मे भी आँधी-तूफान का क्रोध वैसे ही परिव्याप्त है जैसे उसके वातावरण मे। इस देश के लोग, जिन्होने सब चीजो से बढ़कर पौरुष को महत्त्व दिया, एक ऐसी परम्परा मे पले है कि वे आत्मा की कोमलतर प्रवृत्तियो को कमजोरी समझते हैं। आँसुओ से घृणा उन्हे जन्मजात है।'

वल्लथोल नारायण मेनन का जन्म सन् १८७६ में हुआ। मानो घुट्टी मे ही इन्होने संस्कृत सीखी थी। १५ वर्ष की छोटी उम्र मे ही कालीकट की भाषा-पोषिणी सभा का सर्वश्रेष्ठ काव्यकृति का इनाम इन्हे मिला। आपकी शक्ति शुरू में आयुर्वेद के ग्रंथ पद्य-बद्ध करने मे व्यतीत हुई और इस प्रकार से उनकी कला मे वैज्ञानिकता का आग्रह बढा। वल्लथोल ने बचपन मे ही कालिदास के रघुवश का 'तीरेषु तालीवन मर्मरेषु' गाना शुरू किया। उनकी काव्यवाणी नवजीवन-सर्जना के विशालतर मानवतावादी दर्शन से अनुप्राणित हो उठी उनकी एक कविता मे प्राकृतिक सौंदर्य की कैसी अनोखी छटा है। ग्रीष्म का उत्ताप समाप्त हो गया है और वर्षा-सूचक बदली शाम को जमा हो गये है। यह दृश्य देखकर किसान गाता है :

आकाश सरोवर का पानी सूख गया है, इसलिये तालाब मे कीचड के छोटे-छोटे काले टुकडे रह गये हैं। ऐसे ही बादल यहाँ दिखाई देते हैं।

धरती का पात्र उबल रहा है, और इस भट्टी का धुँआ ऊपर के छप्पर तक पहुँचा हो ऐसे बादल खडे हैं।

बादलों में प्रकाश की आभा फूटकर पास की धरती पर बिछ गई है। मानो धरती कोई नवोढा हो! अथवा सूर्य के कोमल प्रकाश मे नहाकर सध्या ने क्षितिज पर सूखने के लिए बाल छोडकर फैला दिये है।

बिजली रूपी 'केसरी' (सिंह) को बन्द करने वाले पिंजरे जैसे बादलों मे से कभी-कभी गर्जना भी सुनाई देती है।

बिजली के नाच के बाद बिखरे हुए आभरणो के नीलम की तरह बिखरी फैली हुई हरियाली दिखाई देती है।

चातक की तरह आकाश की ओर राह देखते हुए किसान की खुली आँखो मे बिजली रूपी रुपहली सलाई मे सुख का सुरमा आँज दिया गया है ! और कभी-कभी उठता हुआ मेघनाद यो लगता है मानो आनेवाले मंगल-दिनो की बधाई के ढोल बज रहे हो !

यह काले बादल किसानो को ऐसे जान पड्ते हैं मानो भैसें चरने निकली हो। और काले बादलो मे से निकलती सूरज की किरणे, ऐसे जान पड़ती हैं जैसे पकी हुई सुनहरी गन्ने की कतार हो।

हे भयकर ताप ! तू तप ले ! इद्र बादलरूपी म्यान मे से बिजलीरूपी तलवार खीच रहा है। और अब तेरी दहाड़े पूरी हुई हैं।

हे मेरे देश ! तू चिन्ता न कर। दुख के बाद सुख के दिन आते हैं। नीलम के कुभो मे से वह तुझ पर अमृत-वर्षा करेगी।

काले मेघ जैसे विष्णु और बिजली जैसी गौरलक्ष्मी इद्र-धनुष की माला पहनकर गरीबो की मदद करने आ रहे हैं।"

इस पर किसान प्रसन्न हो जाता है। उन बादलो को सौधी मिट्टी के पीले कुमुदो की माला पहनाकर पूजना चाहता है। मलाबार मे नबुद्री नारियाँ बारह महीने 'सोला' पहने रहती हैं वैसा 'अदरजन' उसे मानकर धरती माता के लिए रेशमी साड़ी बुनने का काम तुझे मिला है ऐसा प्रश्न पूछते हैं, माँ प्रसन्न होगी तो हम प्रसन्न होंगे। स्वर्ग-प्राप्ति के लिए माता की सेवा करना सबसे उत्तम मार्ग है :

इस प्रकार से आनन्दजनक विचार करके किसान खुश हो रहा था, कि पवनरूपी पत्थर टूटने से भैंसो जैसे बादल दो-चार बूँद बरसा कर बिखर गये।

कई शिकारियो के बाण खाली जाते हैं वैसे, किसान का आशाभंग हुआ। तब तारे हँसने लगे। क्योंकि, वे तो ऊँचे बसते हैं न !

प्रकृति देवी ने तारों के रूप में आकाश में सैकड़ो सोने की मुहरे बिखरा दी। परन्तु उसके नीचे, धरती पर असख्य आदमी भूखे मर रहे हैं और उनके हाथों मे ताबे का सिक्का भी नही है।

इस एक काव्य मे वल्लथोल की काव्य प्रतिभा, धरती-प्रेम और जनता के प्रति सहानुभूति व्यक्त होती है। वल्लथोल ने ऐसी सैकडो कविताएँ लिखी है। उनकी कुछ कविताओ के शीर्षक है—'फटा हुआ तकिया', 'हिन्द का आक्रदन', 'संतति का आनन्द', 'चित्र योगम्' (महाकाव्य), 'गॉव मे जाडा', 'न खाने को न पीने को', 'घुडसवार का गीत', 'माता का गौरव', 'नौका मे प्रवास', 'राधा का संतोष', 'कार्य के पदचिह्न', 'सावधान', 'युग भिक्षु', 'किसान', 'अद्वैत', 'मेरे गुरु' (गाधी जी), 'पुराना बरगद', 'पिशाची यज्ञ', 'जाति प्रथा', 'पगली', 'निराधारता', 'ओनम', 'बदला हुआ जमाना', 'उद्धव-सदेश', 'कोचु सीता', आदि। इनसे पता चलता है कि इनकी कविताओ के विषय कितने बहुमुखी हैं।

आपकी कविताएँ सस्कृत-मलयालम् मिश्रित 'मणिप्रवालम्' शैली मे सब प्रकार के छदो मे है। एक ओर वे 'पुराण' नाम की कविता मे कहते है—'हे पुराणो ! मै तुम्हे वदन करता हूँ। तुम तो भास कालिदासादि रत्नो के भडार हो। वेद के उच्च-शिखरो से बहते हुए निर्मल नीर हो। तुम्हारे क्षेत्र मे उपनिषद् उगे हैं। तुम विख्यात आर्यों के विजय की निशानी हो!' दूसरी ओर लोक-गीतो के विषय मे उन्होने कहा है कि "एक जमाने मे माता मलयाली भाषा बच्ची थी, वह इधर-उधर पॉजनियॉ बजाती दौडती रहती थी, तब उन दूध भीने होठो से जो गाने उसने गाये, वे आज भी कानो को मीठे लगते है। चाहे वे गॉव के गाने हो, पर शहरवासियो को अच्छे लगते है।"

इन्ही लोकगीतो से प्रेरित होकर कवि ने मलयाली गृह-जीवन के विषय मे एक गीत गाया है :

समुद्र के बडे मृदग के घोष ने रात की अन्तिम नौबत बजा दी।

मुर्गे ने अपने दरबे मे से गर्दन बाहर निकाली, रात की विदा देखकर, चोबदार की तरह पुकारना शुरू किया।

इसकी आवाज़ से ऊषा सुन्दरी जल्दी जाग गई और शुक्र के तारे का दीपक लेकर आगे आई।

उसने अम्बरशाला (नृत्य मदिर) में से गयी रात के बासी फूल (तारे) निकाल फेंके। ये फूल जमा करते हुए कंकणध्वनि की भांति पक्षियो का कलरव सुनाई दिया।

कस्तूरीवाली चॉद की थाली उसने दूर खीची और ऑगन मे पानी के छींटे बिखराये। वही ओसकण बने। उसने ललाट पर कुकुम लगाया और मंगल-कामना का विश्वास छोड़ा, वही फूलो का सौरभ बन गया।

इस तरह से इस ब्रह्माण्ड की ऊपर की और नीचे की मंजिल उजली बनी। इस तरह से हजारों ब्रह्माण्ड रोज प्रवृत्त होते हैं। हमें इनकी संचालिका महा-शक्ति को प्रणाम करना चाहिये।

वल्लथोल ने अपनी कविता में केरल के अछूतों के बारे में और देवदासी प्रथा के बारे में बहुत कुछ कहा है। मलाबार में अस्पृश्यता कितने भयंकर रूप में फैली है, इसकी चर्चा 'नाव में प्रवास' नामक लेख में वह करता है :

जिस भूमि में ऋषियों में उत्तम व्यास मुनि मछली के पेट से जन्मे थे, वहीं आदमी आदमी से छू जाय तो पाप कहलाता है!

हमारे पुरखे जब आजाद थे तो निर्बलों की रक्षा के लिए हथियार धारण करते, और आज हम गुलाम हैं तो अपने गरीब बन्धुओं को और भी कंगाल बनाकर छोड़ रहे हैं!

'देवदासी' पर अपनी लम्बी पद्यमयी आख्यायिका में वल्लथोल कहते हैं—'हे आर्य भूमि! यह तो तेरी यशस्वी परम्परा है! रणभूमि पर से निष्काम की दुंदुभि-ध्वनि सुनी थी। तेरी जमीन पर जंगली झोंपड़ियों में से ब्राह्मणत्व फैला था। अरे, तेरे वेश्या-बाड़ी में से भी पवित्रता का सौरभ जाग उठा है!...

शराब से भरे पात्र पर गंगाजल का नाम खुदा हुआ है। अनाड़ी यों ही तो फँसते हैं। 'देवदासी' नाम भी ऐसा ही है।

अँधेरा तो हमेशा ही कहेगा कि प्रकाश तो किसी राक्षस की क्रोधी-दृष्टि है। फिर भी प्रकाश तो प्रकाश ही है। हे सत्य! तू तो सदा और सर्वत्र सत्य ही है।

वल्लथोल की रचनाओं का यह संक्षिप्त परिचय इस आशा से दिया जा रहा है कि उनकी रचनाओं का और अनुवाद राष्ट्रभाषा में हो।

: २३ :

दे. कृष्ण शास्त्री (तेलुगु)*****

आधुनिक तेलुगु कविता का सूत्रपात्र राममूर्ति पंतुलु ने किया। उन्ही के समकालीन श्री गुरुजाड अप्पारावजी के मुक्तक-काव्य आज के कवि का पथ-प्रदर्शन कर रहे है। उनका नाटक "कन्या-शुल्क" ने तो अमर-कीर्ति पाई है। श्री अप्पारावजी के अलावा श्रीरायप्रोलु सुब्बारावजी भी अपनी मौलिक रचनाओ के कारण आज के काव्य-निर्माताओ के लिए आदर्श बने है। इन नये कवियो के एक समूह के लिए श्री तल्लाकज्झल शिवशकर शास्त्री-जी गुरुतुल्य बने हैं, तो दूसरे समूह के लिए कवि सम्राट् विश्वनाथ सत्यनारायण गुरुतुल्य हैं।

श्री देकुलपल्लि कृष्णशास्त्री अपनी काव्य-माधुरी के लिए प्रसिद्ध हैं। सैकडो की सख्या मे युवक-कवि आज आन्ध्रदेश मे पाये जाते हैं। उनमे प्रधान-प्रधान कवियो के नाम गिनाने के लिए भी काफी समय चाहिए। फिर भी कुछ लोगो का परिचय कराना आवश्यक है। वेकट-पार्वतीश्वर यमल कवि हैं। ऐसे ही काट्ठुरि वेकटेश्वर-पिंगलिलक्ष्मीकातम् यमल कवि हैं। कवि कोकिल दुव्वूरि-रामिरेड्डी, त्रिपुरनेनि रामस्वामी चौधरी, तुम्मुल सीताराममूर्ति चौधरी, जोपुआ आदि प्रसिद्ध आधुनिक कवि है। चालीस-पचास तक कवयित्रियाँ भी हैं। नडुरि सुब्बारावजी के 'येकि पाटलु' ने जन-मन को बहुत आकर्षित किया है। बाल-साहित्य ने भी आज तेलुगु मे काफी उन्नति पाई है।

तेलुगु-साहित्य की एक विशेषता है। इसमे अष्टावधान, शतावधान तथा आशुकवित्व की प्रधानता है। यह तेलुगु की अवधानी सम्पत्ति है। श्री भाडभूमि

वेंकटाचारी सर्वप्रथम व ख्यातिप्राप्त अवधानी थे। देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री-जी के पिता व चाचा, रायकृष्ण यमल कवि और कोप्परपु भाई आदि इस आशु-कविता मे ख्यातनामा थे। किन्तु इनमें सर्व-प्रथम व विशेष ख्यातिप्राप्त कवि तिरुपति वैंकटेश्वर कवि थे। इन तिरुपति कवियो में एक चल्लपल्लि वेंकट शास्त्री जी मद्रास सरकार के सर्वप्रथम कविसार्वभौम (आस्थान कवि) थे। उनके दिवंगत होने के बाद दूसरे जिन्होंने कविसार्वभौम की पदवी पाई, वे कवि सार्वभौम महामहोपाध्याय कलाप्रपूर्ण श्रीश्रीपाद कृष्णमूर्ति शास्त्रीजी हैं।

इन दोनो कवियो की साहित्यिक विचार-पद्धति मे भिन्नता है। श्री वेंकट शास्त्रीजी श्री राममूर्तिपंतुलुजी के सिद्धान्त को मानने वाले थे और उन्होंने उसी तरह की प्रचलित भाषा मे जन-मन को प्रिय लगने वाले साहित्य का निर्माण किया। और आज के अनेक युवक-कवियो के लिए गुरुतुल्य थे।

श्रीश्रीपाद कृष्णमूर्तिशास्त्रीजी प्राचीन सनातनी ढग के अनुयायी है। इन्होंने अकेले ही रामायण, भारत और भागवत का पद्यमय अनुवाद संस्कृत से तेलुगु मे किया है। इनकी करीब १५० कृतियाँ आज तेलगु-साहित्य मे प्रतिष्ठित है।

आज के कवि सार्वभौम, श्रीश्रीपाद कृष्णमूर्ति के अनुयायियो में कड़पा-जिला के जनमंत्रि शेषाद्रि शर्मा और गडियारे वेंकट शेषय्या आदि अनेक कवि काफी प्रसिद्ध है।

तेलिंगाना के गोलकोंडा प्रदेश मे आज ३०० कवि मौजूद हैं। सक्षेप में यह कह सकते हैं कि आज आन्ध्रदेश काव्योचित प्रतिभा से परिपूर्ण है। इस प्रतिभा का प्रवाह विशेष रूप से राष्ट्रीय जागरण को लिए हुए काव्य-निर्माण करने मे पूजीवादी समाजतंत्र के विरुद्ध जन-जागरण का प्रतीक बनकर दीन-दुखियो की सहानुभूति से अनुप्राणित हुआ है। आज तेलुगु-साहित्य उस जनता के जीवन को प्रतिबिंबित करने वाला दर्पण है।

डाक्टर जी. वी. सीतापति के शब्दो में यह सक्षिप्त परिचय इस बात का साक्षी है कि तेलुगु कविता कितनी समुन्नत है।

आधुनिक तेलुगु कवियो में श्री देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्रीजी का स्थान काफी समुन्नत है। आपके काव्य-जीवन के प्रधान-आकर्षण हैं— स्वतंत्रता की भावना, दुःखवाद, अमलिन प्रेम-तत्व, जीवन की विषमताओ के साथ समन्वय-स्थापन तथा भगवान की अनन्त सत्ता के समुख करुण आत्म-निवेदन। इनकी काव्य-साधना का अध्यात्म-पक्ष कवीन्द्र रवीन्द्र की ब्रह्मसमाजी

विचार-धारा से प्रभावित है। श्री कृष्ण शास्त्री तेलुगु, सस्कृत तथा अंग्रेजी वाङ्मय के अच्छे ज्ञाता है। भावाभिव्यजना के अनुरूप शब्द-चयन तथा उनका औचित्यपूर्ण प्रयोग इनकी रचना-शैली की विशेषताये हैं। इन्होने कई फुटकर गीत तथा खड-काव्य रचे है। अब तक इनके तीन सग्रह निकले है—'कृष्ण पक्षमु' 'प्रवासमु' तथा 'ऊर्वशी।'

श्री देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री की कुछ रचनाएँ अपने मित्र प्रो. वारणासि राममूर्ति 'रेणु' के अनुवाद के साथ दे रहा हूँ: अपनी लब्ध-प्रतिष्ठ रचना 'कृष्ण पक्षमु' की प्रारम्भिक पक्तियो मे ही कवि ने अपने स्वतन्त्रता-प्रेम का परिचय इस प्रकार दिया है:

आकुलो आकुनै पूवुलो बूवुनै,
कोम्मलो कोम्मनै, नुनुलेत रेम्मनै,
ई यडवि दागिपोना—यट्लैन—
निचटने आगि पोना ?
'क्या यहीं मैं ठहर जाऊँ ?
यत्न कर जैसे बने, वन-प्रांत में
छिप-छहर जाऊँ ?
पात मे बन पात, सुम (न) मे सुमन बन
उन्मन क्षणों में,
शाख में शाखा, तथा टहनी बने
मृदु टहनियों मे,
यत्न कर जैसे बने, वन-प्रांत में
छिप-छहर जाऊँ ?
क्या यहीं मैं ठहर जाऊँ ?
सरसराते लघु पवन की, लोल लघुतर
लहर बन इक,
झरझराते स्रोत के मधुगीत की
मृदु तान बन इक,
यत्न कर जैसे बने, वन-प्रांत में
मधुप बन छिप विद्रुमों-से सहज
पल्लव के पुटों में,
मुग्ध-मोहन लाज बन सुम (न) बालिका

के दृग-पुटों मे,
यत्न कर जैसे बने, वन-प्रांत मे
पेड पर चढ, दूर नील पहाड पर बढ
कुछ विलंबित,
गगनचारी बादलों की नीलिमा-लज्जा
बने रे !
यत्न कर जैसे बने, वन-प्रांत में
भूख की और प्यास की दुःख-दर्द की
चिन्ता कहाँ तब ?
छोड सब, एकांत में उन्मत्त-सा जब
घूमता हूँ !
धुन यही, जैसे बने वन-प्रांत मे
छिप-छहर जाऊँ !
क्या यहीं मैं ठहर जाऊँ ?

स्वातन्त्र्य-गीत

तिमिर वल्लियों मे भी तारक-सुमन सुविकसित करके,
कठिन शिलाओं में नव-जीवन छटा-प्रस्फुटन भर के,
शुष्क ठूठ में भी नव कोंपल उगा प्रेम-स्वर भर के,
स्वेच्छा गान स्रोत भर दूँगा,अग जग प्लावित करके।
विषम दास्य, क्रूरता, कुटिलता की बनावटी कड़ियाँ,
छिन्न-भिन्न हो जायें; लगें तब शुद्ध प्रीति की झड़ियाँ,
गगनांचल गुञ्जार कर उठे; यों स्वर उन्नत करके,
स्वेच्छा-गान स्रोत भर दूँगा अग-जग प्लावित करके।
भय उपजाने वाली कष्टातप की आँच भुला कर,
श्रांति-क्लांति देने वाला चिता-तम-तोम भुला कर,
परवश होकर विश्व गा उठे, मेरे स्वर में स्वर भर के !
स्वेच्छा-गान स्रोत भर दूँगा, अग-जग प्लावित कर के !

क्यों शरमाऊँ ? डर जाऊँ ?
जग हँसे, स्वेच्छया मैं गाऊँ !

कल विहंग-पत्तों पर उड कर,
तारक-मणियों में तारा बन,
मिल जाऊँ निज मधु गानो मे !
मिट जाऊँ निज मधु तानों मे !
क्यों शरमाऊँ ? डर जाऊं ?

बादल की नावो पर चढ़ कर
नभ में विहर, चमक विद्युत् सा,
झरूँ बूंद बन शोर मचाते !
गिरूँ भूमि पर गाते गाते !
क्यो शरमाऊँ ? डर जाऊँ ?

मेघों में चन्दा से हिलमिल
आँख-मिचौनी खेल खेल कर,
उतरूँ नहीं, नहीं, मैं दिव से !
उजड़ूँ नहीं, नहीं, गिर भुवि मे !
क्यों शरमाऊँ ? डर जाऊँ ?

लघु मीनों से, लघु बूंदो से,
नव-मुक्ताओ सग नाच कर,
जलनिधि के हृदयांतराल मे,
मिल जाऊँगा, स्वत्व गँवा कर !
क्यो शरमाऊँ ? डर जाऊँ ?

दौड़ दौड पीछे समीर के,
डालों मे पत्तो मे घुस कर,
परम-रहस्य उस प्रणय सूत्र का
परिचालित कर दूँगा, छूक कर !
क्यों शरमाऊँ ? डर जाऊँ ?

सुम (न) बाला को छेड़-छेड़ कर,
गाकर, अन्यों को पुलकित कर,
लाज भगा कर, इक मुग्धा की,
प्रौढा से बातें कर मधु-सी,
नव नव मधु गट-गट पीने को,
पी पी, झूम झूम उठने को,

फूल फूल पर, फूल फूल कर
बढ़ बढ़ कर उड़ उड़ जाऊँगा!
क्यों शरमाऊँ? डर जाऊँ?

चिड़िया बनूं, बनूं लघु तारा,
मधुप बनूंगा, मधुघट चन्दा,
बादल बनूँ, बनूँ छवि चपला
फूल बनूँ, मृदु पल्लव बाला!
बनूँ पहाडी झरना 'छलछल!'
बन मधुगीत मचा दूँ हलचल!
पवन बन पयोधि लहर इक,
कब, कैसे, क्यों, कहाँ न जाने,
रूप बदल कर रंग बदल कर,
छिप जाऊँगा! खप जाऊँगा!
क्यों शरमाऊँ? डर जाऊँ?
जग हँसे, स्वेच्छया मैं गाऊँ?

और एक कविता मे दुख की अनुभूति व्यक्त है: शीर्षक है—'क्रूरार्ककिरण':

कह नहीं सकता वह कैसे हुआ, तब
पत्तों औ' पल्लवो की गलियों से उतर पड़ी,
एक क्रूर अर्क-किरण; तुरत जमीन पर गिर कर
मेरा गुलाब झड गया, मुझे छोड़ गया!
तब मेरी तरफ, मेरी प्रसून-रहित उस
सूने ठूंठ की तरफ देख कर, एक
कोकिला रो पड़ी, ऊँची तान में, 'कुहू!'
हमारे लिए राह चलते एक मंद पवन ने,
एक करुणापूर्ण 'आह!' झल दी!

इस प्रकार कवि के जीवन के साथ दुःख का रसार्द्र सम्बन्ध ज्यों ही जुड़ गया, उनकी अन्तर्वीणा के तार खिंच चले; उनसे कोई नई अनोखी ही रागिनी निकल पड़ी। नूतन संगीत से विलोडित वह जीवन स्वय कवि को विचित्र-सा लगा। उसके किनारे खड़े हो, उसका स्वयं एक अंग हो, वे अपनी विस्मयान्वित अनुभूतियाँ प्रकट करते हैं:

निराला लगता है, मेरा जीवन मुझी को!—

स्निग्ध ज्योत्स्नांकुरों से, सूची-भेद्य तिमिर-जाल से;
अमल मोहन संगीत मे मैं सुनता हूँ,
हृदय-दलन-दारुण-रुदन-ध्वनियाँ !
टेढी चाल चलता हूँ, सीधी सड़क पर ही,
(और) खुली सडक के लिए झाँकता हूँ गलियाँ !
विष को अमृत और अमृत को विष-सा,
चित्र चित्र गतियों में बदल देता यह है जीवन !

किन्तु हृदय की यह द्वन्द्वात्मक स्थिति अधिक समय तक नही बनी रहती। उसका एक ही पहलू 'सूची-भेद्य तिमिरजाल' वाला ही रह जाता है। उसका शुक्ल-पक्ष तो बीत चला, अब तो कृष्ण-पक्ष ही उसका सर्वस्व बन गया है।

इस प्रकार दुःख की ज्वालाओ मे निरन्तर दग्ध होते रहने से, कवि उसके आदी हो जाते है; दुःख के साथ एक प्रकार का समझौता कर लेते हैं। उस अथाह सागर को अपने जीवनमथनी के मथ कर उसका सार, नवनीत ही निकाल लेते है। प्रेम के अपूर्व माप-दंड से उसकी थाह ले लेते है। इस भॉति दुःख की गहराइयो को थाह लेने पर, उसकी राई-रत्ती से अवगत हो जाने पर, उसके साथ आत्मीयता स्थापित कर लेने पर, कवि को उस दुःख मे भी तीव्र रसानुभूति होने लगती है। हलाहल से अमृत की भॉति दुःख से प्रेम का सृजन हो उठता है। उनका अशांत हृदय सर्वत्र शान्ति का अन्वेषण करता रहता है। निदान सारा विश्व उन्हे विश्राम एव शान्ति का आलय लगता है—प्रकृति का पूर्व दुखद रूप एकदम बदल जाता है—वे गाते हैं :

नीलाभ्र-सरसिलो निंडु जाबिल्लि
रायंच वले विहारमु सल्पुचुंडे;
कम्म तेम्मेरलु शाखा पत्रमुलनो
कल्लोलिनी-तरंगमुलनो डागे;
नाट्यंबु मधुर गानंबुनु मानि,
गार्टपु निद्दुर गांचे शैवलनि,
सर्वेश्वरुनि हस्त-जलज-युग्ममुन,
विश्व में हाइगा विश्रांति जेंदे !

अनुवाद :

नीलाभ्र-सरसी मे पूर्ण चन्द्रमा
राजहंस की तरह विहार करता है;

सुरभित पवनोर्मियाँ, शाखाओं, पत्रों
अथवा कल्लोलिनी-वीचियों मे जा छिपी हैं,
शैवलिनी निज नाट्य औ' मधुर संगीत तज
प्रगाढ नींद मे मगन है।
सर्वेश्वर के हस्त-जलज-युग्म मे
समूचा विश्व ही सुख से विश्राम कर रहा है।

फिर कोमल-मेघ-शकलो के किनारों पर लास्य करने वाले, दूज के चाँद की मुसकानों के शीतल गान, प्रातःकाल पूर्व-गगनांचल में फूट निकलने वाले स्वर्णिल प्रकाशपथों से होकर अगजग को प्लावित करने वाले तुहिनाश्रुगीत, कबूतरों के कोमल हिंडोले-जैसे डैनों के किनारों से झरने वाले पावन-पवन गान, जूही-बाला की तंद्रिल-पखुड़ियों से छन कर बहने वाले सौरभ के स्वप्न-गीत, यह सभी मिल उनके दुःख-दग्ध और विदीर्ण अन्तस्तल को दौंगडे की भाँति सरस व श्यामल बनाते है। प्रेम के उस पारस-स्पर्श से कवि के बाह्यन्तर चमत्कृत हो उठते हैं! और वे विस्मय विमुग्ध नेत्रों से प्रश्न कर बैठते है :

सौरभमुलेल चिम्मु पुष्पव्रजबु ?
चन्द्रिकल नेल वेद्जल्लु चन्दमाम ?
एल सलिलंबु पारु ? गाड्पेल विसरु ?
मावि गुन्न कोम्मनु मधुमास वेल
बल्लवमु मेक्कि कोयिल पाडुटेल ?

अनुवाद :

सौरभ क्यो बहा देता है, सुमन-समूह ?
चद्रिका क्यों बिखेरता है, चद्रमा ?
सलिल बहता क्यो ? पवन का प्रसार किस लिए ?
पल्लवो से पेट भर कर, 'अंबुआ की डाली' से
मधुऋतु मे कोयल गाती किस लिए ?

कवि का यह प्रगाढ विश्वास अत्यन्त मनोहारी है :

कलुष-दुर्दान्त-पंक-संकलित कुहरों से
निकलने वाली मेरी मलिन अश्रुधारा,
हे स्वामिन् ! भवदीय चरणों पर बह कर
परम-पावनी जाह्नवी की शोभा को प्राप्त करेगी !

जिस व्यक्ति का जीवन-शकट विश्वास की इस भव्य धुरी के सहारे चलता

हो, उसके आगे गतिरोध उपस्थित होगा ही कैसे ? यदि वैसा प्राणी भगवान् के चरणों पर, उनकी असीम अनुकंपा के लिए कोई भेंट-श्रद्धाजलि-चढाना चाहता हो, तो उसके लिए आँसू से बढ़ कर कौन उपयुक्त वस्तु हो सकती है ?

स्वामिन् ! प्रगाढ़ लज्जानुपात-संकलित हृदय
नीरज-पटलों से झडने वाले अश्रु-बिन्दु
को छोड़ तुझे और कौन चीज भेंट दे सकूँगा,
(जिससे कि) दिल की साध पूरी हो सके,
अन्तर का प्रेम पनप सके और सभी चिन्ताओं से मुझे छुटकारा प्राप्त हो सके ?

यही परम-विश्वास श्री कृष्ण शास्त्री के काव्य-जीवन का चरम-लक्ष्य है ।

: २४ :

द. रा. बेन्द्रे (कन्नड)*********

कर्नाटक के श्रेष्ठ-कवि श्रीदत्तात्रेय रामचन्द्र बेन्द्रे की मातृ-भाषा मराठी है परंतु लेखन की भाषा कन्नड है। आपके व्यक्तित्व और काव्य का परिचय देने से पहले कन्नड काव्य-परंपरा को समझ लेना उपयुक्त होगा।

कन्नड का समग्र उपलब्ध प्रथम ग्रंथ है 'कविराज मार्ग'। इसका कर्ता राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष नृपतुंग था। इसका काल ईसा की नौवीं शती है। ईसा की पाँचवी शती के बाद का शिलालेखीय कन्नड वाङ्मय मिलता है। कानडी का प्रख्यात आदि-कवि पंप है। 'भारत' और 'आदि-पुराण' यह दो काव्य उसने लिखे। आदिपुराण का रस 'शाँत' है। उलटे 'भारत' वीर-रस प्रधान रचना है। दसवीं शती में रन्न और पोन्न नाम के दो कवि चक्रवर्ती राष्ट्रकूट और चालुक्य राज्यो में विख्यात हुए। ग्यारहवीं शती में 'कादंबरी' और 'पंचतंत्र' के चम्पू रूप में अनुवाद कन्नड में हुए। बारहवीं शती में दक्षिण कर्नाटक में रामानुजाचार्य ने अपना वैष्णव पंथ स्थापित किया। और उत्तर में हैदराबाद राज्य के कल्याण प्रान्त में फलचूर्य वश का बिज्जल राजा राज्य करता था। तब बसवेश्वर, अल्लमप्रभु सिद्धराम, महादेवी, चन्नबसव इत्यादि वीर शैवधर्मीय संतो ने नया सम्प्रदाय शुरू किया, जो अब तक चल रहा है। बसवेश्वर के वचनो का अंग्रेजी अनुवाद भी हाल मे प्रकाशित हुआ है। इसी शती के अंत में मध्वाचार्य ने अपने मत का प्रचार कर्नाटक में किया, जिसके फलस्वरूप १६वी शती मे कनकदास, व्यासराय स्वामी आदि ने श्रीकृष्ण-विट्ठल-भक्ति का प्रचार किया।

कुमार व्यास के तुल्यबल वीर शैव कवि हरिहर ने रघटा छंद मे अनेक सत-चरित्र लिखे हैं। उनमे बसवेश्वर और नंबियण्णा के चरित्र बहुत सुन्दर हैं। बसवेश्वर के आध्यात्मिक गुरु अल्लमप्रभु की जीवनी 'शून्यसंपादन' नामक संवादात्मक गद्यकाव्य में, और प्रभुलिंगलीला नामक पद्यकाव्य मे बहुत मार्मिक रीति से वर्णित है। इन काव्यो के अल्लमप्रभु, कुमार व्यास के काव्य के श्रीकृष्ण, और रत्ना की सिद्ध कवि के 'भरनेशवैभव' नामक सांगत्य छंद के महाकाव्य का नायक भरत चक्रवर्ती यह तीन व्यक्ति दत्तात्रेय की भॉति एक देह और त्रिमुख हैं। सर्वज्ञ कवि के हास्य रस से पूर्ण सुभाषित, पुरदरदास के नर्तनोद्दीपक गीत, भक्तिरस प्रदीपक और नवरस रुचिर लक्ष्मीश कवि का लिखा हुआ 'जैमिनी भारत' नामक छोटा महाकाव्य आदि रचनाओ से विजयनगर के साम्राज्य मे साहित्य का वासतिक वैभव दिखायी देता है।

शिवाजी के समकालीन मैसूर के राजा कंठीरव और चिक्क देवराज के समय भाट-चारणो की शैली मे 'कंठीरव-चरित्र', चिक्क देवराजा की उत्कट भक्ति से भरी प्रार्थनाऍ, वन्नम्मा नामक कवियित्री का गृहिणी को गौरवान्वित करने वाला काव्य, षडक्षरी कवियो के शैवभक्ति से भरे काव्य भी इसी काल की कृतियॉ हैं। परन्तु अंग्रेजो के आगमन के बाद, टीपू सुलतान और दूसरे बाजीराव के पराजय के बाद, कर्नाटक का भी सांस्कृतिक विघटन आरम्भ हुआ। सास्कृतिक और राष्ट्रीय जागृति बहुत बाद मे हुई। यानी १६१४ मे कर्नाटक साहित्य-परिषद् की स्थापना के बाद साहित्य के सब क्षेत्रों मे विपुल और गुण-भार युक्त रचनाऍ इधर हुई हैं। कवियो में प्रो. के. वी. पुटप्पा, प्रिंसिपल गोकाक, पी. टी. नरसिंहाचार्य और द. रा. बेन्द्रे प्रमुख हैं। शराबी के गाने के लिए राजरत्न, आध्यात्मिक काव्य के लिए मधुर चेन्न, घरेलू गानो के लिए नरसिंह मूर्ति और कवयित्रियो में भारती कर्नाटक मे सर्वत्र प्रसिद्ध है।

भास्कर गोविन्द गोखले ने 'अभिरुचि' (जुलाई ४६) मे बेन्द्रे का एक रेखाचित्र प्रस्तुत किया है। उसका सारानुवाद मै यहॉ दे रहा हूँ :

''बेलगॉव के कन्नड साहित्य-सम्मेलन में कविता पढने के लिए व्यासपीठ पर एक साफा बॉंधे नयी वामनमूर्ति आई। उसने अपनी 'हक्की हारुत्तिदे नोडिदिरा' (पक्षी ऊँचे उड़ रहा है, देखा है!) कविता पढ़ी। काल को एक प्रचंड विहंगम मानकर यह कविता लिखी गयी है। इस कविता को प्रत्येक श्रोता ने लिख लिया। तब से कर्नाटक मे उनकी कीर्ति फैली। 'कुणियोनु बार' (चलो, नाचें) यह कविता अत्यन्त लोकप्रिय है।''

बेन्द्रे का जन्म धारवाड़ में १७-२-१८६७ मे हुआ। बचपन में पितृवियोग हुआ। माँ और नानी ने अत्यन्त कष्ट सहन करके उनकी शिक्षा पूरी की। ऊँची शिक्षा के लिए वे पूना गये। वहाँ से वे फर्गुसन कालिज से बी. ए. हुए। सरकारी नौकरी उन्होने नही की। वे एक विख्यात अध्यापक हैं। कर्नाटक मे उन्हे 'मास्टर जी' के नाम से सब जानते हैं। धारवाड़ में अध्यापक बनकर वे आये तब उन्होने 'गेलेयर गुंपु' (मित्र-मंडली) नाम से एक सस्था स्थापित की। इसी समय 'स्वधर्म' और 'जय कर्नाटक' नाम से दो मासिक पत्र चलाये। बेन्द्रे ने आजीवन काव्य-साधना की। और विरोधी परिस्थितियों से बराबर जूझते रहे। वे केवल कवि नहीं, पर सहृदय आलोचक, प्राचीन कन्नड के संशोधक, लघुनिबंध लेखक, एकांकीकार, समाजशास्त्रज्ञ हैं। १६४६ मे वे कर्नाटक साहित्य-सम्मेलन के सभापति चुने गये। वहाँ 'साहित्य का विराट स्वरूप' नामक भाषण उन्होने दिया।

गरी, मूर्ति, नादलीले, कृष्णा कुमारी (खडकाव्य), उरयाले, सखीगीत नाम से उनके काव्य-सग्रह प्रकाशित हैं। कन्नड मासिको मे भी उनके बहुत से गीत प्रकाशित होते हैं। उनकी कई कविताएँ अप्रकाशित है। मेघदूत का बड़ा सुन्दर और सरस अनुवाद उन्होने कन्नड मे किया है। प्रोफेसर रा. द. रमडे के 'कस्ट्रक्टिव सर्वे आफ उपनिषदिक फिलॉसफी' का अनुवाद उन्होने और श्री रंगनाथ दिवाकर ने मिलकर किया है। उनका एक बड़ा ग्रथ 'साहित्य और विमर्श' है, जिसमें उनके आलोचनात्मक लेख सगृहीत हैं। 'साहित्य सशोधन' में पुराने ग्रथों का परीक्षण है।

सैकड़ो व्याख्यानों से जितना प्रचार नहीं होगा उतना 'तुत्तिन चीला' (चावल की बोरी) नामक उनकी कविता से हुआ। इस कविता में काजी नज़रुल इस्लाम की बगाली कविता 'विद्रोही' या 'जोश' मलीहाबादी की कविता 'इन्सानियत का कोरस' जैसी जान है। कविता के अत में वे कहते हैं—"देवताओ की कब्र बनाकर, धर्म का धूप जलाकर, प्राणो की घन्टी बजाकर, मृत्यु की वेदना से तिलमिला कर सारी पृथ्वी मैं खा जाऊँगा, ऐसी गर्जना गरीबो के पेट मे का, अन्दर का, एक-एक आवाज कर रहा है।"

कौओ को पेड पर नाचते देखकर उन्होंने कुणि योणु बा रऽ (आओ, नाचें) नाम की एक सुन्दर कविता है। जीवन भी एक नृत्य ही है, यह उसमें की मध्यवर्ती कल्पना है। 'हुबलीयावा' (हुबली का) नाम की कविता में वेश्या जीवन का विषय है। वेश्याएँ भी स्त्री सुलभ एकनिष्ठ प्रेम कर सकती हैं। यह इस

कविता मे चित्रित है। प्रकृति-चित्रण पर अनेक कविताएँ उन्होने लिखी है, जिनमे 'श्रावण अभा' बहुत प्रसिद्ध है। 'रुद्रवीणे' कविता मे मराठी कवि तांबे के 'रुद्र का आवाहन' जैसा वीर-रस है। जिस कविता से उन्हे कारावास, नजरबन्दी और देशनिकाला मिला, उस 'नरबलि' कविता मे वे कहते हैं—"कोई मुर्गी मारे तो गुस्सा आता है, बकरी मारी तो शिकायत होती है, परन्तु मनुष्य को मारें तो? कौन पूछता है-कौन पूछता है? वही 'शुद्ध' कालीदेवी की पूजा होती है। लोग इसी को युद्ध कहते हैं।" जेल मे उन्होने 'हसराणी' नामक विनोदी कविता, जेल के सब पत्तो के साग पर लिखी।

मुवत्तमूरु कोटी (तैंतीस करोड) नामक कविता मे भारत-माता पृथ्वी-माता को अपना दुखड़ा सुना रही है। "यही है मेरे बालक? कुछ पागल, कुछ मूर्ख, कुछ लड़ने वाले, कुछ अबला, कुछ अछूत—वैसे गिनती मे तैंतीस करोड! कितने सोहर, कितने प्रसुति के कष्ट! ये कुछ कर गुजरेंगे इस आशा से मैने इन्हे स्तनपान कराया और दुनिया मे भेजा। परन्तु अनुभव यह मिला कि मेरी पुकार कभी तुम्हे सुनाई देती है?" इसी प्रकार की एक कविता 'कनसी नल्लोदु कनसु' (स्वप्न मे स्वप्न) है। त्याग के बिना कोई आदर्श उपलब्ध नही होता। कन्नड भाषा और प्रांत का पुनरुज्जीवन होने वाला हो तो आत्यतिक त्याग आवश्यक है—यही इस कविता का मुख्य स्वर है। 'उय्याले' (झूला) सग्रह में उनके सॉनेट हैं। सखी-गीत आत्मचरित जैसा खडकाव्य है। 'नन्नहाडु' (मेरा गाना) कविता मे वे अपने जीवन का दर्शन-सार देते है। सामरस्य उनके जीवन का प्रधान ध्येय है।

'अंबिकातनय दत्त' उनका कवि-नाम है। इस क्रान्तिदर्शी कवि पर प्रिं० गोकाक ने 'त्रिवेणी' त्रैमासिक मे 'बेंद्रे एण्ड हिज पोएट्री' नामक रसलतापूर्ण समीक्षा लेख लिखा है। अंगरेजी मे प्रिं. मेनेजीस ने उनके अनुवाद किये है। अपनी कविता की स्फूर्ति का मूल-स्रोत वे अपनी माता की दरिद्रता मे मानते हैं।

उनकी एक कविता का अनुवाद नीचे दिया जा रहा है :

हवा के झोंके खुले
उसी मे नव-दृष्टि फूली
उस स्पर्श से हृदय झूम उठा
हाँ! हाँ! आकाश मानो झूमने लगा!
नेत्रों ने रँगा

श्वासों ने नृत्य दिया
नाम के लिये लज्जित हुआ
—काव्य बना !
उनके वे वज्रबोल
रूखे हृदय में गहरे घुसे
निद्य जीभ जलाकर
झूठ को भगाकर
दु:खपर वे नाचे
गर्वी सिर को कुचलते हुए !
—गोल दृष्टि नाप
स्वर्ग नरक व्यापी
अँतड़ियों से बोला
सौख्य के साथ डोला,
सुप्त सुमन में दंग होकर
प्रेम-प्रेम मे रंग गया
प्राणों का छत्ता भर आया
काव्य और गीत में डूब गया
गीत लहरी उपड़ी
तारे भी खिलखिलाये,
भूमिपर ऋतु खेला
सूर्य चन्द्र पर आसक्त हुआ !
प्राण प्राणों से खिंच गये
सब ओतप्रोत होकर
वे एक दूसरे में रस उँडेलते हैं।

गुजराती कवि

नान्हालाल
सुन्दरम्
उमाशंकर जोशी

: २५ :

नान्हालाल

राज ! कोई वसंत ल्यो, वसंत ल्यो !

हाँ रे ! म्हारी क्यारी माँ एक महक महकी ।

हो राज ! कोई वसन्त ल्यो, वसन्त ल्यो !!

राज ! देव देवी सोहाग लेवा आवे

हाय रे मीठी स्नेहनी बंसरी बजावे

हो राज ! कोई वसन्त ल्यो, वसन्त ल्यो !!

'वसंतोत्सव' नामक नान्हालाल दलपतराय कवि के खंड-काव्य का यह एक उद्धरण है। जिसका अर्थ है—"कोई वसन्त लो जी वसन्त! हमारी पुष्प-वाटिका मे सौरभ महक रहा है । वसंत लो जी वसंत ! स्वयम् देव और देवागनाएँ इस समय यहाँ आई हैं और प्रेम की मधुर मुरली बजा रही हैं। कोई वसंत लो जी वसंत !!" सुमित्रानंदन पंत की 'लाई हूँ फूलों का हार, लोगी मोल, लोगी मोल !' की याद दिलाने वाली पंक्तियाँ पूना के डेक्कन कालिज में कवि नान्हालाल बी. ए. मे पढ़ते थे, तब रची हैं, अपनी वय के इक्कीसवें वर्ष में। नान्हालाल के साथ-साथ आधुनिक गुजराती कविता में अद्भुतरम्य (रोमैंटिक के लिए गुजराती प्रतिशब्द) भावनोत्कट-काव्य का युग आरम्भ हुआ ।

नान्हालाल की कविता के रसग्रहण से पहले गुजराती काव्यसाहित्य की परम्परा का एक रेखाचित्र देना उपयुक्त होगा। प्राचीन गुजराती कवियो में मीराबाई और नरसी मेहता इन दो कृष्ण भक्त-कवियों का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। मीरा राजस्थानी भाषा की कवयित्री है। परन्तु द्वारिका

के डाकोरजी के दर्शन के बाद वह गुजरात मे भी उतनी ही लोकप्रिय हैं जितना हिंदी-भाषी प्रान्तो मे। गुजराती साहित्य मे सुविधानुसार मीरा की राजस्थानी को बदल कर गुजराती शब्दयुक्त बना दिया गया है, जो मीरा के साथ अन्याय है। नरसी मेहता के पचास-साठ उपदेश पर पद मिलते है, जिनमे गाँधीजी का प्रिय प्रसिद्ध 'वैष्णव जन तो तेणे कहिये' पद है। उसकी शेष कविता कृष्ण और गोपी के रासलीला के प्रेमगीतो से भरी हुई है। रासलीला का प्रत्यक्ष दर्शन नरसी को हुआ था। उस समय मशाल हाथ मे लेकर खडे होने का काम उसे मिला था, ऐसी जनश्रुति है। नरसी मेहता की रचना मे गुजराती की स्वाभाविक ओजस्विता सहज-व्यक्त होती है।

इनके बाद 'आखा' नामक अहमदाबाद का सुनार वेदाती-कवि हो गया। कबीर की भाँति ज्ञानयोगी होते हुए इस कवि ने समाज के दभ और अनाचार पर तीव्र चाबुक-प्रहार किया है। 'आखो' पर उमाशंकर जोशी ने एक समीक्षा-ग्रथ (मोनोग्राफ) लिखा है। आखो के बाद विपुल रचना करने वाला गुजराती वैष्णव भक्त कवि है प्रेमानन्द। प्रेमानन्द ने एक कवि-मडल अपने आसपास जमा किया और तुलसी के अनेक ग्रथो की भाति या मराठी के मोरोपन्त के विपुल लेखन-सभार की भाति प्रेमानन्द की भी रचनाएँ गुजराती मे सख्या मे सर्वाधिक मानी जाती है। प्रेमानन्द कथावाचक था। उसने असंख्य पौराणिक आख्यान लिखे है। ग्रामीण जनता के सुख-दुःख को उन्ही की भाषा मे व्यक्त करने की उसकी शक्ति अद्भुत थी। इसी प्रेमजीवन का विस्तार दयाराम ने किया। दयाराम गुजराती का सूरदास है। वैष्णव-सम्प्रदाय की मधुरा भक्ति का विकास परमोच्चबिंद पर दयाराम मे पहुँचा।

आधुनिक गुजराती कविता का आरम्भ नर्मद कवि से होता है। नर्मदाशकर हिंदी के मैथिलीशरण, उर्दू के हाली, मराठी के केशवसुत और बॅगला के नवीन-चन्द्रसेन की भाति राष्ट्रीय वृत्ति के वीर-कवि थे। उनकी स्मृति मे एक पुतला सूरत शहर में बनाया गया है। नर्मद प्राचीन गौरव-गाथा के गायक और समाज-सुधारक थे। प्रार्थनासमाज का प्रभाव भी गुजराती पर पड़ा। आधुनिक युग के अन्य श्रेष्ट कवियो मे काठियावाड का रगीला राजपुत्र-कवि कलापी और उसी का समकालीन कान्त है। कलापी ने उर्दू गजलो को अपनाया और उत्कट प्रणय-गीतो की रचना की। इसी कारण से कलापी बहुत लोकप्रिय गुजराती कवि बने। उनके कई गजल जैसे 'ज्यां ज्यां नजर म्हारी ठरे, यादी भरी त्यां आपनी!' गॉव-गॉव में गाई जाती है। कान्त की रचना संख्या में कलापी से

कम, परन्तु गुणो मे श्रेष्ठ है। उनकी 'वसत विजय' कविता के विषय में कालेलकर ने कहा—है 'मनुष्यस्वभाव की निर्बलता और गुजराती भाषा की सबलता दोनो एक साथ इस कविता मे व्यक्त हुई हैं।' आधुनिक गुजराती कविता के निर्माताओ में कवि नरसिंहराम दिवेरिया और पारसी गुजराती के राष्ट्रीय-वृत्ति के ओजस्वी कवि अर्देसर क्रामजी 'खबरदार' का नाम भी गौरव से लिया जाता है।

'रास-युग-प्रवर्तक' कवि नान्हालाल का जन्म १८७७ ईस्वी मे हुआ। इनके पिता दलपतराम भी एक प्रसिद्ध प्राचीन-पद्धति के कवि थे। यो 'कवि' वशनाम के इन पिता-पुत्र कवियो से बाणभट्ट और उनके पुत्र या चंद और उसके पुत्र की याद आती है। उनके जीवन में कोई विशेष घटनाएँ नहीं है। पूना के डेक्कन कालिज और बम्बई के एल्फिन्स्टन कालिज मे आपकी शिक्षा हुई। बाद में राजकोट मे राजकुमार कालिज के वे प्रिंसिपल बने। क्रिकेट और घुड़सवारी से भी इन्हे बड़ा शौक था। परन्तु गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन में सन् १९२० मे आपने प्रिंसिपल का पद छोड़ दिया। बाद मे गाँधीजी की राजनीति से आपका मतभेद हुआ और राजनीति से विरक्त होकर नान्हालाल एकान्त काव्य-साधना करते रहे। नान्हालाल की पत्नी का नाम माणेकबाई था। और दोनो ही आतिथ्य बहुत अच्छा करते थे। अपनी पत्नी के प्रेम में उन्होने 'दांपत्य-स्तोत्र' कविता-सग्रह प्रकाशित किया था। यह पत्नी-प्रेम मराठी कवि तांबे की भाँति उच्छ्रल, उत्कट 'स्त्री ला नमस्कार हा!' जैसा नहीं है, न बच्चन के 'निशा-निमंत्रण' की भाँति विरहाश्रित।

लेख के आरम्भ में जिस 'वसतोत्सव' काव्य से उद्धरण दिया है, वह अद्भुतरम्य विषय पर आधारित अभिनव मनोहर रचनाशैली का काव्य है। इसी की तरह उनके अन्य सब काव्य हैं। उनमें गम्भीरता और अद्भुतरम्यता प्रधान गुण है। विनोद उनकी कविता में कहीं भी नहीं है। कवि नान्हालाल नित्य प्रातःकाल काव्यरचना करते थे। उनके करीब उन्चास काव्यग्रंथ उपलब्ध हैं। 'वसतोत्सव' कविता न गीतात्मक है, न वृत्तात्मक। और वह कोरी गद्यात्मक भी नहीं है। वह एक प्रकार के अमिताक्षर छंद मे है। बॅगला मे माईकेल मधुसूदन दत्त ने अतुकांत अमिताक्षर शैली का आरम्भ किया; हिन्दी में 'प्रसाद' ने 'प्रताप-प्रतिज्ञा' और 'पेशोला की पुकार' जैसी रचनाओ मे जिसका विस्तार आगे 'निराला' ने किया; मराठी मे इस मुक्तछद शैली का प्रवर्तन रेंदालकर ने किया था। उर्दू में मुक्तछद बहुत बाद मे आया और 'बिला-तरह नज्मो'

अंते एकज्योत संकेलाई
धवल रंगे धर्ममां आथम्युं
ने सूक्ष्म अंश अक्षर चरणे विराम्यो
जय हे हमारो गुरुदेव !
जगत जीत्या ने पछी थे जीत्या !

अर्थ—जिस प्रकार से सूर्य के सात रंग सारे जगत् में विहार करके अंत मे श्वेत रंग मे मिल जाते है, उसी प्रकार से हे गुरुदेव ! तुम्हारे जीवनकिरण जगत में अनेक रंगो से प्रफुल्ल होकर और प्रकाशित होकर अंत में शाश्वत-धर्म के श्वेत-रंग मे विराम पा गये। आप पहले दुनिया में जी रहे थे और अब भी (मृत्यु के बाद) जीवित ही हो !

नान्हालाल की दूसरी विशेषता प्राचीन प्रचलित गरबा-गीत या रास-गीतों को नया रूप देना है। उनका एक 'रास-गीत' उदाहरण के तौर पर, अर्थ सहित यहाँ दिया जा रहा है। यह गीत शेक्सपियर के 'एरिअल के गीत' की तरह कोमल है :

फुलडां-कटोरी

चन्दीए अमृत मोकल्या रे व्हेन !
फुलडां कटोरी गूंथी लाव;
जगमालणी रे व्हेन
अमृत अंजलिमां नहि झीलुं रे व्हेन
अंजलिमां चार चार चारणी रे व्हेन
अंजलिए छून्दणाना डाघा
जगमालणी रे व्हेन
अमृत अंजलिमां नहि झीलुं रे व्हेन !
झीलुं नहि तो झरी जतुं रे व्हेन
झीलुं तो झरी दशधार
जगमालणी रे व्हेन
अमृत अंजलिमां नहि झीलुं रे व्हेन !
फुलडामां देवनी हथेलीओ रे व्हेन
देवनी कटोरी गूंथी लाव,
जगमालणी रे व्हेन
अमृत अंजलिमां नहि झीलुं रे व्हेन !

अर्थ—हे प्रकृतिभगिनी ! तू मालिन है इसलिए कहती हूँ कि चंद्र ने जिस अमृत की वर्षा शुरू की है उस अमृत को अपनी अंजली में भरकर हम नहीं रख सकते । इसलिए तू फूलों की कटोरियाँ बना दे । हमारी अजली का अमृत गिर जायगा, इसलिए देवताओं की अंजली की तरह जान पड़ने वाली ये फूलों की कटोरियाँ, हे मालिन, तू जल्दी तैयार कर !

: २६ :

सुन्दरम्

श्री त्रिभुवनदास पुरुषोत्तमदास लुहार का उपनाम 'सुन्दरम्' है। गुजराती के आधुनिक कवि-नक्षत्रो मे उनका स्थान बहुत ऊँचा और कान्तिमान है। काका कालेलकर ने एक बार अपने प्रिय आधुनिक कवियों के बारे में बोलते हुए १६४८ में कहा था कि—"उमाशकर जोशी मेरा प्रिय या लाडला कवि है। पर देखते-देखते वह बडा मोटा विद्वान् हो गया है। 'सुन्दरम्' की कविता उसके नाम के अनुरूप नितात सुन्दर है। मैंने उत्तराखण्ड की यात्रा लिखी तो सुन्दरम् ने दक्षिण भारत का प्रवास करके दक्षिणायन लिख डाला। सुन्दरम् का यह दक्षिणायन संस्कृति-चिन्तन की दृष्टि से सब तरह से तृप्तिदायक है। 'स्नेहरश्मि' नामक आधुनिक कवि भाषा की कोमलता व्यक्त करने में कमाल करता है, तो करसनदास माणेक कविता के किसी भी क्षेत्र को दूर नहीं रखता। कृष्णलाल श्रीधराणी ने बचपन मे बहुत मधुर कविता लिखकर बहुत बड़ी आशा निर्माण की थी, परन्तु अमरीका को जाकर आने से उसने अग्रेजी गद्य का रास्ता पकड़ लिया है।" इन नामो के अलावा और भी कई नाम आधुनिक गुजराती कवियो में हैं जैसे रमणलाल देसाई (नीहारिका) ज़वेरचन्द मेघाणी (युगवन्दना), इदुलाल गाँधी (खडित मूर्तियाँ), चद्रवदन मेहता (इलाकाव्यो, रतन), सुन्दरजी बेटाई (ज्योतिरेखा), रामनारायण विश्वनाथ पाठक (शेषना काव्यो), 'स्वप्नस्थ', उ ्नस, भोगीलाल गाँधी आदि। परन्तु इन सब मे 'सुन्दरम्' का नाम अलग से चमकता है, क्योकि परिमाण मे बहुत थोड़ा लिखकर भी परिणाम मे उनका काव्य बहुत महत्त्वपूर्ण है।

उनके आरभिक दो कवितासग्रह यथानाम कडुवाहट से भरे थे। इनमे तीव्र व्यंग और सामाजिक विषमता की प्रखर चेतना है। 'कोया भगतनी कडवी वाणी' और 'गरीबोना गीतो' यह उनके आरभिक काव्यसग्रह थे। मैंने ये सग्रह बहुत वर्षों पहले पढ़े। तब कलापी के काव्य-सग्रह के साथ-साथ पढे और सुन्दरम् की नवयुग को सोहने वाली नई काव्योक्ति (पोएटिक ईडियम) ने मेरा ध्यान सहज खीच लिया। 'उदरडी' नामक उनकी कविता का उल्लेख मैंने 'अभिरुचि' (मराठी मासिक) मे मराठी के नव-युग-प्रवर्तक कवि बालकृष्ण सीताराम मर्ढेकर की (कु) विख्यात कविता 'पिपांत मेले ओल्या उदिर' (पीपे मे मरे गीले चूहे) पर जो पैरोडी-प्रवाह बहा था, तब पूरी कविता उद्धृत करके किया था। उसी प्रकार से 'अमदाबाद ना शहरमा भाई' नाम की मजदूरो के दुख-दर्द को दो टूक भाषा मे व्यक्त करने वाला उनका गीत मुझे याद है। 'भारतीय सस्कृति' नामक जो त्रैमासिक मै सपादित करता था उसके एक अक मे यह दो गीत मैने दिये थे :

१. अमारे हिन्दुने : शूद्रो

अमें भले चाकरी न भाखरी ज खोयां,
भले अमे मजूरीमां रात दीन जोयां,
ऊजकिया लोकलाज तेज नूर खोयां,
भले अमे छोकराने नंगा भूखा जोयां,

तोय अमे मानताओ छोडी न थी दीधी,
बामण ने दखणाओ भावे खूब दीधी,
ऊँची नीची आभड ने छेट झाली लीधी,
गोरजीना टीपणे ना श्रद्धा कम कीधी,

भले पर सेवो पाडी,
शेठ ने करावी गाडी,
अमें खेंची रात दाड़ी,
मान जो अनाड़ी,
कोढमां ने गभाणमां, गोदाम मां के डॉक मां,
ढेडवाडे, मेलखाडे, चाली ओ ने चौक मां,
फोगट शी,
काय कसी,

चाकरीओ नोकरीओ अमे खूब कीधी,
नसीबनी बलिहारी हसी जोया कीधी,
नीचा रही, बीजा कोम ऊँची रहवा दीधी,
ढेडा तो य भंगियानी छांट नहि लीधी,
धरमनी धजा नहि झुकवा ज दीधी,
मर्या तो य नीची मूंडी ऊँची नहीं कीधी,
बामण ने बाणिया नो,
धरमी ने ढोंगिया नी,
गाडी अमे बेल बनी खेंच्या ख्रब कीधी !

२. गरीबों नी रोटी

मांगत गरीबो की रोटी,
मोहन प्यारे मांगत गरीबों की रोटी।
मेरे गरीबों को खाना मले ना,
उनको खिलाओ कोई रोटी।
मेरे गरीबों को कपड़ा मले ना,
उनको पिन्हाओ कोई धोती।
मेरे गरीबों को रहना मले ना,
मेरे गरीबों के दर्दों पिछानो कोई,
उनको मोहब्बत दो थोड़ी।

नेहरू-अभिनन्दन-ग्रंथ मे उनकी पाडिचेरी से आई हुई एक कविता का अनुवाद मैंने किया। सुन्दरम्, जो एक जमाने में इतनी स्पष्ट, यथार्थवादी रचनाएँ लिखते थे, अब अरविंदवादी हो गये हैं और लगता है, यह बात प्रायः प्रत्येक भाषा के कवियो के साथ हो रही है : हिंदी मे कविवर पत और दिनकर अरविंद के उपासक बन रहे हैं, तामिल के 'भारती' अरविंद के उपासक बनकर कई वर्षों तक रहे; गुजराती के सुन्दरम् अरविंद के भक्त हो गये हैं, बगाली के दिलीप राय कभी के भक्त थे ही और 'सूरजमुखी' नामक उनके काव्य-सग्रह के बाद की कविताओ पर उनके अरविदवाद की छाप स्पष्ट है। सुन्दरम् की 'कडुई वाणी' मैंने पहले पढी थी। अब जब उनका १९४५ मे छपा और १९५० में दूसरी आवृत्ति हुआ काव्य-सग्रह 'काव्यमगला' पढ़ता हूँ और कवि की इधर की स्फुट रचनाएँ, जो 'अदिति' आदि में निकलती हैं, पढता हूँ तो बहुत आश्चर्य

होता है। 'काव्यमगला' मे सन् १६२६ से १६३३ की ५४ रचनाएँ सगृहीत है। कई सानेट है और कई गीत। सब रसो की कविताएँ यहाँ है, और सब तरह के विषय भी हैं। उदाहरणार्थ कुछ कविताओ के शीर्षक देखिये :

रणगीत, अतिम आशा, सजीवनी, बुद्ध के चक्षु, त्रिमूर्ति, सत्य शिव सुन्दरम्, कालिदास के प्रति, हॅसते-हॅसते, टूटी हुई घड़ी से, स्वप्न भंग, कवि का स्वप्न, पतग और गरुड, मेघनृत्य, रुदन, जुदाई, राम जी ये तो, जन्मगॉठ, मानवी मानव तलावणी, रग-रंग की बदली, धूमकेतु, ध्रुवपद कहॉ ?, हमारे दर्द, मॉ का फोटोग्राफ आदि।

उनकी कुछ कविताओ के नमूने मूल गुजराती को नागराक्षरो मे लिखकर दे रहा हूँ। गुजराती हिंदी की अतवर्ती भाषा है, अतः अर्थ की अपेक्षा साराश-मात्र दे रहा हूँ। पहला प्रबोधन-गीत 'रणगीत', करीब-करीब मराठी मे 'बी' कवि का डंका या 'केशवसुत' के तुतारी, या काजी नजरुल इस्लाम के 'आगे चल आगे चल, भाई' (जिसकी तर्ज की नकल मे फिल्मी गीत 'चल चल रे नौजवान' बना) की तरह से कोरस-गीत है। उसमे मार्चिंग सॉग जैसी गति है। खडी बोली हिन्दी की साहित्यिक कविता मे ऐसी मार्चिंग सॉग की शैली शायद 'त्रिशूल' या 'स्नेही' का 'स्वतंत्रता का जन्म हुआ मृत्युञ्जय वीर कुमारो पर' (प्रकाशन : त्यागभूमि), या सोहनलाल द्विवेदी के 'किसान' या श्यामनारायण पाडेय की 'जौहर' आदि रचनाओ मे मिलती है। मैंने एक कविता इस शैली पर 'नयी जमीन, नयी जमीन' युद्धकाल में लिखी थी जो 'नये गीत' में छपी है। सोवियत्-मित्र-सघ की पहली बैठक में बम्बई मे विजयलक्ष्मी पडित की अध्यक्षता मे 'नोवा जेमलिया' (रूसी शब्द जिसका अर्थ है 'नयी जमीन') मैंने सन् १६४४ में पढ़ी भी थी। वैसे 'बच्चन' का 'अग्निपथ, अग्निपथ, अग्निपथ' और शिवमगलसिंह 'सुमन' का 'बढे चलो किसान धीर, बढे चलो मजूर वीर' इसी तरह का गाना है। सुन्दरम् का 'रणगीत' का प्रथम और अतिम छंद यो है, ध्यान रहे कि मार्च तीस मे दाडी-यात्रा हुई, उसके पहले का रचा उसी समय का गाना है यह :

> **कोण रे ऊठशे भाई ?**
> **हो के, कोणरे ऊठशे, भाई ?**
> **शंख कराले, दुःखना त्राडे,**
> **भारतमाता, आपणी गाथा**
> **बोले, ओ भाई !**

भारत आपणी बोले,
भूख मिटावा, दुःख फिटावा,
कोण रे ऊठशे, भाई?
हो के, कोण रे ऊठशे, भाई?
[वृन्दगान]
भारत वीर, भारत वीर
ऊठवा अमे सौ अधीर,
ऊठशु अमे भारत वीर
कोण रे मरशे, भाई?
हो के, कोण रे मरशे, भाई?
केसर रंगे, कालभुजंगे,
जीवन घोली खेलतो होली,
अगे, ओ भाई!
जीवन होली, अंगे,
मुक्ति काजे, अमर साजे
कोण रे मरशे, भाई?
हो के, कोण रे मरशे, भाई?
[वृन्दगान]
भारतवीर, भारतवीर,
मरवा अमे सौ अधीर,
मरशूं अमे भारतवीर,

भावार्थ—कौन उठेगा, भाई? हाँ रे, कौन उठेगा? पीड़ित होकर कराल शंखनाद के रूप में भारतमाता अपनी गाथा कह रही है, भाई (भारतमाता अपनी बात कहती है। भूख मिटाने, दुःख हटाने, कौन उठेगा? भाई? हाँ रे, कौन उठेगा?

(समूह गायन) हम सब भारत वीर उठने के लिए अधीर हैं। हम उठेंगे।

कौन मरेगा, भाई? हाँ रे कौन मरेगा? केसरिया पहन कर काल भुजंग से कौन लड़ेगा? जीवन घुलाकर कौन खुद होली खेलेगा? मुक्ति के कार्य के लिए अमर साज पहन कर कौन मरेगा भाई? हाँ रे, कौन मरेगा?

(समूह गायन) हम भारत वीर सब अधीर हैं। हम मरेंगे।

'त्रिमूर्ति' कविताएँ बुद्ध, ईसा और गांधी पर तीन सानेट हैं। यह कविता

सोहनलाल द्विवेदी संपादित 'गाधी-अभिनन्दन-ग्रन्थ' नामक काव्य-संग्रह मे (जिसमे मराठी विभाग की कविताओ का चयन और अनुवाद मैने किये थे) अर्थ सहित देखी जा सकती हैं।

'कालिदास के प्रति' नामक शिखरणी वृत्त मे लिखी सौ पंक्तियो की कविता के अन्त मे कवि ने कहा है कि 'आज तक के इतिहास मे युगो-युगो की सामग्री पड़ी है जिस पर महाकाव्य रचे जा सकते है। मुझे श्रद्धा है कि आगे चलकर कवि-गुरु यही जन्म लेगे और इस कहानी को अमर-कवन का रूप देगे। उसी आशा पर मैं आपके कवन-मार्ग पर चलता हूँ और यह लकड़ियाँ जमा कर रहा हूँ। तुम बाद मे आकर इसमे से खराब लकड़ियाँ फेक देना, सीधी पुष्ट समिधाएँ ले लेना। जब आपकी प्रचण्ड अधिक गुण द्वारा काव्यज्वाला प्रकाशित होगी तब इनका होम मे उपयोग करना। इसी हेतु से प्रार्थना करता हूँ कि अच्छी लकड़ियाँ जमा करने का रास्ता मुझे दिखाओ!' मूल यो है :

महा काव्यो आजे प्रगट इतिहासो युगतणा,
पडी आ सामग्री कविजन !, महा काव्य कृतिनी,
मने श्रद्धा : पाछा कविगुरु अहीं जन्म धरशो,
अने आ टाणाने अमर कवने मूर्त करशो।
उरे ते आशा भी तम कवन मार्गे ज पलतो
करूँ भेगां काष्ठो तम अरथ अग्नि प्रकटवा,
पछी त्यारे आवी मुज कवन नां काष्ठ निरखी
सडेलां वां कां ने तजी, सरक्त ने पुष्ट ग्रहजो।
कृतार्थी हूँ थाऊँ, कवन मुज आ काष्ट सरखां
प्रजा को हो भाई अधिकगुण काव्यज्वलन -जो
चहूँ तेथी तारां नयन उघडी क्रान्तदरशी
मने बोधो रस्तो चयन करवा काष्ट वगडे।

परन्तु सुन्दरम् केवल ओजस्वी और विराटवादी कवि नहीं है। वे सुन्दर गीतकार भी हैं। लोकगीतो की धुन पर 'बदली' जैसे उनके गीत, और शब्दसौंदर्य से 'मेघनृत्य' का आनन्द देनेवाले झूलणा छंद और संत कवियो के से फक्कड़-पन से गाये 'जुदाई' (और वैसे ही वर्गभेद को संकेत से व्यक्त करने वाले 'तलावणी' जैसे) गीत भी उन्होने लिखे है। वे तीनो गीत इतने सरल हैं कि पूरा अर्थ अनावश्यक है। वे गीत मै नागराक्षरो मे सार के साथ दे रहा हूँ :

१. वादली

सोनेरी वादली
रुपेरी वादली
ऊतरी रे कहान मारे तलाव,
संध्याप्रभातना रंग भरी पाँखे,
सूरज नां आंजणां आंजने आँखे,
सागरना हैये आलोटी ए वादली,
अमृतना गर्भ धरी,
ऊतरी रे कहान मारे तलाव।
सकां तलाव, मारां सूकां सरोवरो,
सूकां कमलदल, सूको आ वायरो,
सूनां आकाश मूकी नाठीं ती वादली,
धरती नो फेर फरी
ऊतरी रे कहान मारे तलाव।
नानुं तलाव मारूं पाणीडां छलके,
भीनो पवन कमल आछेरां मलके,
दुनियानां आंसूडां लोती ए वादली,
मलकंती प्रेम भरी
ऊतरी रे कहान मारे तलाव।

सार : सुनहरी, रुपहली बदली मेरे तालाब पर उतरी। उसके पख संध्या-प्रभात के रंगो से भरे हैं, उसकी आँखो मे सूरज का अजन है, समुद्र के हृदय पर यह लोटी है। अमृत का गर्भ धरी यह मेरे तालाब पर उतरी है। तालाब सूख गया, मेरे सरोवर, कमलदल, हवा तक सूख गयी। सूने आकाश मे वह बदली रख दो। धरती का फेरा फिरकर मेरे तालाब पर वह उतरी। मेरा छोटा-सा तालाब है, पानी छलकता है। भीना पवन कमलो को झकझोर देता है। दुनिया भर के आँसू ढोकर यह बदली प्रेम से उमड़ती हुई मेरे तालाब पर उतरी।

२. मेघनृत्य

(झूलणा)

आज आकाशना मंडपे मेघनां नृत्यना चंड पडछंद गाजे,
प्रकृतीना पांच बजवैं गवैया उठया, त्वरित निज निजतणा साज साजे,

ताल मडदंग का धिग पूंठे, गुम्बजे गगनना गाजि ऊठे।
तरलतन दामिनी द्युति तयार धौत ने, चमक चमकार ले रंगभोमे,
मेघला वारुणीमत्त शा ठेक लै गूँथता नृत्यना गोंफ व्योमे,
घुमे तांडवी चाल साधी, अहो! जागता रुद्र छोडी समाधी।
गहन नभसिंधुनां वारिनां वहनपे नर्तको पाय दै ठेक लेता,
क्षितिज क्षितिजे गुंथी आंगली वेलमां घुमरतां पृथ्वीने चाक देता,
भमरडो पृथ्वी नो ऊँघ लेतो, अहो! नृत्यनो रंग रेलाई रेहतो।
चकितदृग देवनी मंडली पुलकभर नृत्यरंगे डुबी आँख मींचे,
जलद् नर्तक गणो हृष्ट चरितार्थ थै, अंक जननीतणे भेट सींचे,
देवथी प्राप्त उपहार भोलो अहो! सृष्टिनो स्निग्ध छलकार्य खोलो।

मेघों के गर्जन की तुलना वादकों-गायकों के समूह से की है और देवगण यह नृत्य-गान देखने आये है। इसी का विवरणपूर्ण वर्णन है।

३. जुदाई

तारे ने मारे आवडी जुदाई,
आवडी जुदाई, तूं आगल, हूं पाछल, भाई।
एक मा ना बे दीकरा आपण,
दीकरा आपण, तूं भणेल, हूँ भूलेल, भाई।
गगना तारे घुम्मट रहेवा,
घुम्मट रहेवा, देहडी मारी नानी, भाई।
अखूट आकाश खेलवा तारे,
खेलवा तारे, चौखूंट मारे भोमका भाई।
सूरजसोभनी आँखडी तारे,
ओडकारा तारे, आमडे मारी आँख बँधाई।
अमृतना नित ओडकारा तारे,
ओडकारा तारे, अन्नपाणी मारे लेवां भाई।
थाक नहीं तारे, नींदना ना रे,
नींदना ना रे, हांफवांघोरवां मारे भाई।
आलमना अखत्यार तारे घेर,
भाई तारे घेर, आर तसु मारे भोंय ना भाई।
अलखनां तारे ओढणपोढण,
ओढणपोढण, मायानी चादर मारे, भाई।

जोगमाय ना नाथ निरंजन,

नाथ निरजन, क्यां लग राखीश आप जुदाई ।

तेरी-मेरी जुदाई इतनी है कि तू आगे, मैं पीछे हूँ। एक माँ के दो छोकरे हैं। तू सिखाया हुआ, मैं भुलाया हुआ। तुझे गगन में रहने को गुम्बद है। मेरी छोटी-सी ड्योढ़ी है। तुझे खेलने को अखूट आकाश है, मेरी चौखूट धरती है। तेरी आँखे सूरज और सोम की हैं, मेरी आँखे बंधी हुई हैं। तुम्हारा भोजन अमृत है, यहाँ माँग कर अन्न-पानी जुटाना पड़ता है। तुम्हे न थकावट है न नींद, यहाँ तो हाँफना और खर्राटे भरना ही काम है। तेरे घर सारे अलम के अख्त्यार या अधिकार हैं, मेरी तो इंच भर जमीन अपनी नहीं है। तेरा ओढ़ना-बिछौना अलख का है, मेरी चादर माया की है। ओ योगमाया के नाथ निरजन, कबतक हम मे यों जुदाई बनाये रखोगे ?

: २७ :

उमाशंकर जोशी**********

गुजरात के तरुण साहित्यकारो मे सर्वश्रेष्ठ, बहुत छोटी उम्र से बडा नाम कमानेवाले कवि श्रीउमाशकर जोशी अहमदाबाद से निकलनेवाले 'संस्कृति' पत्र के सम्पादक है। दिसम्बर १९५० मे वे जब शातिनिकेतन जा रहे थे तो राह मे प्रयाग में उतर कर मेरे घर मिलने आये। सज्जन, मितभाषी, गम्भीर, संवेदनशील युवक। १९५२ मे वे चीन के शान्ति-सम्मेलन मे गुजरात के प्रतिनिधि के नाते गये है। वैसे उमाशंकर का साहित्य विपुल है। एकाकी के क्षेत्र मे 'सापना भारा' नामक १९३५ मे छपे सग्रह से और उत्तररामचरित और शाकुन्तल के अनुवाद से वे विख्यात है। 'प्राचीना' नामक संग्रह मे सात पौराणिक कथाओ के आधार पर उन्होने एकाकी पद्य-नाटिकाएँ लिखी है। वैसी लघु कथाओ के तीन संग्रह १९३७ मे 'श्रावणी मेलो', १९३८ मे 'त्रण अर्धुं बे' (तीन के आधे दो) और १९४७ मे 'अन्तराय' भी छपे है, 'पारका जण्या' नाम का उपन्यास और अखो-एक अध्ययन नाम से १९४१ मे सशाधनपर ग्रंथ और समसवेदन कविता-विवेक आदि साहित्य-निबन्ध भी छपे हैं। 'स्नेहरश्मि' के साथ गाधीकाव्य-सग्रह और रामनारायण पाठक के साथ आचार्य श्रीआनन्दशकर ध्रुव के ग्रथो का सम्पादन किया। परन्तु मुख्यतः उमाशंकर कवि के नाते प्रसिद्ध है। उनके अबतक प्रकाशित काव्यग्रथ इस प्रकार से है :

१. विश्वशान्ति : १९३१, '३३, '३८, '४४
२. गगोत्री : १९३४, '३८
३. निशीथ : १९३९, '४७

४. गुले पोलांड : १९३९
५. प्राचीना : १९४४, '४७
६. आतिथ्य : १९४६

गुजरात और राजपूताना की सीमा पर बसी उत्तर गुजरात की ईडर रियासत में बामणा गाँव में २१ जुलाई १९११ को एक संस्कारी कुटुम्ब में श्री-उमाशंकर जोशी का जन्म हुआ। बचपन के दस बरस देहात में बिता कर अंग्रेजी शिक्षा के लिए वह ईडर गये। १९२८ में अहमदाबाद से मैट्रिक करके गुजरात कॉलेज के नगर वातावरण में वह आये। परन्तु शिक्षा में ध्यान देने के बजाय गुजरात कॉलेज के मुख्य अध्यापक श्री फिनले शिराज़ के विरुद्ध विद्यार्थियों के आन्दोलन में उन्होंने भाग लिया। तभी १९३० का सत्याग्रह शुरू हुआ। खाराघोडा के नमक गोदाम पर उन्होंने हमला बोल दिया। और जेल में 'सी' क्लास में गये। उन्नीस बरस की उम्र में ही वह वीरमगाँव के सत्याग्रही युद्ध-मंडल पर चुने गये और सत्याग्रह पत्रिका लिखने का काम उन्हें मिला। गुर्जर साहित्यिकों में प्रथम स्थान प्राप्त करने वाले युवान लेखक की लेखनी का श्रीगणेश सत्याग्रह-पत्रिका के गुप्त-लेखन से हुआ। साढ़े तीन महीने की सज़ा भुगत कर आगे कालेज की शिक्षा न ग्रहण करके वे काका कालेलकर के साथ रहे। सहवासी और अन्तेवासी के नाते उमाशंकर ने काका साहब के उदात्त जीवन का, विद्वत्ता का, प्रवासी बहुश्रुतता का और साहित्य-रसिकता का पूरा लाभ उठाया। एक ओर साहित्य में कुशल शस्त्रवैद्य की भाँति मानवी-स्वभाव का निर्मम यथार्थवादी विश्लेषण करनेवाले उमाशंकर की रचनाओं में जो उच्च अभिरुचि और व्यापक सहानुभूति की अन्तर्धारा है, वह इसी प्रभाव का परिणाम है। 'गंगोत्री' काव्य का समर्पण काकासाहब के चरणों में करते हुए उमाशंकर ने लिखा था :

"अजाण्युं हुं आव्युं गभरूं झरणुं को तव पदे
प्रवासी, तें एने हृदय जगवी सिन्धुरटणां !"

"अनजाने मैं आया था तुम्हारे चरणों पर निर्मल झरना बनकर। परन्तु हे प्रवासी ! तुम उसके हृदय में सिन्धु-रटना जाग्रत नहीं करोगे क्या ?"

१९३२ के सत्याग्रह के दूसरे दौर में खेडा जिले के मातर तालुका में से वे फिर आठ महीने सजा पाकर जेल गये। साबरमती, यरवदा और वीसापुर जेलों में साथियों के साथ बहुत बेफिक्री से जिन्दगी बितायी। साहस की ओर उनकी रुचि बचपन से रही है। कराची तक प्रवास रेल से न करके मामूली 'मचवे'

(यानी नाव) से उन्होने किया। जेल से छूट कर उमाशंकर ने फिर कालेज की शिक्षा आगे ग्रहण की। जब वह पढ़ते थे तभी उनकी कविताएँ कोर्स मे लगी थीं। १९३६ में उन्होने 'गुर्जर पुरोगामी साहित्यसंघ' स्थापन किया। इस संघ के वे प्रमुख प्रवर्तक और मन्त्री रहे। १९३७ मे गाधीजी के सभापतित्व मे गुजराती साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ। तब वे उसकी कार्यकारिणी पर चुने गये। २६ वर्ष की छोटी उम्र पूरी होने से पहले वे कवि, कहानीकार, एकाकीकार और निबन्धलेखक बने।

१९३१ मे उमाशंकर ने 'विश्वशाति' नामक पॉच सौ पक्तियो का खण्ड-काव्य लिखा। यही से उनकी काव्य-सेवा आरम्भ होती है। गगोत्री नामक काव्य-संग्रह ने उनकी कीर्ति अक्षय कर दी। कहानियॉ उन्होंने 'वासुकी' के नाम से लिखी है। १९ बरस की उम्र मे 'विश्वशाति' रची गयी। उसके निवेदन मे उन्होने लिखा—'बापू का पश्चिम प्रयाण भारतीय स्वतन्त्रता के लिए चाहे हो, परन्तु इसमें देश की स्वतन्त्रता से भी अधिक पश्चिम को शाति का महान् दैवी विशेष सदेश मिलेगा, यही तत्त्व मुझे विशेष आकर्षक जान पड़ा। इसी पर इस काव्य मे विशेष जोर मैने दिया है।' काव्य का आरम्भ ही बडा भव्य है—'इतने में दूर से मंगल शब्द सुनाई दे रहे हैं! युग-पुरुष के बिना शत्‌शत् संवत्सर सूने-सूने रहे हैं। उन चिरशात ऐसे शतसंवत्सर रूप गु बदो को गु जाते हुए यह चेतनमत्र कहॉ से सुनाई दे रहा है? इस शब्द से पाप मिट जाता है पर पापी जीवित रहता है। जग के किनारे पर खड़े हुए अनेक योगी पुरुषो ने यह मत्र सुना है, सहा है। अरण्यको ने, ऋषिमण्डल मे, बुद्ध ने, ईसा ने, महावीर ने सबने यह मन्त्र सुना है, परतु इस मन्त्र से निद्राजड़ जगत नहीं जागा और फिर यह मन्त्र अनन्तता में विराम पा गया है। इस अर्थवाली मूल-पक्तियॉ देखिये :

त्यां दूरथी मंगल शब्द आवतो!
शताब्दिओना चिरशांत घुम्मटो
गंजावतो चेतनमंत्र आवतो!"
त्यां दूरथी मंगल शब्द आवतो;
युगोतणी कैंक पडी कतार
आवे ध्वनी एहनी आरपार
तू पाप साथे नव पापी मारतो,
ए मन्त्र झील्यो जगने किनारे
उभेल योगी पुरुषे अनेके,

आरण्यकोए, ऋषि-मंडलो ए,
सुणेल बुद्धे, इशुए, महाविरे
न तोय निद्राजड लोक जाग्यां
डूबी गयो मंत्र अनंत तामां!

गुजरात के विख्यात आलोचक स्व. प्रो. नरसिंहराम दिवेटिया के हाथों में जब यह काव्य आया तो वे इतने आनन्द-विह्वल हुए कि उन्होंने समीक्षा में लिखा—'यह एक असामान्य गुणोवाला काव्य है। इसमे प्रकट होने वाला गम्भीर दर्शन कवि की विराट-दृष्टि (विजन) का साक्षी है। इसमें सौष्ठव और लालित्य की अपेक्षा भाव और नाद की गम्भीरता विशेष दिखाई देती है। भाषा-शैली सीधी और प्रत्यक्ष है। विचार और भावनाओं मे भव्य और उन्नत तत्वो का सुन्दर सम्मिश्रण है।'

इस काव्य मे युद्ध के विषय में उमाशकर लिखते हैं—"रक्त से सींचे हुए दुनिया के ऑगन मे युद्ध की तैयारी चल रही है। हृदय पर हुए दूखते घाव तुम्हे दिखाई देंगे और प्रजा-प्रजाओ के शोणित लेख तुम पढ सकोगे। मनुष्य-मनुष्य के बीच चलने वाले इस संहार को देखकर भूतकाल पैशाचिक अट्टहास्य करता है। ···परन्तु एक बार मानव-जाति जब शांति-व्रत लेगी तो सारी वसुधा एक कुटुम्बवाली हो जायगी और यह शब्द अनन्त अवकाश के पार, जहाँ कोटि-कोटि सूर्यमालाएँ घूमती हैं, और वहाँ शान्ति का एक रसीला रास रचा है, वहाँ जा पहुँचेगा और सारा विश्व पक्षियो का एक नीड बन जायगा।" 'विश्वशाति' के अन्तिम प्रकरण 'कालासागर' में उमाशकर की उदात्त प्रतिभा के पूरे दर्शन होते हैं।

'गंगोत्री' में जो रचनाएँ हैं, उनमें विषयों की विविधता बहुत है। राष्ट्रीय दार्शनिक, सामाजिक परिहासपूर्ण सब प्रकार के विषयों पर गीत इस संग्रह में मिलते हैं। प्रणयगीत बहुत थोड़े हैं: सिर्फ दो-चार हैं। 'चौतीस साल का साहित्य' नामक निबन्ध में ज्योतीन्द्र दवे ने 'गंगोत्री' के बारे में कहा था: "इस वर्ष के सारे काव्यग्रथों में यह श्रेष्ठतम ग्रथ है। इसमें गहरी मानवता, सस्कारी सयम, काव्यप्रकारो का ही नहीं परन्तु विचारो और विषयों की विविधता, चिन्तनशीलता, वस्तुओ का यथार्थ-दर्शन और स्वभावजन्य विनम्रता आदि विशाल प्रमाण पर दिखाई देते हैं। धोबी और मोची, चूसकर फेंकी हुई आम की गुठली, घूरा आदि आज तक काव्य के लिए अविषय-रूप चीजों को छुआ है। प्रसंगा-नुकूल उनकी निरूपण-शैली भी विविध प्रकार की होती गयी है। समरकन्द

और बुखारा, कराल-दर्शन, कराल कवि, हरीफ, एक छोटी लडकी को स्मशान मे ले जाते हुए, नया नाटककार आदि काव्यो मे अन्तर्बाह्य नवीनता है।"

'प्रश्न' नामक गीत मे 'कोई मेरा इस दुनिया मे है?' यह सवाल कवि प्रकृति की अनेक वस्तुओ से करता है, परन्तु उसे कोई उत्तर नहीं देता। अन्त मे दुनिया की बेपरवाही से चिढ़कर कवि बडी आशा से और भरोसे से स्वयम् अपने हृदय से पूछता है—'हे हृदय ! तू तो आखिर मुझे अपना कहेगा?' हृदय भी ऐसा बेहया है कि उत्तर देता है—'बाबा, तू मेरा मालिक नही है। तेरे देह मे मैं केवल दूसरे के लिए ही रहता हूँ!' कवि खूब चिढ़ जाता है, और अन्त मे उसे विचार सूझता है :

बीजां काजे वसतु मुजमां, तोपदर्थे बीजामां
हैयां वासो नहि शुं वसतां कैं हशे स्नेह भीनां ?

अर्थ—मेरा हृदय यदि इस शरीर मे दूसरे किसी के लिए जीता है तो मेरे लिए भी स्नेहार्द्र हुए कई हृदय कही और जरूर बसते होगे।

'एकला, साथमा वा' (अकेले या साथ मे); 'भोमिया विना' (राहगीर के बिना); 'वलतां पाणी' (जलता हुआ पानी); विश्वतोमुखी आदि ऐसे ही सुन्दर गीत हैं। 'मीलन' गीत की सुकोमल प्रेम-भावना बडी हृद्य है :

सखे ! संध्याकाले
प्रतीचीने भाले
टिलडी टमके शुक्रकणिका
पलक झबके ज्योत क्षणिका
थती तेजोवृष्टि,
परोवा त्यां दृष्टि,
अनिमिष घडी वार उभजे !
हुंय नजर सांधीश तहीं, ने
सुरश्मि अंकोरे
सखे ! दृष्टिदोरे
पल उमलके थी झुली रही,
उभय मलशुं आपण तही !

अर्थ—सखे ! संध्या-समय मे पश्चिम दिशा के भाल पर शुक्र का तारा बिंदिया की तरह चमक रहा है। एक क्षणभर के लिए मानो ज्योति चमक जाती है। वहाँ तेजोवृष्टि होते ही, अनिमिष पलको से दृष्टि लगाना। मैं भी अपनी

दृष्टि वही गूथ दूँगा । उस सुरश्मि-स्रोत मे, सखे, उस दृग्‌पथ में, मन क्षणभर जब आंदोलित होगा, तभी अपना मधुर मिलन भी होगा ।

उनके राष्ट्रीय-सामाजिक गीत भी उच्च-कोटि के है। 'पिपासा', 'घाणीनुं गीत' (तेलघानी का गाना), 'हथोडानु गीत' (हथोडे का गीत), 'बुलबुल और भिखारिन', 'दलनारा दाणा' (पिसे जाने वाले दाने), 'कला का शहीद', 'बाप बेटा', 'मोची', 'जठराग्नि' आदि प्रसिद्ध गीत है। 'जठराग्नि' गीत में उन्होंने बड़े ओजस्वी ढग से कहा है—'गगनचुम्बी मंदिर बनाओ, फौवारो में नाचो ! चद्रशालाएँ रचो। परन्तु दरिद्री जीवन का उपहास करने वाली ये तुम्हारी लीलाएँ कब तक चलेगी ? जब तक भूखे जीवो का कोटि-जिह्वाओ से फैला हुआ जठराग्नि जगा नही है तब तक। बाद में उन मदिरो के खँडहरो की राख भी नही दिखाई देगी।' मूल यो हैं :

रचो रचो अम्बरचुम्बी मंदिरो, उंचा चणो म्हेल, चणो मीनारा !
मढो स्फटिको लटकाओ झुम्मरो, रंगे उडावो जलना फुवारा !
रचो रचो चदन वाटिकाओ, रचो रचो कंचनस्तंभ माळा !
उंडा तणावो नवरंग घुम्मटो, ने कैंक क्रीडांगण चन्द्रशाळा
रचो भले ! अंतर संघवी शिला एकेम भावे बहु काळसांखशे !
दरिद्रनी ए उपहास लीला संकेलवा, कोटोक जीभ फैलतो
भूख्यां जनो नो जठराग्नि जागशे, खंडेर नी भस्मकणीन लाधशे !

अब अन्त मे श्री उमाशकर जोशी का साहित्य-विषयक दृष्टिकोण समझने के लिए 'साहित्य : एक शक्ति' नाम से उनके भाषण का एक अनुवाद नीचे दिया जा रहा है। यह भाषण उन्होंने सन् '३८ मे दिया था :

'साहित्य से हम यह समझते हैं कि उसमें उन लेखो का समावेश है, जिसमे सबको रस देने वाले उत्कृष्ट भाव उतनी ही उत्कृष्ट भाषा में हों। मनुष्य जाति के प्रारंभ से कविता साहित्य का एक माना हुआ अग है। परन्तु नाटक, कहानी, उपन्यास, निबध, इतिहास, तत्वज्ञान, जीवनचरित्र, विवेचना आदि भी साहित्य के अन्यान्य रूप हैं।

'इस विविध प्रकार के साहित्य से मानव-जीवन का अत्यन्त निकट का सबंध है। भूतकाल के मानव-जीवन के साथ के सबध की यह एक महत्त्वपूर्ण कडी है। घास पर आमने-सामने बैठे, मस्ती मे डोलते और सोमरस की लहर मे अर्थ-हीन 'बाउ-बाउ' पुकारते ऋषियो को सृष्टिरचना का रहस्य कैसा लगा होगा। वहाँ से लगाकर किसान और मजदूर वर्ग के हित का चितन करने वाले

विचारकों की योजनाओं का परिचय हमे साहित्य से मिलता है। भूतकाल मे मनुष्य-जाति की उन्नति का अन्दाज भी हम साहित्य द्वारा लगा सकते है।

'भूतकाल से विरासत मे प्राप्त श्रेष्ठ वस्तुओं मे मनुष्यों की समाज बनाकर रहने की आदत, उसके लिए विकसित की गई अनुकूल शासन प्रणालियाँ और कई अन्य सस्थाएँ, उसके द्वारा निर्मित विनस-द-मेलो जैसी मूर्तियाँ, सौदर्य की साराशि जैसा ताजमहल, मोना लीसा के जादू भरे रेखाचित्र और इन सबमे श्रेष्ठ वह अमर साहित्य-भडार है। मनुष्य-जाति ने अभी तक के अकथ परिश्रम के बाद जिस संस्कृति का निर्माण किया है, उसका परिचय खासकर साहित्य के द्वारा ही मिलता है। साहित्य द्वारा ही संस्कृति की विरासत पीढी-दर-पीढी जीती-जागती दशा मे सौंपी जाती है। साहित्य मे मनुष्य के मानवता प्राप्त करने के लिए किये गये सभी प्रयत्नो का अर्क समाया हुआ है। मनुष्य जाति की आशाएँ, आकाक्षाएँ, आदर्श, चितन, भावनाएँ, तरगे, स्वप्न आदि सब विशेषकर साहित्य मे सचित किये गये है।

'इसलिए यदि साहित्य का जीवन पर जोरदार प्रभाव हो तो कोई आश्चर्य नही। साहित्य का जीवन से प्रभावित होना जितना सच है, उतना ही सच जीवन का साहित्य से प्रभावित होना है। जीवन में प्रकट होने वाली नई-नई शक्तियाँ नित नूतन साहित्य पैदा करती है। इसी प्रकार इतिहास मे कई उदाहरण हैं कि मौलिक विचार-श्रेणीवाला साहित्य जीवन मे नई शक्तियो को पैदा करता है। कई बार ऐसा भी होता है कि मानव-जीवन मे से प्रेरणा लेकर रचा गया साहित्य जनता में असाधारण परिवर्तन उपस्थित करता है। अमरीका की दास-प्रथा से प्रेरणा लेकर लिखा गया 'अकल टॉम्स केबिन' उपन्यास दास-प्रथा को नष्ट करने मे खूब सफल हुआ। सारी प्रजा की मानसिक विचार-धारा को बदलने मे एक उपन्यास कारणभूत हो, यह साहित्य की शक्ति का एक ज्वलत प्रमाण है।

'वर्तमान युग मे उपन्यासो ने जब प्राचीन काल के महाकाव्यो का स्थान लिया है, तो उनके द्वारा बड़ी-बडी क्रान्तियो का होना भी सम्भव है। फिर भले ही वह क्रान्तियाँ सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक या मानसिक हो। उदाहरण के लिए बंकिम का 'आनन्दमठ' और गोर्की का 'मदर' हैं। इस युग मे खासकर सामाजिक उपन्यास बहुत ही प्रभावशाली साबित हुए है। टॉल्स्टॉय और ज़ोला के उपन्यासो ने सामाजिक क्रान्ति की। उपन्यास के सिवा अन्य प्रकार के साहित्य से भी जीवन पर उतना ही प्रबल असर होता है। दक्षिण अफ्रीका मे रेल की

यात्रा मे रस्किन की 'अन्टु दि लॉस्ट' पुस्तक पढकर घर आ गांधीजी के फिनिक्स आश्रम स्थापित करने की बात जग-जाहिर है। शिवाजी के बारे में कहा जाता है कि बचपन में रामायण सुनकर राम-लक्ष्मण जसे पराक्रमी होने की महत्त्वाकॉक्षा उनमें पैदा हुई थी।

'इस युग मे कलम तलवार से भी अधिक शक्तिशाली मानी जाती है और यह बात जितनी इस युग के लिए सच है, उतनी ही दूसरे युगो के लिए भी। कई बार तो पाया गया है कि तलवार के बल जीतनेवाले कलम के आगे गुलाम हो गये है। रोमनो ने ग्रीस जीता। रोमन तलवार की यह विजय थी, परन्तु यूनानी संस्कृति ने रोमनो पर अपना प्रभाव जमाया। यह यूनानी लेखनी की विजय थी। इस युग में तो असख्य दैनिक पत्रो, पुस्तको आदि के प्रकाशन से कलम की दिग्विजय सुविदित है ही। दैनिक पत्र बड़े-बडे परिवर्तन कर सकने के कारण हुए हैं।

'इससे अपने समाज का हित समझनेवाला कुशल पत्रकार लेखनी की शक्ति का जितना उपयोग कर सकता है, उतना उसके अन्य साहित्यिक बन्धु शायद ही कर सके। १६१७ की रूसी क्रान्ति के लिए कई लोग मानते हैं कि लेनिन की बुद्धि की अपेक्षा उसके साथी कार्लराडेक की कलम का प्रभाव अधिक कारण-भूत है। यह बात असभव भी नहीं है। अकबर का एक सरहद्दी दुश्मन कहता था कि मैं अकबर की तलवार से अधिक अबुलफजल के शब्दो से डरता हूँ।

'हॉ, साहित्य की इस शक्ति का यदि सदुपयोग किया जाय तो वह तलवार की भांति रक्षा करती है और दुरुपयोग करने पर घायल करती है।'

पंजाबी कवि

नानक से आज तक

: २८ :

नानक से आज तक********

पंजाबी भाषा के साहित्य मे व्रजभाषा का उच्चारण-लालित्य, काव्य चमत्कार या अनुप्रास कही भी नही मिलता। फारसी गीतो और मसनवियो का प्रभाव भरपूर है, परन्तु पजाबी भाषा का अवधी की साहित्यकृतियों से साम्य है। रामकृष्ण की उपासना और भक्तिपरक सूफी पंथ का असर पूर्व नानककालीन कविता पर नही है। सिर्फ योग और एक खास ढग के वैराग्य का ही विशेष प्रचार किया गया था। लोकगीत और लोककथा की समृद्ध परम्परा है और उसकी सहायता साहित्यकृतियो को मिली है।

बारहवी सदी मे मुसलमान अपनी राजधानी लाहौर से दिल्ली ले गये। इस काल के आरम्भ में इस्लाम के रहस्यवाद का बड़ा विकास हुआ और मुलतान, लाहौर और दिल्ली मे उनका अपूर्व प्रसार हुआ। लहदी काव्य का जनक सुप्रसिद्ध शेख उर्फ बाबा फरीद और शम्स ताब्रीज, निजामुद्दीन, बुरहाना, दाऊद, अमीर खुसरो, शेख कबीर, जलालुद्दीन अवधो, शमशुद्दीन याहिया आदि का समकालीन था। इन सब लोगो का परस्पर सहवास हुआ और इन्होने सूफी पथ का विकास और प्रचार किया।

आदिग्रथ मे बाबा फरीद की कृतियो का सग्रह करने का श्रेय पाँचवें सिख गुरु अर्जुनदेव को है। तीसरे गुरु ने उसमें कुछ पद्य जोड दिये। चौदहवी से सोलहवी सदी तक सूफी कविता पर कृष्णोपासको का प्रभाव पड़ा और उनमें वासनामय शृगार की गहरी छाया फैली।

गुरु नानक सिख पथ का आद्य सस्थापक (ईस्वी १४६६ से १५६८ तक) था। उसके बाद उसकी साहित्यिक और धार्मिक परम्परा १७०८ तक यानी गुरु

गोविन्दसिंह का दाक्षिण हैदराबाद मे नादेड मे मृत्यु होने तक अखड रूप से चलती थी। इस युग के साहित्य के मोटे तौरपर दो विभाग किये जा सकते है। पहले मे आदिग्रथ में उसके भाग का, दूसरे मे गद्यपद्यात्मक गाथाएँ और टीकाएँ है। दूसरे विभाग मे उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं: (पद्य) (१) नसीहतनामा (२) रेखता (३) मुनाजत (४) प्राण सागली अथवा सुन महल की कथा (५) ग्यान सरोदई (६) काफी (७) कथा श्री कृष्णचद्र और कथा दस अवतार (८) चतर सलोकी (९) बानी विहंगम (१०) फारसी फर्द (११) फारसी रुबाई (१२) यात्रा (१३) सी हरफी (१४) वर (१५) सहंसर नामा (गद्य) (१६) हाजिर नामा। इनमे १० और ११ छोड़कर बाकी सब साहित्य पजाबी हिंदवी या लहदी भाषा मे है। निरजनी साहित्य के कबीरपंथियो ने बहुत-सा साहित्य झूठे ही नानक के नाम लगाया है। नानक ने आदिग्रथ मे शब्द, जपनिसान, सोदर, सोहिला, पैहरी, वजारी, पट्टी आदि काव्यप्रकारो और छदो का उपयोग किया है। नानक के काव्य की विशेषता उसकी व्यापकता है। उसके साहित्य मे छद और लोक-गीतो का मिश्रण, हिन्दू-मुस्लिम, बौद्ध-शाक्त, द्वैताद्वैत शब्दावली का प्रयोग है। नानक का साहित्य पूर्ण अधिकृत रूप से अब तक उपलब्ध है, यह उसकी एक और विशेषता है। हिन्दुस्तानी कविता मे नानक का प्रथम उल्लेख देवीसिंह बनारसी की सन् १६८५ के करीब लिखी लावनी मे मिलता है।

नानक की परम्परा मे जो कवि हुए उनके नाम है—(१) अगददेव (२) अमरदास (३) रामदास (४) अर्जुनदेव (५) हरगोविन्द (६) तेगबहादुर (७) गोविन्दसिंह। ये सब कवि सत-साहित्य का विकास कर रहे थे, तब हिन्दुओ के अधिकाँश धर्म-दर्शन के ग्रन्थो का अनुवाद फारसी मे हो रहा था। और उर्दू की मारफत पंजाबी साहित्य मे हिन्दू-दर्शन या धर्म ने प्रवेश किया।

उधर जन-साहित्य मे बहुत-सा पद्यमय आख्यानसाहित्य चल ही रहा था: लैलामजनू, सोरठ बीज, सस्सीपुन्हू, हीर-राझा आदि प्रेम कथाएँ और 'तिरिया-चरित्तर' की सैंकडो कथाएँ सुविख्यात है।

मुग़लो के उत्तर-काल में देश की अराजकपूर्ण हालत मे गुरु गोविदसिंह के बाद गुरु परपरा बन्द हुई और गरीबदास (ई० १७१७-७८) के सिवा कोई संत उनमे पैदा नही हुआ। उन्नीसवी सदी के आरम्भ मे पाँच मुख्य साहित्यिक प्रवृत्तियाँ पजाबी में दिखाई देती थी—(१) संगीत विषयक नोट देकर वर्गीकृत काव्यसंग्रह तैयार करना (२) सतो या गुरुओ के जीवन वृत्तान्त गद्य मे लिखना (३) देशी-विदेशी शूरवीरो पर काव्य-रचना करना (४) संस्कृत और ब्रजभाषा के

मूल ग्रन्थो का अनुवाद और लिपि बदलकर प्रतिलेखन करना (५) पजाबी देशज और तदितर समिश्र शब्द-सग्रह का प्रयोग। धार्मिक लोकगीतों का प्रसार भी इसी काल मे हुआ। यथा वीरसिंह फुलारी का गोविंदसिंह का बारामाह, आगरा का हकीकतराय इत्यादि। इस काल के कुछ उल्लेखनीय कवि और उनकी कृतियाँ हैं :

अली हैदर— काफी व सी हरफी
आभ— सस्सी पुन्हू
बुधसिंह— काफी, सी, हरफी, मध्वानल
बुल्हा— काफी, सी हरफी, दोहरा
गरीबदास— शबद
हमीदशाह— हीर व जंगनामा
जमियतराय—सिंहासन बत्तीसी
लालजीदास—मंजरी व माझा
नजाकत— वी नादिरशहा
परमानन्द— सिंहासन बत्तीसी
रज्जब— छप्पय
वजीद— शलोक व शबद
वारिस शाह—हीर

इनमे अली हैदर, बुल्हा और वजीद सूफी ढग के गीत रचने वाले, गरीबदास स्तोत्रकार और शेष अद्भुतरम्य काव्य रचने वाले कवि थे। गुलाबसिंह, लालजीदास और रज्जब अध्यात्मवादी या बुद्धिवादी कवि थे। चरणदास की अनुयायिनी सहजोबाई अच्छी कवियित्री थी।

रणजीतसिंह के काल में सिखों के उपपथ निर्मल ने धार्मिक पुनरुज्जीवन का प्रयत्न किया। फारसी के गजल और मसनवी के ढग पर रचना शुरू हुई। उर्दू छद का प्रयोग पजाबी कवि अधिक करने लगे। 'रेखते' भी लिखे गये। ब्रजभाषा के कृष्ण-काव्य के ढग पर पजाबी के मुस्लिम कवि मुहम्मद पैगम्बर की व्यक्ति-पूजा मे रत हुए। हिन्दू और मुस्लिम दोनो जातियो मे सास्कृतिक आदान-प्रदान बढा। अमृतसर की पजाबी भाषा को मानक (स्टैंडर्ड) रूप मिलने लगा। हिन्दी और उर्दू की नयी-नयी रचनाओ के अनुवाद बढे। महाराजा रणजीतसिंह के दरबार के कवि हाशम ने इस काल के सर्वोत्तम वैणिक (लिरिक) रचे। उसके २०८ दोहरो से वह पजाबी का खैयाम माना जाता है। गोपालसिंह, सतदास,

दयालसिंह और मिहरसिह इस काल के उत्तम पद्यकार है। हरदयाल की 'सरुक्तावली' और निशलदास का 'विचार सागर' वेदात के उत्तम ग्रन्थ है उनकी भाषा मे पजाबी, व्रज, अवधी का मिश्रण मिलता है। कादिर यार की 'पूरन भगत' और अब्दुल हकीम का 'यूसुफ-जुलेखा' इसी युग मे लिखा गया। मुहम्मद मुस्लिम की 'अजायब-उल-कसस' नाम की शुद्ध लहदा मे बडी काव्य-रचना है। इनके अलावा जो 'रोमास' इस काल मे लिखे गये है, वे है—बहराम मोर, चन्दरबदन-मीर, चदरभागा, हातिमताई, कामरूप-कामलता, पूरनभगत-लूना, राजबीबी-नामदार, रसालू-कोकिला, रूप-बसन्त, सखी सरवर, शीरी-फरहाद, सैफ-उल्-मुल्क आदि।

अंग्रेजो के आने के बाद अन्य देशी भाषाओ की भाँति पंजाबी का पहला व्याकरण विलियम कैरे ने बनाया और सेरामपुर मे सन् १८१२ मे प्रकाशित किया। ले सी. बी बीच का पंजाबी व्याकरण सन् १८३८ मे प्रकाशित हुआ। कॅ. सिडन ने गुरु गोविदसिंह के 'विचित्र नाटक' का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया। कॅ स्टार्की ने पजाबी-अंग्रेजी कोश बनाया और १८५४ मे लुधियाना मिशन ने पंजाबी भाषा का शब्दकोश प्रकाशित किया।

पजाबी साहित्य के आधुनिक विख्यात कवियो मे भाई वीरसिंह, धनीराम चात्रक, प्रो. मोहनसिंह, मोहनसिंह 'दीवाना', अमृता प्रीतम, करतारसिह दुग्गल, देवेंद्र सत्यार्थी, गुरुमुखसिंह 'मुसाफिर' और हरनामसिह 'नाज' आदि है। १९५२ मे लिखी नाज की 'चाबियो का गुच्छा' (प्रीत लडी में प्रकाशित) एक बहुत सुन्दर कविता है। विभाजनोत्तर पंजाबी का आधुनिक काव्यसाहित्य प्रगतिशीलता की ओर झुका हुआ है।

डा० मोहनसिंह के शब्दो मे—'पजाबी साहित्य पर हिन्दी का कम, उर्दू का अधिक और अंग्रेजी का उससे भी अधिक प्रभाव पडा है। पंजाबी साहित्य मे यह सक्रान्तिकालीन अवस्था है, यद्यपि पजाबी मे टैगोर, इकबाल, प्रेमचन्द, तिलक या गाधी नही दिखाई देते। पजाबियो मे परप्रान्तीय साहित्य की नकल करने की या प्राचीन अन्ध-अनुकरण करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। बगाली, गुजराती, सिंधी, मराठी भाषाओ का अच्छा ज्ञान रखने वाले लेखक पजाबी मे नहीं हैं। इसलिए उर्दू और अंग्रेजी का प्रभाव बहुत ज्यादा है। पजाबी रगमच जैसी कोई चीज नही है। साधारण पजाबी त्रैभाषिक यानी हिन्दी-उर्दू-अंग्रेजी जाननेवाला है। इसलिए वह अगरेजी या उर्दू मे ही अधिक पढ़ता है। पजाबी को शिक्षाक्रम का माध्यम बनाये बिना पंजाबी भाषा की स्थिति नही सुधरेगी।'

साहित्यिक पद्यों के ग्रंथिक या पौस्तक रूप की अपेक्षा पंजाबी का लोक-साहित्य कहीं अधिक समृद्ध है। श्री सुदर्शन और यशपाल के लेखों से दो अवतरण मेरी बात की पुष्टि करेंगे : 'बहन-भाइयों के पंजाबी गीत' नाम से 'हंस में' छपे दिसम्बर १९३८ में श्री सुदर्शन के एक लेख से यह पता चलेगा :

"पंजाबी भाषा में बहन-भाइयों के गीतों का जो अक्षय भंडार है, उसकी तुलना भारत की किसी दूसरी भाषा से शायद ही की जा सकती हो।

जिस समय ये गीत तैयार हुए, उस समय में पंजाबी लड़की का जीवन आजकल से भिन्न था। सीधा-सादा एक ही लीक पर चलनेवाला जीवन था। पैदा हुई—खेली-कूदी। जवान हुई—ब्याही गई। पति परदेस चला गया, बहू सास के पास रह गई। सास-श्वसुर अत्यन्त क्रोधी, तरह-तरह के अत्याचार करते थे। नई नवेली बेजबान बहू आटा पीसती थी, चरखा कातती थी और 'रो-रोकर दिन गुजारती' थी। इन विरह और वेदना के दिनों में या उसे परदेसी प्रियतम याद आता था, या अपने माता-पिता। प्रियतम को खुले बन्दों याद करना कठिन था। सास और ननद कहतीं—बेशरम हो गई है। गरीब के पास दिल के फफोले फोड़ने का एक ही साधन था। कल्पना के एकान्त-संसार में अपने भाई को अपने पास बुलाती थी, और उससे अपने जीवन की विपत्तियों का हाल बयान करती थी। और जब अवसर मिलता, तो कभी-कभी पति से भी दो बोल बोल लेती थी। इस तरह ये गीत बने। गीतों में न शब्द-योजना है, न पद्य-विन्यास; पर इनमें दुखी बहन के दिल का दुःख-दर्द भरा हुआ है। नारी ने जब देखा कि सरस्वती का कोई बेटा उसके दिल की पुकार नहीं सुनता, न कोई आँखोंवाला उसकी आँख के मीठे-कड़वे आँसू देखता है तो उसने अपनी ही दुनिया और अपनी ही भाषा के टूटे-फूटे शब्द चुने और उनमें अपने सुलगते हुए दिल की आग लपेट दी। और यह वह चीज है, जो बड़े कवियों की रचना में भी नहीं पाई जाती :

मेरी उँगली चीरी दा कोई दस्सो दारू
वीर आउन्दा जे सुनिया, मेरी उँगली हच्छी
वीरा कनक मँगानिआँ, साढ़े सत मन
वीरा पीन करानियाँ मोतियाँ वरगा
वीरा आटा पिहानियाँ सुर्मे वरगा
वीरा आटा गुन्हानियाँ मलाई वरगा

वीरा पेडे करानियाँ आडुआँ जेडे
वीरा लुच्ची तलावां कोई थाल जेडी
सद्दो सहेलियो नी वीर रोटी खावे
वीर खाण आया नाल सट्ठ जणे
वीर खाण बैठा, पक्खा झलभैने
वीर खा उठया कुम मंग भैणा।
वीरा सब कुछ वधेरा वे विछोड़ा मन्दा॥

अर्थ—ऐ सखियो! मेरी उँगली कट गई है। कोई बताओ यह घाव कैसे अच्छा हो?

सहसा किसी ने कहा—तेरा भाई आ रहा है—बहन की उँगली का दर्द जाने कहाँ चला गया!

उसने साढ़े सात मन गेहूँ मँगाये, उन्हे मोतियो की तरह साफ कराया, सुर्मे की तरह बारीक पिसवाया, मलाई की तरह नरम गुँधवाया। आडुओ जैसे छोटे (गोल और खूबसूरत) पेड़े बनवाये और थाल जैसी बड़ी-बड़ी लुच्चियाँ तैयार करवाई। इसके बाद सहेलियो से कहा—अब जाकर मेरे भाई को बुला लाओ। भाई साठ दोस्तो के साथ खाने आया, बहन सामने बैठ गई और प्यार से पखा ्करती रही। भाई ने प्रसन्न होकर कहा—बहन, माँग क्या माँगती है।

बहन ने उदास होकर उत्तर दिया—भाई! परमात्मा का दिया सब कुछ है। केवल तेरा विछोह अखरता है।

यह गीत निश्चय ही किसी स्त्री का बनाया हुआ है। पता नही, कविता का उसने कभी नाम भी सुना था या नही? पर इसमे सन्देह नही कि वह उच्च-कोटि की कवियित्री थी और उसके इन सीधे-सादे शब्दो मे बहन का स्वार्थ-रहित प्रेम, ऊँचे दर्जे की सुघरता, परिश्रम की आदत और अन्त मे अपनी विवशता और भाई के पास रहने की अपनी आकांक्षा और प्रार्थना कूट-कूटकर भरी हुई है। पहला ही बन्द कितना काव्योचित है और इसके साथ ही कितना स्वाभाविक। ससुराल मे किसी लड़की की उँगली कट गई है, वह सहेलियो से पूछती है—अब यह घाव क्यो कर भरेगा? सहेलियाँ इसका सीधा जवाब न देकर कहती हैं—तेरा भाई आ रहा है।

बस, अब कहाँ का घाव और कहाँ का इलाज? बहन भाई के खिलाने-पिलाने को उड़ी फिरती है। इस शौक मे उँगली का दर्द जाने कहाँ लुप्त हो गया।

और फिर अन्तिम चरण तो सरलता की पराकाष्ठा को पहुँच गया है। भाई प्रसन्न होकर कहता है—बहन, कुछ माँग ले। बहन कपड़ा नहीं माँगती, गहना नहीं माँगती, रुपया-पैसा नहीं माँगती; क्योंकि इससे उसके ससुरालवालों का अपमान होने का डर है। कैसे सन्तुष्ट स्वर में कहती है—भाई! मेरे पास सब कुछ है, मुझे किसी प्रकार का कष्ट नहीं, मगर तेरा विछोह अखरता है, कभी-कभी मिल जाया करो, तो यह शिकायत भी न रहे।

इस लड़की ने मुँह से कुछ नहीं कहा। सास-ससुर की भी कोई शिकायत नहीं की; पर अंतिम प्रार्थना ने सब कुछ कह दिया—'भाई, तेरा विछोह अखरता है, इस वाक्य में दर्द की दुनिया भी है, जिसे देखकर पाषाण-से पाषाण हृदय वालों की आँखों में भी आँसू उमड़ आते हैं। यह शब्द नहीं, टीस का संसार है—दर्द का उबलता हुआ सोता।

लड़की जब घर में रहती है, तो उसे घर की कीमत नहीं मालूम होती। ब्याह के बाद जब घर से नाता टूट जाता है, और वह पराई हो जाती है, तब उसकी आँखें खुलती हैं कि मुझसे क्या छिन गया। उस समय वह अपने माँ-बाप से मिलने के लिए कितनी आतुर और आकुल हो उठती है और क्या कुछ करने को तैयार हो जाती है, यही इस गीत का विषय है :

वीरा! घर घर ने धरेकां फुल्लियाँ धरेकां दी ठंडी छाँ
मा पियू दया जाया, बै झट ।१।
कीकण बैठां, बीबी भोलिए, मेरे साथी ते जांदे ने दूर
मा पियू दिये जाइये, छड-लड़ ।२।
वीरा तेरे साथियाँ नू देवाँ घियो खिचडी, तैनूं देवाँ मक्खन ते बदाम वीरा लै चल
लै चल मा पियू दे देस, वीरा लै चल ।३।
बीबी अग्गे ते धुआँ नी डाडियाँ, इक धुप लग्गू मर जाएँ भैणां रह घर
रह घर मा पियू दिए जाइये! भैणां रह घर ।४।
वीरा छतरी बनवावां रेशमी, वे मैं छाँ करेन्दी जावाँ वीरा लै चल।
लै चल मा पियू दे देस वे, वीरा लै चल ।५।
बीबी अग्गे ते सूलाँ तरिक्खियाँ, इक सूल चुभे मर जाएँ भैणां रह घर
रह घर मा पियू दिए जाइये, भैणां रह घर ।६।
वीरा जुत्ती बनवावाँ साहेनी, वे मैं ठुमक-ठुमक दी जावां वीरा लै चल।
लै चल मा पियू दे देस, वीरा लै चल ।७।

बीबी अग्गे ते कुत्ते भौंक दे, इक दंद लगे मर जाएँ भैणां रह घर ।८।
वीरा मिट्ठियाँ पकावाँ रोटियाँ, मै रोटियाँ पाँदी जावाँ वीरा लै चल ।६।
बीबी अग्गे ते नदियाँ डूंगियाँ, इक गोता लगे मर जाएँ भैणां रह घर ।१०।
वीरा बेडी बनवावाँ राँगली, बेडी ते चढ के जावाँ वीरा लै चल ।११।
बीबी अग्गे ने भाबियाँ डाडियाँ, इक बोल लगे मर जाएँ भैणां रह घर ।
रह घर मा पियू दिये जाइये, भैणा रह घर ।१२।
वीरा कुच्छड़ लवाँ भतीजडे, मैं गली-गली खडावाँ वीरा लै चल
लै चल मा पियू दे देस, वीरा लै चल ।१३।

अर्थ—एक लडकी ससुराल मे है। वसन्त की ऋतु है, वृक्ष फले-फूले हुए है। ऐसी ऋतु मे उसका भाई अपने मित्रो के साथ उधर आ निकला। लडकी के दिल का कमल खिल गया। भाई से बोली—वसन्त की सुगन्धि चारो ओर फैली हुई है, ऐसे समय मे बाहर न जा, जरा मेरे पास बैठ। १।

भाई खिलाडी था, और फिर उसके हृदय मे वह प्रेम भी न था जो बहन के दिल मे था। उसने उत्तर दिया—तू बड़ी भोली है। इतना नही सोचती—मै क्योकर रुक सकता हूँ। मेरे साथ मेरे मित्र है, और मुझे बड़ी दूर जाना है। जाने दे। २।

बहन ने प्रेम से विह्वल होकर भाई का आँचल पकड लिया और बोली—मेरी आँखे अपने माँ-बाप का देश देखने के लिए तरस रही है। ऐ मेरे माँ-बाप के पुत्र, मै तेरे मित्रो के खाने को घी-खिचडी दूँगी और तेरे लिए माखन और बादाम मँगाऊँगी। तू मुझे घर ले चल। ३।

भाई बोला—ऐ बहन! आज-कल की धूप बड़ी तेज है, तू तो रास्ते ही मे मर जायगी। इसलिए आराम से अपने घर बैठी रह, ऐ मेरे माँ-बाप की बेटी! तेरे लिए यही अच्छा है। ४।

बहन ने उत्तर दिया—गर्मी का मौसम है तो मै अभी रेशमी छाता बनवाये लेती हूँ। फिर धूप से मेरा क्या बिगड़ेगा? ऐ मेरे माँ-बाप के बेटे! तू मुझे घर ले चल। ५।

भाई ने देखा, वार खाली गया। बोला—बहन, राह मे इतने लम्बे-लम्बे काँटे है, कि तुझसे क्या कहूँ। यदि तुझे एक भी काँटा चुभ गया तो तेरी जान की खैर नहीं। इसलिये ऐ मेरे माँ-बाप की बेटी! आराम से अपने घर बैठी रह। ६।

बहन ने उत्तर दिया—ऐ भाई! मैं अभी एक सुन्दर और मजबूत जूता

तैयार कराये लेती हूँ, फिर काँटों का मुझे क्या डर रहेगा ? ठुमक-ठुमककर चलूगी। ऐ मेरे भाई ! तू मुझे अपने घर ले चल। तू मुझे मेरे माँ-बाप के घर ले चल। ७।

भाई ने फिर (सोच-सोचकर) कहा—ऐ मेरी बहन ! तू सचमुच बड़ी कम-समझ है, क्या तुझे यह मालूम नहीं कि मार्ग में भयानक कुत्ते हैं। अगर मार्ग मे तुझे एक भी कुत्ते ने काट खाया, तो तू वहीं मर जायगी, इसलिए मेरी राय तो यह है कि तू मेरा साथ छोड़ दे, और अपने घर में आराम से बैठी रह। ८।

पर वहन इन बातो से डरनेवाली न थी—उसने उत्तर दिया—ऐ मेरे भाई ! मै मीठी रोटियाँ पकवा लूगी। इनसे कुत्तो का मुँह बन्द हो जायगा। तू मुझे अपने देश ले चल, तू मुझे मेरे माँ-बाप के देश ले चल। ९।

भाई ने कहा—रास्ते में बडी तेज नदी है। बहन ने उत्तर दिया—मै रंगीन नौका बनवा लूँगी। १०-११।

अन्त को जब कोई बहाना न चला तो भाई ने कहा—ऐ बहन, तेरी भाभियाँ बहुत सख्त है, उनके एक व्यग-बाण से ही तेरे स्वाभिमान का हृदय छिद जायगा। तुझ से एक कड़वा बोल भी सहा न जायगा। इसलिए यह खयाल छोड़ दे, आराम से अपने घर बैठी रह। १२।

अब बहन के प्यार की परीक्षा का अवसर था। जिस घर में पैदा हुई, जहाँ पली, जहाँ बड़ी हुई, जहाँ उसके माँ-बाप ने उसे प्यार किया, वहाँ वह अपना अपमान नहीं सह सकती। भाई कहता है—मेरी भाभियाँ तुझसे सख्त कलामी के साथ पेश आँयगी। बहन ने तड से जवाब दिया—मैं उनके बेटों को उठाकर गली-गली खिलाती फिरूँगी। फिर किसकी मजाल है, जो मुझसे सख्त-कलामी करे। १३।

दिलो को भरमाने का यह एक अचूक साधन है।

बहन की मुहब्बत का ऐसा आकर्षक, ऐसा रंगीन, ऐसा स्वाभाविक बयान किसी ने कम ही किया होगा, पढकर मन में कुछ विचित्र-सा दर्द पैदा हो जाता है।

मालूम होता है, इस गीत मे जिस बहन का जिक्र है, उसके माँ-बाप मर चुके है, नही तो वह भाभियो की खुशामद करने को तैयार न होती और फिर यह वाक्य—ऐ भाई ! मुझे अपने घर ले चल, मुझे मेरे माँ-बाप के घर ले चल, कितना दर्द भरा है, दिल मे कितनी हलचल पैदा कर देनेवाला है। इसे कोई दिलवाला ही देख सकता है। दूसरे के पास वह आँख कहाँ ?

भाइया राहीया जान्दिया, जानां तूं केहडे देस, मैं वारी ।१।
जाणां बीबी, तेरे पेकडे, दे सुनेहा लै जावां, मैं वारी ।२।
जा आखणां मेरी माँ नूं, धियाँ क्यो दित्तियाँ दूर ? मैं वारी ।३।
मैं न दित्तियाँ दूर किधरे, दित्तियाँ उन्हां दे बाप मैं वारी ।४।
बावल कुर्सी बैठया वे, धीयाँ क्यो दित्तियाँ दूर, मै वारी ।५।
मैं न दित्तियाँ दूर किधरे, दित्तियाँ उन्हां दे वीर, मैं वारी ।६।
सुण वे वीरा राजया, धीयाँ क्यो दित्तियाँ दूर, मै वारी ।७।
मै न दित्तियाँ दूर किधरे, दित्तियाँ उन्हां दे लेख, मै वारी ।८।

अज बन्हावाँ पनोड़ियाँ
भलके सूहियाँ चुनडियाँ
परसो भैणां दे मोल ।९।

सस पिसावे चकोड़ियाँ, सौहरा घुटावे भंग, मैं वारी ।१०।
हथ दी पूणी छड्ड के नी, लगजा तां वीर दे गल, मैं वारी ।११।
भैण दियाँ निकल गइयाँ चीकडां, वीर दे डुलपये नैन मैं वारी ।१२।
पग दा पल्ला लाह के जी पूंजया चा भैण दा मुँह, मै वारी ।१३।
भंग दा बूटा पट सुट्टया, चक्की दे टोटे चार, मैं वारी ।१४।
सस ने लाह लिया चँदरिमा, सौहरे ने लाह लये बन्द, मै वारी ।१५।
नीला घोडा बेच के बणा दयाँ भैण नूं चंद, मैं वारी ।१६।
गल दा कंठा बेच के लै दयाँ, भैण नूं बन्द, मैं वारी ।१७।

अर्थ—एक लडकी अपने जन्म-स्थान से दूर ब्याही गई है। सास-ससुर का व्यवहार भी उसके साथ अच्छा नहीं है। बेचारी उदास रहती है। अन्त को एक दिन एक मुसाफिर से, जो उसके घर की ओर जाता हुआ प्रतीत होता है, पूछती है कि तू कहाँ जायगा ? । १ ।

मुसाफिर उसके देश का है। वह कहता है—मै तेरे मैके जा रहा हूँ, कुछ सदेश भेजना हो तो भेज दो । २ ।

लड़की कहती है—तू मेरी माँ से कहना, तेरी लडकी पूछती थी कि तूने मुझे दूर क्यो ब्याह दिया, जहाँ से आना-जाना मुश्किल है ? । ३ ।

माँ उत्तर देती है—उसका ब्याह उसके बाप ने किया था । ४ ।

सदेश-वाहक उसके पिता से पूछता है—ऐ कचहरी की कुर्सी पर बैठने वाले पिता! तूने लड़की को दूर क्यो ब्याह दिया ? वह बहुत परेशान है । ५ ।

बाप उत्तर देता है—उसका विवाह मैंने नहीं किया, उसके भाई ने किया है, यह बात जाकर उससे पूछ। ६।

मुसाफिर उसके भाई के पास जाकर कहता है—ऐ राजा-भाई! तेरी बहन रोकर पूछती है, तू ने मुझे इतनी दूर क्यों ब्याह दिया। ७।

भाई कहता है—इसमे मेरा कुछ दोष नहीं, उसके भाग्य में यही लिखा था। कोई क्या कर सकता है। ८।

मगर इससे उसकी तसल्ली नहीं होती। दो दिन वह तैयारी करता है और तीसरे दिन बहन के घर जा पहुँचता है। ९।

बहन पर सास-ससुर बड़ा अत्याचार करते हैं। उससे सास आटा पिसवाती है और ससुर भंग! । १०।

भाई पूछता-पूछता बहन के आँगन मे जा पहुँचा और बोला—बहन, हाथ की पूनी वहीं रख दे और उठकर भाई के गले लग जा। ११।

बहन ने सिर उठाकर भाई की सूरत देखी, तो उसकी चीखें निकल गईं। यह देखकर भाई की आँखे भी सजल हो गईं। १२-१३।

इसके बाद भाई ने अपनी पगड़ी के छोर से बहन की आँखें पोछीं, फिर चक्की के चार टुकड़े कर दिये और भंग का पौधा उखाड़कर फेंक दिया। १४-१५।

यह देखकर सास ने आकर सिर का चन्द और ससुर ने आकर हाथों के बन्द उतार लिये। १६।

भाई ने कहा—ऐ मेरी बहन! तू जरा भी चिन्ता न कर। मैं अपना नीला घोड़ा बेचकर तुझे चन्द बनवा दूँगा और अपने गले का कंठा बेचकर तेरे लिए बन्द तैयार करवा दूँगा। तू चिन्ता न कर। १७।

भाई बहन के लिए कुछ करे या न करे; मगर बहन को उस पर बड़ी-बड़ी आशाएँ होती है। वह समझती है, मेरा भाई मेरे लिए सब कुछ कर गुजरेगा। अपना कंठा भी बेच देगा, अपना प्यारा घोड़ा भी अलग कर देगा। मेरे ससुरालवाले अगर ज़ालिम हैं तो हुआ करे, मेरा भाई जीता रहे। मुझे इनकी परवाह ही क्या है!

मुहब्बत की आँखें कितनी आशामयी हैं और निराशा के अँधेरे से कितनी अपरिचित!

ससुराल मे लड़की को तकलीफ़ हो, तो उसे भाई बहुत याद आता है। इस अन्धकार में यही उसकी आशा की किरण है। और यह है भी सर्वथा स्वा-

भाविक। माँ-बाप बडी उम्र के है, घर मे भाई का राज्य है, घर का सब प्रबन्ध, सब व्यवस्था उसी के हाथ मे है। जो भला बुरा, स्याह-सफेद चाहे करे, कोई उसका हाथ पकडनेवाला नही। कोई उसे रोकने वाला नहीं। और फिर उसे मिलने के लिए भी लडकी के ससुराल बाप नही आता, उसका भाई आता है। इसलिए जब लडकी को तकलीफ होती है, तो उसे अपना भाई ही याद आता है।

घर घर डेकां फुल्लियाँ वे, मेरया राजया वीरा
घर घर ठंडी दी छां। १।
सभणांदे वीर मिल गए वे मेरया राजया वीरा
मै परदेसन दूर। २।
उठ के कुण्डा खोल दे, मेरिये राणिये भैणां
बाहर खडा तेरा वीर। ३।
सस दा दितड़ा न खुले, वे मेरया राजया वीरा
कंध टप अन्दर आ। ४।
कंध टप्पे चोर नी मेरिये राणिये भैणां
मै खड़ा तेरा वीर। ५।
चमकण लग्गी बिजली, बोलण लग्गे मोर
मेरिये तनिये भैणां। ६।

अर्थ—हर घर मे डेक के वृक्ष फूले है। हर घर मे ठडी छाया खेल रही है। १।

ऐ मेरे राजा भाई, और सब लडकियो के भाई आकर उनसे मिल गये है। मगर तुझे अपनी परदेसी बहन का ध्यान क्यो नही आया? । २।

इतने में भाई आ गया। और बाहर से बोला—ऐ मेरी रानी बहन! उठकर दरवाजे की साँकल खोल दे। तेरा भाई तुझसे मिलने आया है। ३।

बहन ने उत्तर दिया—भाई! सास की लगाई हुई साँकल नही खुल सकती (क्योंकि मैं साँकल खोलूँगी तो वह ख़फा होगी) इसलिए तू दीवार फाँदकर अन्दर आ जा। ४।

इस पर भाई ने कहा—ऐ मेरी रानी बहन! दीवारे फाँदना चोरो का काम है। मैं तो तेरा भाई हूँ, उठकर साँकल खोल दे। ५।

अब बिजली चमक रही है और मोर बोल रहे हैं। तेरा भाई मेह मे भीग जायगा। ऐ मेरी रानी बहन! उठकर किवाड़ खोल दे। ६।

बहन के हृदय मे अपने भाई पर जो मान और गर्व है, वह उसके एक शब्द राजा भाई से जाहिर है। इस एक शब्द ने बहन के दिल की सारी कहानी बयान कर दी है। इस गीत से यह भी मालूम होता है कि पुराने जमाने की सास कितनी सख्त और पाषाणहृदया होती थी।

इस गीत की पूरी शान देखनी हो तो पंजाब के किसी गाँव मे जाकर उस जगह खडे हो जाइये, जहाँ दो-चार बहुएँ बैठी चरखा कातती हों और अपने-अपने भाई को याद करके अपने काँपते हुए, मीठे-मादक स्वर मिलाकर, यह दर्द भरा गीत गा रही हों, उस समय पवन भी सासें भरती हुई दिखाई देती है और विटप रोते दिखाई देते हैं।

भाई के घर पुत्र जन्मा। बहन बधाई देने आई। भाभी उसे कोई उपहार भेट करना चाहती है, पर ननद कहती है, मैं तो केवल हार लूँगी।

ननद आई साडे पाहुनी पिया, कैसे कु बहनावे
ननद साडे आवणा। १।
देणां एं तां हार दे भाबी, नईं ते—आओ नी अड़िये
नहीं ते, दे दे नी जवाब, जाइये घर अपणे। २।
गहणयाँ दे विचों आरसी पिया, सौं मेरी—आहो वे लाला
सो मेरी ननदे नूँ दे। ननद घर जावणा। ३।
देणां एं तां दे हार नी भाबी, नईं ते—आओ नी अड़िये
नहीं तां दे दे नी जवाब, जाइये घर अपणे। ४।
भांडयां दे विचों देचका पिया, सौं मेरी—आहो वे लाला
सो मेरी ननदे नूँ दे, ननद घर जावणा। ५।
नाँ तेरे बाप घड़ाया ननदे—आओ नी अड़िये
ना तेरे चंचल वीर—घडाया मेरे बाप ने। ६।
रुस्सी ताँ ननद, ओह गई पिया, लंघ गई—आहो वे लाला
लंघ गई दरिया—ननद घर जावणां। ७।
वीर भैण प्यारया, भैण नूँ—आओ वे अम्मा जाई नूँ
लियान्दा मणाए, जाणां घर अपणे। ८।
थाल भरिया लुच्चियाँ मोतियाँ बीबी, उपर—आहो नी अड़िये
उपर नौ सौ दा हार, जावीं घर अपणे। ९।
दुध पीवें भरजाइये, अड़िये गोदी ताँ—आओ नी अड़िये
गोदी ताँ लाल खडा, जाइये घर अपणे।१०।

वीर-जीवे, पुत्ता पोतियाँ, मेरी भाबो दा-आओनी मेरी भाबो दा
अटल सुहाग—चलिये घर अपणे ।११।

अर्थ—ऐ मेरे स्वामी ! मेरी ननद और तुम्हारी बहन मेरे यहाँ आई है, उसका भली-भाँति सत्कार करो। यह बेचारी हमारे यहाँ कभी-कभी आती है। १।

ननद कहती है—ऐ भाभी ! देना है तो हार दे, नहीं तो जवाब दे, ताकि मै अपने घर लौट जाऊँ। २।

भाभी कहती है—ऐ मेरे स्वामी, ननद अपने घर जाने को तैयार हो रही है। इसे आरसी दे दो। ३।

ननद कहती है—मुझे आरसी की आवश्यकता नही। देना है तो हार दे, नही तो मैं अपने घर लौट जाऊँगी। मेरे पास आरसियाँ बहुत हैं। ४।

भाभी कहती है—अच्छा इसे अच्छी-सी बटलोही दे दो। ५।

ननद कहती है—यह अपने घर रखो, मुझे इसकी आवश्यकता नहीं। अगर देना हो, तो हार दो, नही तो मै अपने घर जाती हूँ।

भाभी क्रोध से कहती है—यह हार न मुझे तेरे पिता ने दिया है, न तेरे चचल भाई ने दिया है। यह हार मुझे मेरे बाप ने दिया है। यह तो मै न दूँगी ।६।

ननद ने यह ताना सुना तो रूठकर अपने घर लौट गई, और थोड़ी ही देर मे नदी के पार पहुँच गई। ७।

भाभी चुप थी ; पर भाई का प्रेम कैसे मानता ? वह भागा-भागा गया और रूठी हुई बहन को मना लाया। ८।

इसके बाद उसने सच्चे मोतियो का थाल भरा और उसके ऊपर नौ सौ रुपयो का हार रखकर बहन को भेट किया और कहा—ऐ मेरी प्यारी बहन, अब तू शौक से अपने घर जा। ९।

बहन ने देखा, मेरी मन की मुराद पूरी हो गई। उसने प्रसन्न होकर भाभी को दुआ दी कि तेरे यहाँ दूध की कमी न हो, और तेरी गोद सदा हरी-भरी रहे, फिर भाई को दुआ दी कि तू सदा बेटो-पोतो का मुँह देखे और मेरी भाभी का सुहाग अटल हो। १०-११।"

इस गीत मे मुहब्बत की लडाई का जो विवरण दिया गया है, वह इतना विशुद्ध और रंगीन है कि दिल नाचने लग जाता है। खेद है, आज भाई-बहन के इन प्रेम से भरे हुए गीतो का रिवाज कम होता जाता है ; लेकिन जो सुनने

हैं, वे सिर धुनते हैं, और इन गीतो के मनोमुग्धकारी सगीत और दिल मे उथल-पुथल मचा देने वाले भावो मे खोकर रह जाते हैं, जो आज-कल हमे कहीं दिखाई नही देते।

और एक लेख हमारे मित्र श्री यशलाल ने 'रक्ताभ' के अप्रैल १९४८ के अंक मे छापा था, जिसमे पजाब के दो गीत दिये गये हैं। उसके एक अश से यह लेख समाप्त करता हूँ :

"साहित्य में जन की भावना का प्रतीक जनगीत से अधिक और क्या हो सकेगा ? एक तो वह है ही जनगीत ; व्यक्ति उसमे कहीं बहुत पीछे ओझल-सा रह जाता है, यहाँ तक कि गीत को अपनी ही भावना अनुभव कर और ऐसा विश्वास कर जन गीतकार का नाम ही भूल जाता है। कभी-कभी तो जन स्वय ही ऐसे गीतो का रचयिता होता है। ऐसे गीतो मे वातावरण के आधार पर उनकी लय या धुन ही भाव-अभिव्यक्ति का प्रधान माध्यम होती है, जो शनैः-शनैः जन के हृदयो से प्रस्फुटित और विकसित होकर सर्वमान्य रूप ले लेती है। इन गीतो के शब्द और पद भी इसी प्रकार चुने जाकर मान्य हो जाते हैं। परन्तु अत्यन्त सुलभ और साधारण समझे जाने के कारण यह गीत प्रायः ही साहित्यिक विवेचना या क्रम से वचित भी रह जाते हैं।

ऐसे जन गीत अपने स्थान के भौगोलिक और सामाजिक वातावरण का एक बहुत स्पष्ट सकेत और चित्र लिये रहते हैं। पजाबी देहात का ऐसा ही एक बहुत साधारण गीत है :

उच्चियाँ लम्मिआँ टाल्हियाँ वे
विच गुजरी दी पींग वे माहिआ

गीत की भाषा, गीत के देश और उसके जन से परिचित के लिए इस छन्द की दूर्बीन के छिद्र से एक बहुत व्यापक दृश्य का चित्रपट खुल जाता है :

शीशम के ऊँचे और लम्बे कद्दावर पेड़।

शीशम के पेड ऊँचे और लम्बे ! युक्तप्रान्त की कोमल उर्वरा भूमि और वातावरण मे वर्षाधिक्य से पर्याप्त न भी पाये, लुचलुचा कर टेढ़े और फैल जाने वाले शीशम नहीं। ऐसे शीशम जिन्हे पृथ्वी से पर्याप्त रस पाने के लिए अपना जडो को कठोर धरती का कलेजा फाड कर बहुत गहराई तक धँसा देना पडता है और जिनके पत्रदल कडी लू और कड़े पाले दोनों का ही सामना करने के लिए अधिक घने, अधिक माटे और अधिक श्यामल होते हैं। जिन वृक्षों के शिखर की ओर आँख उठाने से सिर की टोपी पीछे गिर पड़ती है और जिनकी

घनी छाया के घेरे के बाहर चिलचिलाती धूप मे फैले खेतो मे आँखे चौधियाँ जाती है। जिसके समीप ही पजाबी देहात का विशेष आश्रय, एक रहट काष्ठ की रगड से शनैः शनैः और मधुर राग अलापता हुआ गहरे कुएँ से ठडा पानी खीच-खीच कर तपते खेतो की भूमि पर फैलाता रहता है और तपती दुपहरी मे किसान का परिवार उस टाल्ही (शीशम) की छाया मे मोटी रोटियो की गठरी और छाछ का बर्तन लेकर एकत्र होता है। हे माहिआ, ऐसे ऊँचे लम्बे और घने शीशमो मे गुजरी की पीग या झूला बँधा है।

नायक माहिआ और नायिका गुजरी के परिचय की भी कुछ आवश्यकता है :

माहिआ प्रायः गगा यमुना के मध्य देश के कान्ह का समानार्थक हो सकता है परन्तु उससे कुछ भिन्न। ठीक वैसे ही जैसे कि युक्तप्रान्त का शीशम पजाबी की टाल्ही से। माहिआ प्रायः लाठी लेकर भैसो के साथ जगलो मे या नदियो के कछारो में घूमता है। उसके बाहु और जघा भी अपनी परिस्थितियो के अनुकूल है। वह उतना चुलबुला और चटोरा नही, उसकी आँख कुछ खोई-खोई-सी और तबियत ...न-सा है। वह सुरीली तीखी वंशी नही, कुछ भारी स्वर का अलगोजा ...भा बजाता है। सूक्ष्म सकेत की अपेक्षा उसके लिए पुकार की जरूरत रहती है और तब भी एक बार पगडी के नीचे सिर को खुजा कर ही वह कुछ समझ पाता है शायद यह भैस के भारी दूध का प्रभाव है। लेकिन जब समझ पाता है तो फिर अंधेरी रात मे भारी दरिया फाँदता है और राह मे दही चुराने की अपेक्षा, प्रेमिका के भोजन के लिए अपनी जाँघ से माँस काट कर राँधने लगता है।

वैसे ही गुजरी ग्वालिन का समाना ...क होते हुए भी कुछ भिन्न है। वह सकुचाती सलोनी नही, धरती पर पाँव धमक कर चलती सीधी शहतीर है, दूध-छाछ से पली गोरी। यो गुजरी अपने भोले और सलोनेपन की व्यजना के कारण नागरिक पंजाबी के लिए भी प्यार का सम्बोधन है। महाराज रणजीतसिंह की एक रानी के लिए भी यही सम्बोधन था और आज भी प्यार का यह नाम डायलेट के परिमार्जन के बावजूद चलता ही है। सो टाल्हियो की पोढी शाखो से लटकी पींग या झूले पर गुजरी और माहिआ की बात है :

जन-गीत कहता है :

पींग झुटेन्दे दो जने वे
आशिक ते मशूक वे माहिआ।

दो जने प्रेमी और प्रेमिका झूला झूल रहे थे।

पींग सी पतली मशूक सी भारा,
झूटे लैं दें दूर दे माहिआ।

उस झूले की रस्सी पतली और कमजोर थी, लेकिन वे दोनो जने दूर-दूर के हिलोरे ले रहे थे।

पींग झुटेंन्दे डिग पये,
हो गये चकनाचूर वे माहिआ।

झूला झूलने के इस खेल में वे दोनो गिर पड़े और गिरकर चकनाचूर हो गये।

गीत का रूपक दुखान्त है। गीत माहिआ को सम्बोधन करता है। इससे यह स्पष्ट है कि यह प्रेमिका की उक्ति है और वह अपने प्रेमी माहिआ को ले गिर कर चकनाचूर हो जाने की व्यथा का वर्णन करती है।

पतली कमजोर रस्सी के झूले पर वजनी प्रेमिका को लेकर झूलने की बचकाना भूल की वक्रोक्ति मे केवल प्राणों से अधिक मूल्यवान प्रेमी माहिआ को विरोधी सामाजिक परिस्थितियो में पा सकने के प्रयास की विफलता की ओर ही सकेत है या इस वक्रोक्ति की कुछ आध्यात्मिक या मार्फती व्यंजना भी है। अपर्याप्त दृढ निश्चय और साधना का समय लेकर आध्यात्मिक सिद्धि [illegible] करने वाला साधक कैसे असफल हो जाता है, यह सासारिक जीवन के लिए [illegible] सुझाव है कि अपनी परिस्थितियो और साधनो के विचार से ही मनुष्य को इच्छा के हिलोरे लेने चाहिएँ वरना सामर्थ्य से अधिक वस्तु के लिए बावले बनने से परिणाम आत्मघात ही होता है। यह जनगीत झूले और विनोद के समय गाया जाने पर भी अर्थ और व्यजना की गुरु गम्भीरता लिये है।"